
श्रीमिथिला प्रेस,
खलीफाबाग, भागलपुरमें मुद्रित

दो शब्द

जो आर्य नहीं हैं—मंगोल, सेमेटिक या हेमेटिक हैं, वे भी ऐतिहासिक दृष्टिसे वेदोंका बड़ा सम्मान करते हैं—उनका भी मत है कि, आर्यजातिका और तत्सम्पर्कीय अन्य जातियोंका मूल इतिहास जाननेके लिये वेदाध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। अनेक उत्कट-ज्ञान-पिपासु यूरोपियोंके विचारसे तो वेदोंका पढ़ना उतना ही आवश्यक है, जितना साक्षर होना। यही कारण है कि, इन लोगोंमेंसे कइयोंने वेदोंके पठन-पाठनमें अपना सारा जीवन ही लगा दिया है, वेदतिहासके अन्वेषणमें सारी पृथिवीकी खाक छान डाली है और वेदोंके प्रकाशन तथा प्रचारमें लाखों रुपये, पानीकी तरह, बहा डाले हैं। जर्मनी, फ्रांस, हालैंड, चेकोस्लोवेकिया, अमेरिका, रूस और इंग्लैंड आदिमें तो कितनी ही वेद-ज्ञान-प्रसारिणी संस्थाएँ तक खुल गयी हैं।

और, इधर, भारतमें तो वेदोंके ऊपर केवल ऐतिहासिक दृष्टि ही नहीं, धार्मिक दृष्टि भी है। हमारे यहाँ करोड़ों हिन्दू ऐसे हैं, जो वेदोंको मनुष्यजातिका समस्त ज्ञान-राशिका सुदृढ़ आधार मानते हैं। इनके मतसे संसारमें जितने ज्ञान-विज्ञानोंका संचरण है, सबका प्रकाश-स्तम्भ वेद ही हैं। हिन्दू धर्मशास्त्रमें ईश्वर न माननेवाला नास्तिक हो या न हो; परन्तु वेद न माननेवाला अवश्य नास्तिक है—“नास्तिको वेद-निन्दकः” (मनुस्मृति)। सांख्य और मीमांसा आदि ईश्वरको नहीं मानते; परन्तु वेदको नित्य, शाश्वत, अज और अप्रमेय मानते हैं। लो० तिलक जैसे युगान्तरकारी विद्वान्के मतसे तो वही हिन्दू है, जिसकी वेदोंपर अखण्ड श्रद्धा है, जो वेदोंको सर्वांशतः प्रमाण मानता है—“प्रामाण्य-बुद्धि-वेदेषु।” स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे सुधार-वादीके विचारसे “जो वेदमें नहीं है, वह संसारमें ही नहीं है, न हो सकता है।” प्राचीन आचार्योंका तो मत ही था कि, “प्रत्यक्ष और अनुमानसे भी जो बात नहीं जानी जा सकती, उसे वेद बताता है”—

“प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तुपायो न बुध्यते।

एनं वदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥’

मनुस्मृतिके टीकाकार कुल्लूकभट्टकी दृष्टिसे वेदोंका कभी विनाश नहीं होता, वे प्रलय-कालमें भी परमात्मामें स्थित रहते हैं—“प्रलयकालेऽपि परमात्मनि वेदराशिः स्थितः।” इस तरह कोई वेदको ईश्वरका निःश्वास मानता है, कोई ईश्वरवत् अमर मानता है, कोई अनन्त-ज्ञान-राशि मानता है कोई विश्वकी उच्चतम संपद् मानता है। यही आर्य-परम्परा है और यह बहुत कुछ सार्थक तथा सयुक्तिक है।

यह सब कुछ है; परन्तु इन दिनों हम ऐसे बुद्धि-हीन, साधना-शून्य, अव्यवस्थित, दरिद्र और अज्ञानी हो गये हैं कि, वेदोंका महत्त्वतक समझना हमारे लिये असम्भवसी बात हो चली है। कोई वेदोंको “गड़रियोंके गीत” समझता है, कोई ब्राह्मणोंकी उदर-पूर्त्तिका साधन। हमारी मनोवृत्ति इतनी दासभावापन्न हो गयी है कि, वेदाध्ययन तो दूर रहा, जीवन भरमें वेदोंकी पुस्तकोंका दर्शन भी नहीं करते—भले ही बी०

५०, ५० या वैरिस्टरी पास करके वाइविल या कुरानकी तारीफ कर डालते हैं। हम देखते हैं कि, इनसे भी उच्चतर परीक्षाएँ पास करके अँग्रेज और मुसलमान अपने प्राण-प्रिय धर्म-ग्रन्थ वाइविल और कुरानका घर-घर गौरव-प्रचार करनेके लिये जमीन और आसमान एक कर डालते हैं, अपनी संस्कृति और सभ्यताके प्रसारके लिये जीवनतक गँवा देनेको तैयार हो जाते हैं; और, हम अपने मूल धर्म-ग्रन्थ और आदिम इतिहास वेद, संस्कृति और सभ्यताको लातों टुकरा देते हैं—हमें भली बातोंकी नकल आती ही नहीं ! क्लबों, मोटरोंमें लाखों रुपये उड़ानेको हमें मिल जाते हैं; परन्तु वैदिक ग्रन्थोंको खरीदनेके लिये एक पैसा भी नहीं मिलता । चरित्र-हीन करनेवाले “तोता-मैनाका किस्सा” और तिलिस्मी तथा जासूली उपन्यास पढ़नेको हमारे प्राण तड़फड़ा उठते हैं; किन्तु वेदकी बात सूर्यसी चुभती है ! इससे भी बढ़कर किसीका पतन होगा ?

वेदोंका प्रचार न होनेके कारण और भी है—वैदिक ग्रन्थोंकी महार्घता और राष्ट्र-भाषा हिन्दीमें सरल अनुवादका अभाव । ऋग्वेदकी सटीक पुस्तक डेढ़ दो सौ रूपयोंमें मिलती है और सरल हिन्दी-अनुवादका तो एकदम ही अभाव है—अवश्य ही साम्प्रदायिक हिन्दी-अनुवाद है, जिसमें काफी खींचतान की गयी है । ऐसे ही अभावोंकी पूर्त्तिकी दिशामें हमारा वर्तमान प्रयत्न है । हमने सिर्फ १६) २० में, (प्रत्येक अष्टक २) २० में) सरल हिन्दी-अनुवादके साथ, सम्पूर्ण ऋग्वेद-संहिताका देना निश्चित किया है—यद्यपि इसमें हमें बहुत ही परिश्रम और द्रव्य व्यय करना पड़ रहा है । दो अष्टक निकल चुके हैं; आज तीसरा निकल रहा है । राहपे, छपाई आदिकी दृष्टिसे यह अष्टक उन दोनोंसे बढ़िया है । इस अष्टकमें कई ऐसी सूत्रियाँ दी गयी हैं, जिनसे इस अष्टककी सभी महत्त्व-पूर्ण बातें विदित हो जाती हैं । कई कारणोंसे इस ग्रन्थ-रत्नका प्रकाशन धीरे-धीरे हो रहा था; परन्तु अब ऐसा प्रबन्ध कर लिया गया है, जिससे अधिकसे अधिक चार महीनोंमें एक अष्टक अवश्य ही निकला करेगा । जिस “वेद-रहस्य”की चर्चा प्रथम और द्वितीय अष्टकोंकी भूमिकाओंमें की गयी है, उसके अनेक प्रकरण लिखे जा चुके हैं । इस रहस्यमें वेदोंके समग्रन्थकी अथसे इतितक सब बातें आ जायेंगी ।

एक बात और । इस अष्टकका प्रूफ देखने और अनुवाद करनेमें साहित्याचार्य पण्डित महेन्द्र मिश्र “मग”ने हमें बहुत सहायता दी है; इसलिये उनका नाम भी देना हमने उचित समझा ।

अग्रहायणी अमावास्या, १९६०

कृष्णगढ़, सुलतानगंज

रामगोविन्द त्रिवेदी,

गौरीनाथ झा

सायणाचार्यके मतानुसार तृतीय अष्टकमें

पौराणिक कथाएँ

तृतीय अष्टकमें तृतीय मण्डलके ७ से ६२ सूक्त, चतुर्थ मण्डलके ५८ सूक्त और पञ्चम मण्डलके ८ सूक्त हैं। प्रत्येक कथाके आगे मण्डल, सूक्त और मन्त्रकी संख्या दी गयी है।

१ अग्नि द्वारा दासोंके नव्हे नगरोंका कम्पित होना	३११३६
२ उपाओंसे अग्निकी उत्पत्ति	३१७३
३ भरतपुत्रों द्वारा अग्निकी उत्पत्ति	३२३२
४ इलापुत्र अग्नि	३२६३
५ इन्द्र द्वारा वृत्रका हस्तहीन होना	३३०५
६ अङ्गिराओं द्वारा गौओंका अन्वेषण	३३१५
७ इन्द्र द्वारा जलकी उत्पत्ति	३३११६
८ जन्म लेते ही इन्द्रने सोम पान किया	३३२६
९ विपाशा और शुतुद्री नदियोंका जन्म	३३३१
१० विश्वामित्रकी प्रार्थनासे विपाशा और शुतुद्रीका निम्नस्थ [पार होने योग्य] होना	३३३६-१०
११ सुपर्ण पक्षी द्वारा सोमका लाया जाना	३४३७
१२ पणियों द्वारा गौओंका अपहरण	३४४५
१३ अदितिने सूतिकागृहमें इन्द्रको स्तन्य दानके प्रथम सोमरस पिलाया	३४८२
१४ त्वष्टाको चिनष्ट कर इन्द्रने चमसस्थित सोम चुराया	३४८४
१५ पिञ्चनपुत्र सुदासका यज्ञ	३५३६
१६ अनार्य जनपद कीकटमें दुग्धदायिनी गौएँ	३५३१४
१७ वसिष्ठके भृत्यों द्वारा विश्वामित्रका अपमान	३५३२३

१८ त्रिविक्रमावतार	३५४१४
१९ विना रेतःसंयोगके ओषधियोंका गर्भवती होना	३५५५
२० ऋभुओं द्वारा चमस-निर्माण, मृतक गोशरीरमें चर्मयोजना और इन्द्रके अश्व-द्वयका निर्माण	३६०२, ४३३, २, ४, १०, ११
२१ अग्निपत्नी होत्रा और सूर्यपत्नी भारती	३६२३
२२ वरुणकृत जलोद्वारोग	४१५
२३ अग्नि अपने सेवकोंको धनवान् करते हैं	४२६-१०, ३१८४
२४ चक्षुर्हीन दीर्घतमाका शापोद्धार	४३१३
२५ देवदूत अग्नि	४७८
२६ सहदेवपुत्र सोमक राजाका अश्वदान	४९५७-८
२७ सरमाने गौओंको प्रकाशित किया	४९६८
२८ कुत्स और इन्द्रका रूपसाम्य	४९६१२०
२९ इन्द्र द्वारा कुयव और शुष्ण असुरका वध	४९६१२
३० संग्राममें इन्द्र द्वारा सूर्यके रथचक्रका छिन्न होना	४९६१२, ४३०४
३१ इन्द्र द्वारा पिप्रु और मृगय असुरोंका वध, विदथिपुत्र ऋजिष्वाका वन्दो होना पंचम पचास हजार कृष्णवर्ण असुरोंका मारा जाना और शम्बरके नगरोंका विनाश	४९६१३
३२ इन्द्र द्वारा वामदेवकी यज्ञरक्षा	४९६१८
३३ इन्द्र-पतश-युद्ध	४९७१४
३४ गर्भस्थ वामदेवका इन्द्र और अदितिसे संवाद	४९८
५३ इन्द्रका ब्रह्महत्यापापसे उद्धार	४९८७

३६ इन्द्र द्वारा पिताका असत्कार	४१८।२	संख्यक नगर दिये	४३०।२०
३७ वामदेव द्वारा कुत्तेका मांस खाया जाना और उनकी स्त्रीका अश्लाघनीया होना	४१८।३	४६ दभीतिके लिये त्रिशत्-सहस्र-संख्यक राक्षसोंका हनन	४३०।२१
३८ अग्रपुत्रका दीमकके पिण्डसे बाहर होना और इन्द्र द्वारा उनके मांस-चर्म-हीन शरीरकी रक्षा	४१९।३६	४७ वृषभयुक्त रथ द्वारा गमन	४३२।२४
३९ सोमापहरणकालमें श्येनका सोमपालोंसे युद्ध	४२७।३	४८ ऋभुओंने परिचर्या द्वारा माता-पिताको युवा किया	४३३।२-३, ४३४।६, ४३६।३
४० इन्द्र द्वारा विचूर्णित उपादेवीके विपाशा नदीके तीरपर गिर पड़ना	४३०।११	४९ ऋभुओंने देवोंके लिये अंसत्रा कवच और अग्निद्वयके लिये रथ-निर्माण किया	४३४।६
४१ वचि नामक असुरके अनुचरोंका वध	४३०।१५	५० ऋभुओं द्वारा निर्मित अग्निद्वयके चित्रक रथ- का विना अश्व और प्रग्रहके अन्तरिक्षमें परिश्रमण	४३६।१
४२ अनभिषिक्त राजा यदु और तुर्वशका इन्द्र द्वारा अभिषेक	४३०।१७	५१ त्रसदस्यु राजाका महादान	४३८।१
४३ सरयू नदीके पारमें रहनेवाले आर्य राजा अर्ण और चित्ररथका इन्द्र द्वारा वध	४३०।१८	५२ पुरुकुत्सकी स्त्रीने सप्तर्षिके अनुग्रहसे त्रसदस्युको प्राप्त किया	४४२।२
४४ इन्द्र द्वारा अन्ध और पङ्क्तुके अन्धत्व और पङ्क्तुत्वका विनाश	४३०।१६	५३ सूर्या द्वारा अग्निद्वयके रथका संवरण	४४३।२, ६
४५ इन्द्रने दिवोदासको शम्बरके पापाणनिर्मित शत-		५४ इन्द्र द्वारा क्षीर, सूर्य द्वारा दधि और देवों द्वारा घृतकी उत्पत्ति	४५८।४
		५५ वृश ऋषिके रथचक्र द्वारा कुमारकी मृत्यु	५२।१
		५६ यज्ञयूपमें वद्ध शुनःशेषकी मुक्ति	५२।७

किष्क मन्त्रकी टिप्पणियों क्या हैं ?

१ कुल ३३३६ देवता	३।९।६	६ एक पदकी ऋचा	४।१७।५
२ भिन्न-भिन्न स्थानोंमें वर्त्तमान अग्निके भिन्न-भिन्न नाम	३।२।२	१० वामदेवकी जन्मकथा	४।१८
३ विपाशा और शुतुद्री नदियोंने जल घटाकर विश्वामित्रको पार उतार दिया	३।३।१	११ इन्द्रके ब्रह्महत्यापापका निष्कमण	४।१८।७
४ गन्धर्वोंका अन्तरिक्षमें निवास और सोमरस प्रस्तुत करना	३।३।६	१२ सूर्यारश्मिसे ऋभुओंकी स्तुति	४।३।७
५ चतुर्थ-मण्डलके ऋषि	४।१।१	१३ निष्क शब्दसे स्वर्णमुद्रा	४।३।४
६ दीर्घतमाका जन्म	४।४।३	१४ त्रसदस्युका जन्म	४।४।२।८
७ कुत्स और इन्द्रका रूपसाम्य	४।६।१०	१५ सुखकर देवताके अर्थमें शुन शब्द	४।५।४
८ स्वश्व राजाने सूर्यको पुत्र रूपसे प्राप्त किया	४।१७।४	१६ शौनकके विचारसे शुन शब्द	४।५।५
		१७ महीधरके विचारसे सीता शब्दका अर्थ	४।५।७।१
		१८ "चत्वारि शृङ्ग"का आदित्यात्मक अर्थ	४।५।२।३
		१९ शाट्यायन ब्राह्मणोक्त कुमारकी कथा	५।२।१

तृतीय अष्टककी जानने योग्य बातें

आय और दस्यु, ये दो जातियाँ थीं	३३४२	सुवर्ण-सजा-विशिष्ट अश्व	४२२२
पञ्च-रुष्टि	४३८६	युद्धका अयव	४३८५
मनुष्योंकी परमायु	३३६२	अमाल्यवेष्टित गजस्कन्धपर आरूढ़ राजा	४४११
पुत्रके अवर्त्तमान होनेपर दौहित्र पुत्र-स्थानीय होता है	३३१२	प्रस्तरनिर्मित नगर	४३०३
पुत्र क्रिया और सम्पत्तिका अधिकारी है एवम् कन्या सम्मानकी अधिकारिणी है	३३१३	कृषिकार्यका विवरण	४५७ समस्त सूक्त
“धान” अर्थात् भूना जौ (ब्रीहि अर्थात् चावलका उल्लेख नहीं है)	३३५१	वणिकोंका समुद्रगमन	४५५३
धान, करम्म, अपूप, पुरोडाश, पक्कि और खारी (शस्यका माप)	४३२१	भ्रातृरहिता विपथगामिनी नारी, पतिविद्वेषिणी दुष्टाचारिणी भार्या	} ४५११
निष्क	४३७२	वस्त्रापहारक तस्कर	
अंसत्रा (कघच), द्रापि (कघच या परिच्छद्)	४३४२, ४१३२	सरयूके पूर्व आर्यराज्यका विस्तार और आर्यराजाओंसे युद्ध	४३०२
मन्दिर और शिक्षाण्डकी गाड़ी	३३३१५	द्वपद्धती, अपया, सरस्वती, पुरुष्णी, विपाशा और शुतुद्री नदियाँ	३२३२, ४२२१, ३३३१
रथनिर्माता शिल्पिगण और सूत्रधार	४२३३, ४१६६	जह्नु कन्या	३५८१
		अनार्य ववरजातियाँ	३३१६, ७, ४१६४, ४२८१, ४३०४, ४३८१
		कांकट (दक्षिण मगध)	देशके वर्ष ३५३६, १०

दृक्-विवरण

ऐश्वरिक बलकी पकता एक ईश्वरका अनुभव	} ३५५३, ६	घृतकी स्तुति	४५८६
स्वर्गलाभकी कथा		४११६, ४४७१	श्येन पक्षी द्वारा सोमानयन
गायत्री मन्त्र	३६२१	जन्म लेते ही इन्द्रने मातृ-स्तनमें सोम देखा और अति-शय सोमप्रियता दिखायी	} ३४८ समस्त सूक्त ३५३४
हंसवती ऋक्	४४०१	इन्द्रने पिताका अपमान किया	
अंगिरा द्वारा कृत अग्निपूजाका अनुष्ठान	४११४, ४२४४	यूपफाण्ड और पशुवलि	३८ समस्त सूक्त
सीता (अर्घ, लाङ्गलकृत भूमिरेखा)	४१७५	३३३ देव	३६२
शुन और सीर	४५७२, ४	गन्धर्वगण	३३८२
ऋमुक्षा	४३७-१	“आसुर”	३२६१
दधिक्रा	३२०१, ४३८२, ५	ऋग्वेदकी उपमासे क्रमशः उपाख्यानोंकी सृष्टि	५२११
घिष्णा	३२२२		
स्वस्तिदेवी	४५५१		
शक्र	४३३		

❀ वैदिक-पुस्तक-मालाकी नियमावली ❀

- (१) इस मालामें हिन्दी-अनुवाद-सहित चारो वेद और विशेषतः वैदिक ग्रन्थ ही गूँथे जायँगे ।
- (२) ॥ भेजकर मालाके स्थायी ग्राहक बननेवालों और गङ्गाके ग्राहकोंको किसी भी पुस्तकपर डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा ।
- (३) स्थायी ग्राहकोंको मालामें प्रकाशित सभी पुस्तकोंको खरीदना पड़ेगा ।
- (४) मालामें प्रकाशित पुस्तक, सूचना देकर, बी० पी० से, भेजी जायँगी ।

मैनेजर, वैदिक-पुस्तक-माला, कृष्णगढ़, सुलतानगंज (ई० आई० आर०)

ब्रह्मवेद-संहिता



“गङ्गा” के संरक्षक, सोनबरसा-राज्याधिपति—
राव बहादुर रुद्रप्रताप सिंहजी साहव एम० एल० सी०

समर्पण

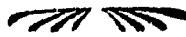


जो हिन्दू-धर्मको रक्षाके लिये अहोरात्र चिन्तित रहते हैं,
जो हिन्दू-जातिके अभ्युदयके लिये सर्वस्व त्याग
करनेकी तैयार रहते हैं, जो हिन्दी-साहित्यके
उन्नयनके लिये पानीकी तरह रुपये बहाते
हैं, जो विद्वानों और ब्राह्मणोंके आश्रयस्थल
हैं, जो अध्ययन और मननमें ही अपना
अधिक समय व्यतीत करते हैं, जो
प्रजाको भलाई करना ही अपना
पवित्र राज-धर्म समझते हैं
और जो बिहारकी सुप्रसिद्ध
पत्रिका 'गङ्गा'के
संरक्षक हैं, उन

वीरव्याघ्र-कछवाहा-राजपूत-कुल-भूषण, सोनबरसा-राज्याधिपति
राज बहादुर रुद्रप्रताप सिंह एम० एल० सी०

— के —

कमनीय कर-कमलोंमें
सप्रेम समर्पित



रामगोविन्द त्रिवेदी
गौरीनाथ भा

ॐ तत्सत्

ऋग्वेद-संहिता

(हिन्दी-टीका-सहित)

३ आष्टक । ३ मण्डल । १ अध्याय । १ अनुवाक ।

७ सूक्त

अग्नि देवता । तृतीय मण्डलके ऋषि विश्वामित्र और उनके वशोद्भव हैं । यहाँसे १२ सूक्तके ऋषि स्वयं विश्वामित्र हैं । त्रिष्टुप् छन्द है ।

प्र य आहः शितिपृष्ठस्य धासेरा सातरा त्रिविणुः ससवाणीः ।

परिचिता पितरा सञ्चरेते प्रससूति दीर्घमायुः प्रयत्ने ॥ १ ॥

दिवक्षसो धेनवो वृषाणो अश्वा देवीरातस्थौ मधुमद्वहन्तीः ।

ऋतरस्य त्वा सदासि क्षेमयन्तां पर्येका चरति वर्तन्ति गौः ॥२॥

१. श्वेत पृष्ठवाले और सवके धारक अग्निकी जो किरणें उच्चमताके साथ उठती हैं, वे पितृ-भानु-रूप द्यावापृथिवीके चारों दिशाओंमें प्रविष्ट होती हैं, सात नदियोंमें भी प्रविष्ट होती हैं । चारों ओर वर्तमान पितृ-भानु-भूत द्यावापृथिवी भली भाँति फैली हैं और अच्छी तरह यज्ञ के लिये अग्निको दीर्घ जीवन प्रदान करती हैं ।

२. धुलोकवासी धेनु ही असीष्टवर्षी अग्निकी अश्व है । मधुर-जल-वाहिनी और प्रकाशवती नदियोंमें अग्नि निवास करते हैं । अग्नि, तुम ऋतु या सत्यके गृहमें रहना चाहते और अपनी उवालों देते हो । अग्नि, एक गौ या मध्यमिका धारु तुम्हारी सेवा करती है ।

आ सीमरोहत् सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वात्रयिविद्रयीणाम् ।
 प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत् पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥
 महि त्वाष्ट्रसुर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वधन्ति ।
 व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥ ४ ॥
 जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवसुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।
 दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इडा येषां गयथा साहिना गीः ॥५॥
 उतो पितृभ्यां प्रविदानुघोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।
 उक्षा ह यत् परिधानमक्तोरनुखं धाम जरितुर्ववक्ष ॥ ६ ॥
 अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्तविप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वैः ।
 प्राञ्चो मदन्त्युदाणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥ ७ ॥

३ धनोमें श्रेष्ठ धनके स्वामी, ज्ञानवान् और अधिपति अग्नि सुखसे संशयहीन वृद्धाओमें बढ़ गये। श्वेत पृष्ठवाले और चारो ओर प्रसृत अग्निने बड़वाओंको, सतत गमन करनेके लिये, छोड़ दिया।

४ बलकारिणी और प्रवहमाना नदियाँ अग्निको धारण करती हैं। वह महान्, त्वष्टाके पुत्र, तरारहित और सारे संसारको धारण करनेके अभिलाषी हैं। जैसे पुरुष एक स्त्रीके पास जाता है, वैसे ही अग्नि जलके पास प्रदीप्त होकर धावापृथिवीमें प्रवेश करते हैं।

५ लोग अभीष्टवर्षी और अहिंसक अग्निके आश्रय-जन्य सुखको जानते और महान् अग्निकी प्राज्ञमें रत रहते हैं। जिन मनुष्योंके श्रेष्ठ-स्तुति-रूप वाक्य गणनीय होते हैं, वे दुलोकके दीप्तिकर्ता और शोभन दीप्ति-युक्त होकर देदीप्यमान होते हैं।

६ महान्से भी महान् पितृ-मातृ-स्थानीय धावापृथिवीके ज्ञानके पश्चात् ऊँचे स्वरमें की गयी स्तुतिसे उत्पन्न सुख अग्निके निकट जाता है। जलसेचनकर्ता अग्नि रात्रिकी चारो ओर व्याप्त स्वकीय तेज स्तोताके पास भेजते हैं।

७ पाँच अध्वर्युओंके साथ सात होता गमनशील अग्निके प्रिय स्थानकी रक्षा करते हैं। सोम रानके लिये पूर्वकी ओर जानेवाले अजर और सोम-रस की स्तोता लोग प्रसन्न होते हैं; क्योंकि देवता-लोग देव-शुद्ध स्तोताओंके यज्ञमें जाते हैं।

दैव्या होतारा प्रथमा न्यूञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
 ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनुन्नतं व्रतपा दीध्यानाः । ८ ।
 वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।
 देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान्महो देवान्रोदसी एह वक्षि ॥६॥
 पृक्षप्रथजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उपसो रेवदूषुः ।
 उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृत चिदेनः समहे दशस्य ॥१०॥
 इडाग्ने पुरुदंसं सनि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
 स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥

८ दैव्य-होतृ-द्वय-स्वरूप दो मुख्य अश्विओंको मैं अलंकृत करता हूँ। सात जन होता सोम द्वारा प्रसन्न होने हैं। स्तोत्रकर्ता, यज्ञ-रक्षक और दीनिशाली होता जोग "अग्नि ही सत्य है", ऐसा कहते हैं।

९ हे देदीप्यमान और देवोंको बुलानेवाले अग्नि, तुम महान्, सबको अतिक्रम करके रहनेवाले, नाना वर्णोंवाले और अभीष्टवर्षक हो। तुम्हारे लिये प्रभूत, अतीव विस्तृत और सर्वत्र व्याप्त ज्वालापै वृषके समान आचरण करती हैं। तुम मादयिता और क्षानी हो। तुम पूज्य देवों और धावापृथिवीको इस कर्ममें बुलाते हो।

१० अन्तः प्राग्गणाल अग्नि, जिस उपाकालमें भली भाँति अन्न द्वारा यह प्रारम्भ किया जाता है, जो उपाकाल प्राग्गण-वाक्प-युक्त तथा पक्षियों और मनुष्योंके शब्दोंसे सुचिह्नित है, वही सब उपाकाल तुम्हारे लिये धनयुक्त होकर प्रकाशित होते हैं। हे अग्नि, अपनी विशाल महिमाके कारण तुम यजमानके किये पापका नाश करते हो।

११ अग्नि, स्तोत्रांको तुम अनेक कर्मोंकी कारणभूता और धेनुप्रदात्री भूमि अथवा गो-रूप देवता सदा प्रदान करो। हे वंशविस्तारक और सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो। अग्निदेव, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

८ सूक्त

इस सूक्तके यूप देवता हैं। ११ वीं ऋचाके विन्न यूपके मूलभूत स्थाणु देवता हैं। ८ म के विश्वदेव या यूप देवता हैं। छठी ऋचासे लेकर सारी ऋचाओंके विविध यूप देवता हैं।

अवशिष्ट ऋचाओंके एक यूप देवता हैं। अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द।

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन।

यदूहूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणोह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥१॥

समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद्ब्रह्मवन्वानो अजरं सुवीरम्।

आरे अस्मदसतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२॥

उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि।

सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥३॥

युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः।

तं धीरासः कश्य उन्नयन्ति स्वाध्वो मनसा देवयन्तः ॥४॥

जातो जामते सुदिनत्वे अह्नाँ समर्य आ विदथे वर्धमानः।

पुनन्ति धीराः अपसो मनीषा देवया विपू उदियति वाचम् ॥५॥

१ वनस्पतिदेव, देवोंके अभिलाषी अध्वर्यु लोग देव-सम्बन्धी मधु द्वारा तुम्हें सिक करते हैं। तुम चाहे उन्नत भावसे रहो अथवा मातृ-भूत पृथिवीकी गोदमें ही शयन करो, हमें धन दो।

२ यूप, तुम समिद्ध अथवा आहवनीय नामक अग्निकी पूर्व दिशामें रहकर अजर, सुन्दर और अपत्ययुक्त अन्न देते हुए तथा हमारे पापको दूर करते हुए महती सम्पत्तिके लिये उन्नत होओ।

३ वनस्पति, तुम पृथिवीके उत्तम यज्ञ-प्रदेशमें उन्नत होओ। तुम सुन्दर परिमाणसे युक्त हो। यज्ञ-निर्वाहको अन्न दान करो।

४ हृद्वाङ्ग, सुन्दर जिह्वावाले तथा जिह्वासे परिवेष्टित यूप आता है। वह यूप ही, समस्त वनस्पतियों-की अपेक्षा, उत्तम रूपसे उत्पन्न है। बाली मेधावी लोग हृदयसे देवोंकी इच्छा करके, सुन्दर ध्यानके साथ, उसे उन्नत करते हैं।

५ पृथिवीपर वृत्तरूपसे उत्पन्न यूप मनुष्योंके साथ यज्ञमें सुशोभित होकर दिनोंको सुदिन करता है। कर्मनिष्ठ और विद्वान् अध्वर्यु लोग यथाशुद्धि उसी यूपको प्रज्ञातन द्वारा शुद्ध करते हैं। देवोंके याजक और मेधावी होता वाक्य धा मन्त्रका उच्चारण करते हैं।

यान्वो नरो देवयन्तो निमिष्युर्वनस्पते स्वधितिर्वाततक्ष ।

ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम् ॥६॥

ये वृक्षणासो अधिक्षमि निमितासो यतस्त्रुचः ।

ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः ॥७॥

आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथाः द्यावाक्षासा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।

सजोपतो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥८॥

हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ।

उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्देवा देवानामपियन्ति पाथः ॥९॥

शृङ्गाणीवेच्छ्रुङ्गिणां सन्ददृशे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्यन्नम् ।

वाघद्विभर्वा विहवे श्लोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥१०॥

६ यूपों, देवामिलापी और कर्मोंके नायक अध्वर्यु आदिने तुन्हें गड्ढेमें फेंक दिया है । वनस्पति, कुडारने तुन्हें काटा है । तुम दीप्तिमान् और काष्ठ-खरडवाले हो । हमें अपत्यके साथ उत्तम धन दो ।

७ जां फरसेसे भूमिपर काटे जाते हैं, जो ऋत्विकों द्वारा गड्ढेमें फेंके जाते हैं और जो यज्ञके साथक हैं, वे ही सब यूप देवोंके पास हमारा हव्य ले जाँय ।

८ सुन्दर नायक आदित्य, रुद्र, वसु, द्यावापृथिवी और विस्तीर्ण अन्तरीक्ष, ये सब मिलकर यज्ञकी रक्षा करें और यज्ञकी ध्वजा यूपको उन्नत करें ।

९ दीम वस्त्रसे आच्छादित, हंसकी तरह श्रेणीपूर्वक गमन करनेवाले और खरड-युक्त यूप हमारे पास आवें । मेधावी अध्वर्यु आदिके द्वारा यज्ञकी पूर्व दिशामें उन्नीयमान तथा दीप्तिशाली सारे यूप देवोंका मार्ग प्राप्त करते हैं ।

१० स्वरूपाके और मुक्तकराटक यूप पृथिवीके शृङ्गी पशुओंकी सींगकी तरह भली भाँति दिखाई देते हैं । यज्ञमें ऋत्विहोंकी स्तुतियाँ सुननेवाले यूप शुद्धमें हमारी रक्षा करें ।

वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा विवयं सहेम ।

यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ॥११॥

६ सूक्त

अग्नि देवता । लिपुषु और वृहती ऋद ।

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास उतये ।

अर्पा नपातं सुभगं सुदीदीतिं सुशतूर्जिमनेहसम् ॥१॥

कायमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नपः ।

न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्त्तनं यद्दूरे सन्निहा भवः ॥२॥

अति तृष्ट ववन्निथाथैव सुमना असि ।

प्रप्रन्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि अितः ॥३॥

इयिवांसमतिस्मिधः शश्वतीरति सश्वतः ।

अन्वीमविन्दन्निचिरासो अद्भुतोऽसु सिंहमिध अितम् ॥४॥

११ हे द्विन्मूल स्थाणु, इस तीली धारवाले फरसेने तुम्हें महात् सौभाग्य प्रदान किया है । तुम हजार शाखाओंवाले होकर भली भाँति उत्पन्न होओ । हम भी हजार शाखाओंवाले होकर भली भाँति प्रादुर्भूत हैं ।

१ अग्नि, तुम जलके नत्ता, सुन्दर धनवाले, दीप्तिमान, निरुपद्रवी और संसारके प्राप्तव्य हो हम तुम्हारे मित्रभूत मनुष्य हैं । अपनी रक्षाके लिये तुम्हें हम वरण करते हैं ।

२ अग्नि, तुम सारे वनोंकी रक्षा करते हो । तुम मातृ-रूप जलमें पेठकर शान्त होओ । तुम्हारा शान्त भाव सदा नहीं सहा जाता; इसलिये तुम दूरमें रहकर भी हमारे काठके बीच उत्पन्न होते हो ।

३ अग्नि, स्तोताकी अभिलाषाको तुम विशेष रूपसे वहन करनेकी इच्छा करते हो । तुम सन्तुष्ट रहते हो । तुम जिन १६ ऋत्विकोंके साथ मित्रताके साथ रहते हो, उनमेंसे कुछ विशेष-रूपसे होम करनेके लिये जाते हैं; अवशिष्ट मनुष्य चारो ओर बैठते हैं ।

४ शुद्ध-स्थित सिंहकी तरह जलमें दिपे हुए तथा शत्रुओं और बहु सेनाओंको हरानेवाले अग्नि को प्रोह-रहित और चिरन्तन विश्वदेवोंने प्राप्त किया था ।

ससृवांसमिव त्मनाग्निमित्था तिरोहितम् ।
 एनं नयन्सातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥५॥
 तं त्वा मर्ता अगृभ्यात् देवेभ्यो हव्यवाहन ।
 विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव ऋत्वा यविष्ठय ॥६॥
 तदुभद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति ।
 त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपि शर्वरे ॥७॥
 आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम् ।
 आशुं दृतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥८॥
 त्रीणि शता त्रीसहस्राशयश्चिं लिशच्च देवानवचासपर्यन् ।
 औंक्षन्धृतैरस्तृणान्दहिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादियन्त ॥९॥

५ जैसे स्वच्छन्दगामी पुत्रको पिता खींच ले आता है, वैसे ही मातरिश्वा स्वेच्छासे द्विपे हुए और मन्यन द्वारा प्राप्त अग्निको देवीके लिये लाये थे ।

६ मनुष्योंके हितैर्वा और सदा तरुण अग्निदेव, अपनी महिमासे तुम सारे यज्ञका विशेष रूपसे पालन करते हो । इसलिये ते हव्यवाहन, मनुष्योंके तुम्हें देवोंके लिये ग्रहण किया है ।

७ अग्नि, चूँकि सारंगकालमें तुम्हारे समिद्ध हाँसेपर तुम्हारे पास सारे पशु बैठते हैं ; इसलिये तुम्हारा यह सुन्दर कर्म यालकयी तरह अर्पणों भी फलप्रदान करके सन्तुष्ट करता है ।

८ पवित्र दीपिवाले, फाष्टादिके बीच साँये हुए, और सुकर्म अग्निको होष करो । बहुव्याप्त, दृतस्वरूप, शीघ्रगामी, पुरातन, स्तुतियोंपर और दीप्तिमान् अग्निकी शीघ्र पूजा करो ।

९ तीन हजार तीन सौ उनतालीस देवींके अग्निकी पूजा की है, धृत द्वारा उन्हें सिक्त किया है और उनके लिये कुण्ड विस्तृत किया है । पश्चात् उन्होंने अग्निको होता मानकर कुशोंके ऊपर घंटाया है । *

* सायणाचार्यके मतसे देवता केवल ३३ ही हैं; परन्तु देवीकी विशाल महिमा बतानेके विचारसे इस मन्त्रमें ३३३६ देवींके उल्लेख किया गया है ।

१० सूक्त

अग्नि देवता । उप्यिक् वृन्द ।

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनां । देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ॥१॥
 त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीडते । गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दसे ॥२॥
 सघायस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे । सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ॥३॥
 स केतुरध्वराणामग्निर्देवभिरागमत् । अज्ञानः सप्तहोतृभिर्हविष्मते ॥४॥
 प्रहोत्से पूर्व्यं वचोऽन्ये भरता बृहत् । विपां ज्योतीषि विभूते न वधसे ॥५॥
 अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः । महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥६॥
 अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान्देवयते यज । होता मन्द्रो विराजस्यति सिधः ॥७॥
 स नः वक् दीदिहि द्युमदस्ये सुवीर्यम् । भवास्तोतृस्यो अन्तमः स्वस्तये ॥८॥

१ अग्निदेव, तुम प्रजाओंके अधिपति और दीप्तिमान् हो । तुम्हें बुद्धिमान् मनुष्य उद्दीप्त करते हैं ।

२ अग्नि, तुम होता और ऋत्विक् हो । यज्ञमें अध्वर्यु तुम्हारी स्तुति करते हैं । यज्ञके रक्षक होंकर अपने गृह (यज्ञशाला)में दीप्त होओ ।

३ अग्निदेव, तुम जातवेदा (प्राप्त-बुद्धि) हो । तुम्हें जो यजमान समिन्धनकारी हव्य दान करते हैं, वह सुवीर्य पुत्र प्राप्त करते और पशु, पुत्र आदिके द्वारा समिद्ध होते हैं ।

४ यज्ञके प्रज्ञापक वही अग्नि सात होताओं द्वारा सिद्ध होकर, यजमानके लिये, देवोंके साथ आवें ।

५ ऋत्विको, मेधावी व्यक्तियोंका तेज धारण करनेवाले, संसारके विधाता और देवोंको बुलानेवाले अग्निको लक्ष्य करके तुम लोग महान् और प्राचीन वाक्यका सम्पादन करो ।

६ महान् अन्न और धनके लिये अग्नि दर्शनीय है । जिस वाक्यके द्वारा अग्नि प्रशंसनीय होते हैं, हमारा वही स्तुति-रूप वाक्य उन्हें वर्द्धित करे ।

७ अग्नि, तुम यज्ञ-कर्त्ताओंमें श्रेष्ठ हो । यज्ञमें यजमानोंके लिये देवोंका आग करो । अग्नि, तुम होता और यजमानोंके हर्षदाता हो । तुम शत्रुओंको हराकर शोभा पा रहे हो ।

८ पावक, तुम हमें कान्तिवाला और शोभन शक्तिवाला धन दो । स्तोताओंके कल्याणके लिये उनके पास जाओ ।

त्वं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥६॥

११ सूक्त

अग्नि देवता । गायत्री छन्द ।

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥१॥

स हव्यवाहमर्त्यं उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृणवति ॥२॥

अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्वः । अर्थं ह्यस्य तरणि ॥३॥

अग्निं सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृणवत् ॥४॥

अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णीरथः सदा नवः ॥५॥

साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृतः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥६॥

अभि प्रयांसि वाहसा दाश्रवाँ अश्रोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥७॥

१ अग्नि, हव्यवाहक, अमर और मथन-रूप बल द्वारा तुम वर्द्धमान हो । प्रबुद्ध मेधावी स्तोता लोग तुम्हें भली भाँति उद्दीप्त करते हैं ।

१ अग्निदेव होता पुरोहित और यज्ञके विशेष द्रष्टा हैं । वह यज्ञको क्रमबद्ध जानते हैं ।

२ हव्यवाहक, अमर, हव्याभिलाषी, देवोंके दूत और अन्नप्रिय अग्नि प्रज्ञावान् हो रहे हैं ।

३ यज्ञके केतुस्वरूप और प्राचीन अग्नि, प्रज्ञाके बलसे, सब कुछ जानते हैं । इन अग्निका तैज आश्रकारका विनाश करता है ।

४ यज्ञके पुत्र, सनातन कहकर प्रसिद्ध तथा जातवेदा अग्निको देवोंने हव्यवाहक किया है ।

५ मनुष्योंके नेता, शीघ्रकारी, रथके समान और सदा नवीन अग्निकी कोई हिंसा नहीं कर सकता ।

६ सारी शत्रु-सेनाके विजेता, शत्रुओं द्वारा अवश्य और देवोंके पोषणकर्ता अग्नि, यथेष्ट मात्रामें विविध अन्नसे युक्त है ।

७ हव्यदाता मनुष्य हव्यवाहक अग्नि द्वारा सारे अन्न प्राप्त करता है । ऐसा मनुष्य पवित्र-कारक और दीप्ति-विशिष्ट अग्निके पाससे गृह प्राप्त करता है ।

परि विश्वानि सुधिताऽनेरश्याम मन्मभिः । विप्रासो जातवेदसः ॥८॥

अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे ॥९॥

१२ सूक्त

इन्द्र और अग्नि देवता । गायत्री छन्द ।

इन्द्राग्नी आगतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेपिता ॥१॥

इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अथा पातमिसं सुतम् ॥२॥

इन्द्रमग्निं कविच्छ्रदा यज्ञस्य जूत्या २ गुं । ता सोमस्येह तृपताम् ॥३॥

शा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥४॥

प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आवृणो ॥५॥

८ हम मेधावी और जातवेदा अग्निके स्तोत्रों द्वारा समस्त अभिलषित धन प्राप्त कर सकें ।

९ अग्नि, हम सारे अभिलषणीय धन प्राप्त कर सकें । देवता लोग तुम्हारे ही भीतर प्रविष्ट हुए हैं ।

१ हे इन्द्र और अग्नि, स्तुति द्वारा आहूत होकर तुम लोग स्वर्गसे तैयार किया हुआ और वरणीय इस सोमको लक्ष्य कर आओ । हमारी भक्तिके कारण आकर इस सोमका पान करो ।

२ इन्द्र और अग्नि, स्तोताका सहायक, यज्ञका साधक और इन्द्रियोंका हर्ष-वर्द्धक सोम जाता है । इस अभिशुत सोमका पान करो ।

३ यज्ञके साधक सोम द्वारा प्रेरित होकर स्तोताओंके सुखदाता इन्द्र और अग्निकी मैं सेवा करता हूँ । वे इस यज्ञमें सोमपान करके तृप्त हों

४ मैं शत्रु-नाशक, वृत्रहन्ता, विजयी, अपराजित और प्रचुर परिमाणमें अन्न देनेवाले इन्द्र और अग्निको बुलाता हूँ ।

५ हे इन्द्र और अग्नि, मन्त्र-शाली होकर लोग तुम्हारी पूजा करते हैं । स्तोत्र-ज्ञाता स्तोता लोग तुम्हारी अर्चना करते हैं । अन्न-प्राप्तिके लिये मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ ।

इन्द्राग्नी नवर्ति पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥६॥

इन्द्राग्नी अपसस्पर्युपपूयन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या अनु ॥७॥

इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरण्णुर्न हितम् ॥८॥

इन्द्राग्नि रोचना दिवः परिवाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्रवीर्यम् ॥९॥

२ अनुवाक । १३ सूक्त

अग्नि देवता । १३—१४ सूक्ते विश्वामित्रके पुत्र अपत्य ऋषि हैं । अनुष्टुप् छन्द ।

प्र वो देवायाम्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै ।

गसद्वेभिरासनो यजिष्ठो बर्हिरासदत् ॥१॥

ऋतावा यस्य रोदसी दत्तं सचन्त ऊतयः ।

हविष्मन्तस्तमीदृते तं सनिष्यन्तोवसे ॥२॥

६ इन्द्र और अग्नि, तुम लोगोंने एक ही वारकी चेष्टासे दासोंके नब्बे नगरोंको, एक साथ, कर्मित किया था ।

७ इन्द्र और अग्नि, स्तोता लोग यज्ञके मार्गका! जड़य ऽकरके हमारे कर्मके चारो ओर आते हैं ।

८ इन्द्र और अग्नि, तुम्हारा बल और अन्न तुम दोनोंके बीचमें, एक साथ ही, है । वृष्टि-धेरण—कार्य तुम्हीं दोनोंके बीच निहित है ।

९ इन्द्र और अग्नि, तुम स्वर्गके प्रकाशक हो । तुम युद्धमें सर्वत्र विभूषित होओ । तुम्हारी सामर्थ्य उस युद्ध-विजयका भली भाँति विदित करती है ।

१ अश्वर्युओ, अग्निदेवको जड़य करके यज्ञेय स्तुति करो । देवोंके साथ यह हमारे पास आर्य । याज्ञक-श्रेष्ठ अग्नि कृशपर बैठें ।

२ जिनके शरीरमें धावा-पृथिवी हैं, जिनके बलकी सेवा देवता लोग करते हैं, उनका संकल्प स्वर्ग नहीं होता ।

स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हिषः ।
 अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता भघम् ॥३॥
 स नः शर्माणि वीतयेथिऽर्यच्छतु शन्तमा ।
 यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि दितिभ्यो अप्स्वा ॥४॥
 दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
 ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं त्रिषर्पति विशाम् ॥५॥
 उत नो ब्रह्मल्लविष उक्थेषु देवहूतमः ।
 शं नः शोचा मरुद्भृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥६॥
 नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत् पुष्टिमद्वसु ।
 द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपन्नितम् ॥७॥



३ वही मेधावी अग्नि इन यजमानोंके प्रवर्तक हैं। वह यज्ञके प्रवर्तक हैं। वह सवके प्रवर्तक हैं। अग्नि कर्मफल और धनके दाता हैं। तुम उन अग्निकी सेवा करो।

४ वही अग्नि हमारे भोगके लिये अतीव सुखकर गृह प्रदान करें। सृष्टि-युक्त पृथिवी आकाश और स्वर्ग लोकका धन अग्निके पाससे हमारे पास आवे।

५ स्तोत लोग दीसिमान, प्रतिज्ञा नवीन, देवोंके आह्वानकारी और प्रजाधोंके पालक अग्नि ओंके स्तुति द्वारा, उद्दीपित करते हैं।

६ अग्निदेव, स्तोत्र-समयमें हमारी रक्षा करो। तुम देवोंके प्रधान आह्वानकर्ता हो। मन्त्रोच्चारण-कालमें हमारी रक्षा करो। तुम हजार धनोंके दाता हो। मरुत् लोग तुम्हें वर्द्धित करते हैं। तुम हमारे सुखकी वृद्धि करो।

७ अग्नि, तुम हमें पुत्र-युक्त, पुष्टिकारक, दीसिमान, सामर्थ्यशाली, अत्यधिक और अमूल्य सहस्रलक्ष्यक धन दो।

१७ सूक्त

अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात् सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
 विद्युद्रथः सहसस्पुलो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥१॥
 अयामि ते नम उर्वित जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्रः ।
 विद्वां आवक्षि विदुषो निषरिस मध्य आवर्हिंरूतये यजत्र ॥२॥
 द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।
 यत् सीमञ्जन्ति पुर्व्यं हविर्भिरा बन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥३॥
 मितश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नभञ्चन् ।
 यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभिद्वितीः प्रथयन्त सूर्यो नृन् ॥४॥

१ देवोंको धुलानेवाले, स्तोताओंके आनन्दवर्द्धक, सत्यप्रतिष्ठ, यज्ञकारी, अतीव मेधा और संसारके विधाता अग्नि हमारे यज्ञमें अग्रस्थान करते हैं। उनका रथ द्युतिमान है। उनकी शिक्षा उनका केश है। वह बलके पुत्र हैं। वह पृथिवीपर प्रमाको प्रकट करते हैं।

२ यज्ञवान् अग्नि, तुम्हें जज्ञ्य करके नमस्कार करता है। तुम बलवान् और कर्मज्ञापक हो। तुम्हें जज्ञ्य करके नमस्कार किया जाता है, उसे ग्रहण करो। हे यज्ञनीय, तुम विद्वान् हो, विद्वानोंको से आओ। हमें आश्रय देनेके लिये कुण्ठपर बैठो।

३ अन्न-सम्पादक उषा और रात्रि तुम्हें जज्ञ्य करके जाते हैं। अग्नि, वायु-मार्गसे तुम बलके सम्मुख जाओ। क्योंकि श्रुत्विक् जोग ह्य्य द्वारा पुरातन अग्निको भजी भाँति सिद्ध करते हैं। युगाद्वयकी तरह परस्पर संसक्त उषा और रात्रि हमारे घरमें बार-बार आकर रहें।

४ बलवान् अग्नि, मित्र, वरुण और सारे देवता तुम्हें जज्ञ्य करके स्तोत्र करते हैं। क्योंकि हे बलके पुत्र अग्नि, तुम्हीं सूर्य या स्वामी हो। मनुष्योंकी पथ-प्रदर्शक किरणोंको फैलाकर प्रमांमें समान-स्थित हो।

वयं ते अस्य ररिमाहि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
 यजिष्ठेन मनसा यत्तिदेवानस्त्रोधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥६॥
 त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यतयो विवाजाः ।
 त्वं देहि सहस्रिणां रयिं नोद्रोधेण वचसा सत्यमग्ने ॥६॥
 तुभ्यं दत्त कविकतो यानीमा देव मर्तारो अश्वरे अकर्म ।
 त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥७॥

१५ सूक्त

अग्नि देवता । १५ और १६ सूक्तोंके कतगोत्रोत्पन्न उत्कील ऋषि हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

विपाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
 सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥१॥

५ अग्नि, ध्याज हाथ उठाकर हम तुम्हें शोभन हव्य प्रदाम करेंगे । तुम मेधावी हो । नमस्कारसे प्रसन्न होकर तुम अपने मन्मं यन्नामिलाप करते हुए प्रभूत स्तोत्रों द्वारा देवोंकी पूजा करो ।

६ बलके पुत्र अग्नि, तुम्हारे पाससे होकर यजमानके पास प्रभूत रक्षण जाता है; अन्न भी जाता है । प्रिय वचन द्वारा तुम हमें अच्छल और सहस्र-सङ्ख्यक धन दो ।

७ हे समर्थ, सर्वज्ञ और दीप्तिमान् अग्निदेव, हम मनुष्य हैं । हम तुम्हें उद्देश्य करके यज्ञमें यह जो हव्य देते हैं, हे अमर, वह सब हव्य तुम आस्वादित करो और सारे यजमानोंकी रक्षा करनेके लिये जागरित होओ ।

१ अग्निदेव, तिस्तीर्षी सैजके द्वारा तुम अतीव प्रकाशमान हो । तुम शत्रुओं और रोग-रहित यज्ञसोंका विनाश करो । अग्निदेव उरुद्ध, सुखदाता, महान् और उत्तम आह्वानवाले हैं । मैं उनके ही रक्षणमें रहूँगा ।

त्वं नो अस्या उपसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।
 जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं म अग्ने तन्वा मुजात ॥२॥
 त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो विभाहि ।
 वसो नेपि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥३॥
 अषाहो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वा सौभगा संजिगीवान् ।
 यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोजातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥४॥
 अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरुषिण देवाँ अच्छादीद्यानः सुमेधाः ।
 रथो न सरिनरभिवद्भि वाजमग्ने त्वं रोदसी नः सु^म ॥ ५ ॥
 प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सुदोषे ।
 देवोभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परिष्ठात् ॥६॥

२ अग्निदेव, तुम लपाके प्रकट होने और सूर्यके उदित होनेपर हमारी रक्षाके लिये जागरित होओ अग्निदेव, तुम स्वयम्भू हो। जैसे पिता पुत्रको ग्रहण करता है, वैसे ही तुम हमारे स्तोमको ग्रहण करो।

३ अभीष्ट-चर्पक अग्नि, तुम मनुष्योंके दर्शक हो। तुम अंधिरी रातमें अधिक दीप्तिमान् होते हो। तुम बहुत ज्वाला विस्तृत करते हो। हे निरास पिता, हमें कर्मफल प्रदान करो। हमारे निवारण करो। युवक अग्नि तुम हमें धनाभिलाषी करो।

४ अग्नि, शत्रु लोग तुहें परास्त नहीं कर सकते। तुम अभीष्टचर्पक हो। तुम सारी शत्रु-पुरी धन जीत करके प्रदीप्त होओ। हे सुप्रणीत और ज्ञातवेदा अग्नि, तुम महान्, आश्रयदाता और यज्ञके निर्वाहक होओ।

५ हे जगज्जीर्णकर्त्ता अग्निदेव, तुम सुमेधा और दीप्तिमान् हो। देवोंके लिये तुम सारे विद्वि-रहित करो। अग्निदेव, तुम यहीं ठहरकर रथकी तरह देवोंको लक्ष्य करके हमारा ह्वय करो। तुम धावापृथिवीको उत्तम रूपसे युक्त करो।

६ अभीष्टचर्पक अग्नि, तुम हमें चर्चित करो। हमें अन्न-प्रदान करो। हे देव, सुन्दर दीप्ति तुम सुशोभित होकर देवोंके साथ हमारी धावापृथिवीको दोहनके योग्य बनाओ। मनुष्योंकी धृष्ट हमारे पास न आवे।

इडामग्ने पुरुदंस सनिं गोः शश्वत्तम हवमानाय साध ।
स्थान्नः सनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥७॥

१६ सूक्त

अग्नि देवता । वृहती छन्द ।

अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य ।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥१॥
इमं नरो मरुतः सश्रता वृधं यस्मिन्नायः शेष्वृधासः ।
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥२॥
स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य ।
तुविद्युन्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोनमीवस्य शुष्मिणः ॥३॥
चक्रियो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिदेवैष्वा दुदः ।
आ देवेषु यतत आसुवीर्य आशंस उत नृणाम् ॥४॥

७ अग्निदेव, तुम स्तोताओं अनेक कर्मोंकी कारणाभूत और धनु-प्रदात्री भूमि सदा प्रदान करो। हमें वंश-वर्द्धक और सन्तति-जनक एक पुत्र प्राप्त हो। अग्निदेव, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

१ अग्निदेव उत्तम सामर्थ्यवाले, महासौभाग्यके स्वामी, गौ आदिसे युक्त, अपत्यवाले धनके अधिपति और वृत्रहन्ताओंके ईश्वर हैं।

२ नेता मरुतो, सौभाग्यवर्द्धक अग्निमें मिलो। अग्निमें सुखवर्द्धक धन है। मरुद्गण से आने संग्राममें शत्रुओंको परास्त करते हैं। वह सदा ही शत्रुओंकी हिंसा करते हैं।

३ बहुधनशाली और अभीष्टवर्षक अग्नि, हमें तुम प्रभूत, प्रजायुक्त एवं आरोग्य, बल और सामर्थ्य वाला धन देकर तीक्ष्ण करो।

४ जो अग्नि संसारके कर्ता हैं, वह सारे संसारमें अनुप्रविष्ट होते हैं। शरको सहन करके अग्नि देवोंके पास हव्य ले आते हैं। अग्नि स्तोताओंके सामने आते हैं, यज्ञनेताओंके स्तोत्रमें आते हैं और मनुष्योंके युद्धमें आते हैं।

मा नो अग्ने मत्तये सावीरतायै शीरधः ।
 मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदेप द्वेषांस्याकृधिः ॥५॥
 शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतोऽग्ने बृहतो अध्वरे ।
 सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्यु म्न यशस्वता ॥६॥

१७ सूक्त

अग्नि देवता । १७-१८ सूक्तोंके विश्वामित्रके अपत्य क्त ऋषि हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरव्यते विश्ववारः ।
 शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥१॥
 यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।
 एवानेन हविषा यज्ञि देवान्मनुष्वद्यज्ञं प्रतिरेममद्य ॥२॥
 त्रीण्यायंपि तव जातवेदस्तिस् आजानीरुपसस्ते अग्ने ।
 ताभ्रदेवानामवो यज्ञि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥३॥

१ बलके पुत्र अग्नि, तुम हमें शशुप्रस्त, शीर-शून्य, पणुहीन अथवा निन्दनीय नहीं करना । प्रति द्वेष मत करो ।

२ समग्र अग्नि, तुम यज्ञमें प्रभूत और अपत्यशाली अन्नके अधीश्वर हो । हे महाधन, तुम प्रभूत, मुखकार और यज्ञोपदेक बन दो ।

१ अग्नि धर्मधारक, ज्वालावाले केशसे संयुक्त, सवके स्वीकरणीय दीप्ति-रूप, पवित्र सुवत् है । यह यज्ञके प्रारम्भमें क्रमशः प्रज्वलित होकर देवोंके यज्ञके लिये घृतादि द्वारा सिक्त होते

२ अग्निदेव, तुमने जैसे पृथिवीको हव्य दिया था; हे जातवेदा, तुम सर्षक हो; धुएँ जैसे हव्य प्रदान किया था, धैसे ही हमारे हव्यके द्वारा देवोंका यज्ञ करो । मनुके यज्ञकी हमारे इस यज्ञको पूर्ण करो ।

३ हे जातवेदा, तुमद्वारा अन्न ध्राज्य, औषधि और सोमके रूपसे तीन प्रकारका है । हे अ पृक्ताह, अणुहीन और समग्न नामक तीन उष्ण देवताएँ तुम्हारी माताएँ हैं । तुम उनके साथ हव्य प्रदान करो । तुम विद्वान् हो । तुम यजमानके सुख और कल्याणके कारण बनो ।

अग्निं सुदीप्तिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेडयं जातवेदः ।
 त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृणवन्ममृतस्य नामिद् ॥४॥
 यस्त्वद्वोता पूर्वो अग्ने यजीर्यान्द्वता च सत्ता स्वधया च शम्भुः ।
 तस्यानु धर्मप्रयजा चिकित्वोथानो धा अध्वरं देववीतो ॥५॥

१८ सूक्त

अग्नि देवता । तिष्ठपु वन्द ।

भवानो अग्ने सुसना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
 पुरुद्रुहो हि चित्तयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥१॥
 तपोष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान्तपाशंससररुषः परस्य ।
 तपोवसो चिकितानो अचित्तान्विते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥२॥
 इध्मेनाग्ने इच्छामानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
 यावदीशे ब्रह्मणा बन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥३॥

४ जातवेदा, तुम दीप्तिशाली, सुदर्शन और स्तुति-योग्य अग्नि हो। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। देवोंने तुम्हें आसक्ति-शून्य और हव्य-वाहक दूत बनाया है; अमृतकी नामि बनाया है।

५ अग्निदेव, तुमसे प्रथम और विशेष-यज्ञकर्ता जो होता मध्यम और उत्तम नामक दो स्थानोंपर, स्व के साथ, बैठकर सुखी हुए थे, हे सर्वज्ञ अग्नि, उनके धर्मको लक्ष्य करके विशेष रूपसे यज्ञ करो। अनन्तर हे अग्नि, देवोंकी प्रसन्नताके लिये हमारे इस यज्ञको धारण करो।

१ अग्निदेव, जैसे मित्र मित्रके प्रति और माता-पिता पुत्रके प्रति हितैषी होते हैं, वैसे ही हमारे सामने आनेमें प्रसन्न होकर हितैषी बनो। मनुष्योंके द्रोही मनुष्य हैं; इसलिये तुम विरुद्धाचारी शत्रुओंको भक्षसात् करो।

२ अग्निदेव, अभिभवकर्ता शत्रुओंको भली भाँति वाधा दो। जो सब शत्रु हव्य दान नहीं करते, उनकी अभिलाषा व्यथ कर दो। निवास-दाता और सर्वज्ञ अग्नि, तुम चञ्चल-चित्त मनुष्योंको सन्तप्त करो। इसीलिये तुम्हारी किरणें अजर और वाधा-शून्य हों।

३ अग्नि, मैं धनाभिलाषी होकर तुम्हारे वेग और बलके लिये समिधा और घृतके साथ हव्य प्रदान करता हूँ। स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति करके मैं जयतक रहूँ, तबतक मुझे धन दो। इस स्तुतिको अपरिमित धनदानके लिये दीप्त करो।

उच्योचिषा सहस्रपुत्र स्तुतो बृहद्वयः शशमानेषु धेहि ।
 रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मज्जा ते तन्वं भूरिकृत्वः ॥४॥
 कृधिरत्नं सुसन्नितर्धानानां स घेदग्ने भवसि यत् समिद्धः ।
 स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत्सुग्रा करस्ना दधिषे वपूषि ॥५॥

१६ सूक्त

अग्नि देवता । १६-२२ सूक्तोंके अग्नि कुशिकके अपत्य गाथी हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

अग्निं होतारं प्रवृणो मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम् ।
 स त्वो यच्चहेवताता यजीयात्राये वाजाय वनते मघानि ॥१॥
 प्र ते अग्ने हविष्मतीमियर्ष्यच्छा सुद्युभ्रां रातिनो घृताचीम् ।
 प्रदक्षिणिद्वतातिमुखाः संरातिभिर्वसुभिर्भ्यज्ञमश्रेत् ॥२॥
 स तेजीयसा मनसा त्वोत् उत शिञ्जस्वपत्यस्य शिचोः ।
 अग्नें रायो नृतमस्य पूभूतो भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥३॥

४ यत्नके पुत्र अग्नि, तुम अपनों दीप्तिके दीप्तिमान् बनो । स्तुत होकर तुम प्रशंसक विश्वामित्रके वंशधरोंको धन-युक्त करो, प्रभूत अन्नदान करो तथा आराध्य और अग्रय प्रदान करो । कर्मकारक अग्नि, हम लोग बार-बार तुम्हारे शरीरका परिमार्जन करेंगे ।

५ दाता अग्नि, धर्मोंमें श्रेष्ठ धन प्रदान करो । जिस समय तुम समिद्ध होओ, उसी समय वैसा धन दं । भाग्यवान् स्तोताके गृहकी और अपनों रूपवती दानों भुजाओंको, धन देनेके लिये, पस्तारो ।

१ देवोंके स्तोता, मेधावी, सर्वज्ञ और अमूर्त अग्निको हम इस यज्ञमें होतृ-रूपसे स्वीकार करते हैं । यह अग्नि सर्वापिचा यज्ञ-परायण होकर हमारे लिये देवोंका यज्ञ करें । धन और अन्नके लिये यह हमारे हृदयका प्रदण करें ।

२ अग्नि, मैं हृदय-युक्त, तेजस्वी, हृदयदाता और धृतसमन्वित ब्रह्मको तुम्हारे सामने प्रदान करता हूँ । देवोंके वष्टुमान कर्ता अग्नि, हमारे दातव्य धनके साथ प्रदक्षिणा करके यज्ञमें सम्मिलित हों ।

३ अग्नि, जिसकी तुम रक्षा करते हो, उसका मन अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है । उसे उत्तम अपत्य-यात्न धन प्रदान करो । फलदानेच्छुक अग्नि, तुम अतीव धनदाता हो । हम तुमारी महिमासे रक्षित होंगे तथा तुम्हारे स्तुति करते हुए धनाधिपति होंगे ।

भूरीणि हि त्वे दधिरेअनीकाग्ने देवास्य यज्यवो जनासः ।
 स आवह देवतातिं यद्विष्ट शब्दो यदद्य दिव्यं यजासि ॥१॥
 यत्त्वा होतारमनजन्मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः ।
 स त्वं नो अग्नेवितेहवोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥५॥



२० सूक्त

अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अग्निमुषसमशिवना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्त्यैः ।
 सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥१॥
 अग्न त्रीते वाजिना त्री पधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वाः ।
 तिस्र उते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥२॥
 अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोममृस्य नाम ।
 याश्च माया मायिनां दिश्वमिन्व त्वे पूर्वाः सन्दधुः पृष्ठवन्धो ॥३॥

१ द्युतिमान् अग्निदेव, यज्ञ-कर्त्ताओंने तुम्हें प्रभूत दीप्ति प्रदान की है। शुचतम अग्नि, चूँकि
 म-यज्ञमें स्वर्गाय तेजकी पूजा करते हो; इसलिये देवोंको बुलाओ।

५ अग्निदेव, चूँकि यज्ञके लिये बैठे हुए दीप्तिशाली आत्मीक लोग यज्ञमें तुम्हें होता कहकर सिक्त
 हते हैं; इसलिये तुम हमारी रक्षाके लिये जागो। हमारे पुत्रोंको अधिक अन्न दो।

१ हव्यवाहक उपाके अधिकार दूर करते समय अग्निदेव उपा, अश्विनीकुमारों और दधिका-
 (अश्वरूपी अग्नि) नामक देवताको ऋचाके द्वारा बुलाते हैं। सुन्दर द्युतिमान् और परस्पर मिलित
 वता लोग हमारे यज्ञकी अभिलाषा करके उस ऋचाको सुनें।

२ अग्निदेव, तुम्हारा अन्न तीन प्रकारका है; तुम्हारा स्थान तीन प्रकारका है। यज्ञ-सम्पादक
 अग्नि, देवोंकी उदर-पूर्ति करनेवाली उम्हारी तीन जिह्वाएँ हैं। तुम्हारे तीन प्रकारके शरीर देवोंके द्वारा
 प्रभिलपित हैं। अप्रमत्त होकर तुम उन्हीं तीनों शरीरोंके द्वारा हमारी स्तुतिकी रक्षा करो।

३ हे द्युतिमान्, जातवेदा, मरण-शून्य और अन्नवान् अग्नि, देवोंने तुम्हें अनेक प्रकारके तेज दिये
 हैं। हे संसारके दृष्टिकर्त्ता और प्रार्थित फलदाता अग्नि, मायादिव्योंकी जिन मायाओंको देवोंने तुम्हें प्रदान
 किया है, वह सब तममें ही है।

अग्निर्नेता भगइव क्षितीनां देवीनां देवऋतुपा ऋतावा ।
 स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्रवाति दुरिता गृणन्तम् ॥४॥
 दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
 अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून् द्रौं आदित्याँ इह हुवे ॥५॥

२१ सूक्त

अग्नि देवता । विष्णु, अनुष्णु और बृहती इन्द्र ।

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
 स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥१॥
 घृतवन्तः पावक ते स्तोकाश्चोतन्ति मेदसः ।
 स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठ नो धेहि वार्यम् ॥२॥
 तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोग्ने विप्राय सन्त्य ।
 ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥३॥

४ ऋतुकर्ता सूर्यको तरह जो अग्नि देवीं और मनुष्योंके नियन्ता हैं, जो अग्नि सत्यकारी, वृत्रहता, सनातन, सर्वज्ञ और द्युतिमान हैं, वह स्तोताको, सारे पापोंको लँघाकर, पार ले जायँ ।

५ मैं दधिक्रा, अग्नि, देवी उषा, बृहस्पति, द्युतिमान सविता, अश्विद्वय, भग, वसु, द्रु और आदित्योंको इस यज्ञमें बुलाता हूँ ।

१ जातवेदा अग्नि, हमारे इस यज्ञको देवोंके पास समर्पित करो । हमारे हव्यका सेवन करो । हे होता, वेदकर सबसे पहले मेद और घृतके विन्दुओंको भली भाँति खाओ ।

२ पावक, इस साङ्ग यज्ञमें घृतसे युक्त सवमें दो विन्दु तुम्हारे और देवोंके पीनेके लिये गिर रहे हैं । इसलिये हमें श्रेष्ठ और वरणीय धन दो ।

३ भजनीय अग्निदेव, तुम मेधावी हो । घृतखावी सब विन्दु तुम्हारे लिये हैं । तुम ऋषि और श्रेष्ठ हो । तुम प्रज्वलित होते हो । यज्ञ-पालक बनो ।

तुंयं श्रोतन्यधिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ॥

कविशस्तो बृहता भानुनागाहव्या जुषस्व मेधिर ॥४॥

ओजिष्ठं ते मध्यते मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।

श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि ॥५॥

२३ सूक्त

अग्नि देवता । अनु दुग् और तिपुद्गु बन्द ।

अयंसो अग्निर्थास्मिन् सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।

सहस्रिणां वाजमत्यं न सतिं ससवान्तसन्तन् स्तूयसे जातवेदः ॥१॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्सु यजल ।

येनान्तरिक्षसुर्वाततस्थ वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥२॥

४ हे सततगमनशील और शक्तिमान् अग्नि, तुम्हारे लिये मेदो-रूप हव्यकं सब बिन्दु चरित होते हैं। कवि लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। महान् तेजके साथ आओ। हे मेधावी, हमारे हव्यका सेवन करो।

५ अग्निदेव, हम अतीव सार-युक्त मेद, पशुके मध्य भागसे, उठाकर तुम्हें देंगे। निवासप्रद अ.ने, चमड़ेके ऊपर जो सब बिन्दु तुम्हारे लिये गिरते हैं, वह देवोंमेंसे प्रत्येकको विभाग करके दो।

१ सोमामिलाषी इन्द्रने जिन अग्निमें अभिषुत सोमको अपने उदरमें रखा था, यह वही अग्नि है। हे सर्वज्ञ अग्नि, जो हव्य नाना-रूपवाला और अश्वकी तरह वेगशाली है, उसकी तुम सेवा करो। संसार तुम्हारी स्तुति करता है।

२ यजनीय अग्नि, तुम्हारा जो तेज द्युलोक, पृथ्वी, ओषधियों और जलमें है, जिसके द्वारा तुमने अन्तरीक्षको व्याप्त किया है, वह तेज उज्ज्वल, समुद्रके समान विशाल और मनुष्योंके लिये दर्शनीय है। *

* द्युलोकमें सूर्य, भूलोकमें आहवनीय, ओषधियों में निगूढ़ तेज, समुद्र (जल)में वृद्धवानल और अन्तरीक्षमें वायु-रूप अग्नि वर्तमान हैं। अग्निका ऐसा तेज, समुद्रके समान विशाल और व्यापक है ही।

अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छादेवा ऊचिषे धिष्याद्या ये ।
 या रोचने पशस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥३॥
 पुरीष्यासो अग्रयः प्रावणोभिः सजोषसः ।
 जुषन्तां यज्ञमद्रहोनसीवा इषो महीः ॥४॥
 इडामग्ने पुरुदंसं सर्नि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
 स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥

३३ सूक्त

अग्नि देवता । भरतके पुत्र देवश्रवा और देववात ऋषि हैं । बृहती और लिष्टुषु कन्द ।

निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणोता ।

जूर्यत्स्वाग्निरजरो वनेष्वत्वा दधे अमृतं जातवेदाः ॥१॥

अमन्थिषां भारता रेवदग्नि देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।

अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनुद्यून् ॥२॥

३ अग्नि, तुम इयुजांकके जलके सामने जा रहे हो, प्राणालम्क देवोंको एकत्र करते हो । सूर्यके ऊपर अघस्थित रोचन नामके लोकमें और सूर्यके नीचे जो जल है, उन दोनोंको तुम्हीं प्रेरित करते हो ।

४ सिकता-संमिश्रित अग्नि, खोदाई करनेवाले हथियारोंमें मिलाकर इस यज्ञका सेवन करें । द्रोह-रहित, रोगादिशून्य और महान् अन्न हमें दान करें ।

५ अग्नि, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंकी कारणभूत और धेनु-प्रदात्री भूमि सदा दो । हमारे वंशका विस्तारक और सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो । अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो ।

१ जो अग्नि मन्थन द्वारा उत्पन्न, यज्ञमानके घरमें स्थापित, युवा, सर्वज्ञ, यज्ञके प्रणोता, जातवेदा और महारण्यका विनाश करके भी स्वयं अजर हैं, वही अग्नि इस यज्ञमें अमृत धारण करते हैं ।

२ भरतके पुत्र देवश्रवा और देववात सुदक्ष और धनवान् अग्निको मन्थन द्वारा उत्पन्न करते हैं । अग्निदेव, तुम बहुत धनके साथ हमारी ओर देखो और प्रतिदिन हमारा अन्न ले आओ ।

दशक्षिपः पूर्यं सीमजीजनन् सुजातं मातृषु प्रियम् ।
 अग्निं स्तुहि देववातं देवश्रवो यो जनानामसद्रशी ॥३॥
 नित्वा दधे वर आपृथिव्या इडायास्पदे सुदिनत्वे अहूनाम् ।
 दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥
 इडामग्ने पुरदसं सनि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
 स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥



२४ सूक्त ।

अग्नि देवता । २४-२५ विश्वामित्र ऋषि । अनुष्टुप् और गायत्री छन्द ।

अग्ने सहस्र पृतना अभिमातीरपास्य ।

दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धायन्नवाहसे ॥१॥

अग्न इडा समिध्यसे वीतिहोत्रो अभर्त्यः । जुषस्व सूनो अध्वरम् ॥२॥

३ दस अग्निलियोने इन पुरातन और कर्मनीय अग्निको उत्पन्न किया है । हे देवश्रवा, अर्पणरूप माताओंके बीच सुजात और प्रिय तथा देववात द्वारा उत्पादित अग्निकी स्तुति करो । वही अग्नि लोगोंके वंशवर्ती होते हैं ।

४ अग्नि, सुदिन (प्रधान-देव-पूजा-दिन) की प्रासिके लिये गो-रूपिणी पृथिवीके उत्कृष्ट स्थानमें तुम्हें हम स्थापित करते हैं । अग्निदेव, तुम दृषद्वती (राजपूतानेकी सिकतामें विन्ध घग्घर नदी), आपया (कुरुक्षेत्रस्थ नदी) और सरस्वती (कुरुक्षेत्रीय सरस्वती नदी) के तटोंपर रहनेवाले मनुष्योंके गृहमें धन-युक्त होकर दीप्त होओ ।

५ अग्नि, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंके कारण और धेनुप्रदात्री भूमि सदा प्रदान करो । हमें वंश-विस्तारक और सन्तति-जनयिता एक पुत्र दो । अग्नि, हमारे ऊपर तुम्हारा अनुग्रह हो ।

१ अग्नि, तुम शत्रु-सेनाको पराभूत करो । विघ्न-कर्त्ताओंको दूर कर दो । तुम्हें कोई जीत नहीं सकता । तुम शत्रुओंको जीत कर यजमानको अन्न दो ।

२ अग्नि, तुम यज्ञमें प्रीतमान और अभर हो । तुम्हें उत्तर वेदीपर प्रज्वलित किया जाता है । तुम हमारे यज्ञकी भली भाँति सेवा करो ।

अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं वहिः सदो मम ॥३॥

अग्ने विश्वेभिरशिभिर्दंभिमर्महया गिरः । यज्ञेषु य उचायवः ॥४॥

अग्ने दा दाणुषे रथि वीरवन्तं परीणासम् । शिशीहि नः सूनुमतः ॥५॥

— ❦ —

२५ सूक्त

वसुधैव कुटुम्बक इन्द्र और अग्नि देवता हैं; शेषके अग्नि हैं । विराट् छन्द ।

अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास्तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।

ऋधग्दंवा इह यजा चिकित्वः ॥१॥

अग्निः सनोति वीर्याणि विद्वान्त्सनोति वाजममृताय भूषन् ।

स नो देवाँ एहवहा पुरुजो ॥२॥

अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्त्रे आभाति देवी अमृते अमूरः ।

क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः ॥३॥

३ अग्नि, तुम अग्ने तेजसे सदा जागरित हो । तुम यज्ञके पुत्र हो । मैं तुम्हें बुलाता हूँ । इस कुशपर वंश ।

४ अग्नि, जो तुम्हारे पूजक हैं, उनके यज्ञमें समस्त तेजस्वी अग्नियोंके साथ स्तुतिकी मूर्ति रक्षा करो ।

५ अग्नि, तुम हयदाताको धीर्ययुक्त और प्रभूत धन दो । हम पुत्र-पौत्रवाले हैं । हमें तीक्ष्ण करो

१ अग्निदेव, तुम सूर्यण, चिद्रथान, सुदेवताके पुत्र और पृथिवीके तनय हो । चेतनावान् अग्नि, तुम देवोंके इस यज्ञमें पृथक्-पृथक् यज्ञ करो ।

२ विद्वान् अग्नि सामर्थ्य प्रदान करते हैं । अग्नि अपनेको विभूषित करके देवोंको अन्न प्रदान करते हैं । हे बहुविध अन्नवाले अग्नि, हमारे लिये देवोंको इस यज्ञमें ले आओ ।

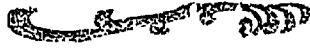
३ सूर्यण, जगन्पति, बहुदानियुक्त, बल और अन्नवाले अग्नि संसारकी माता, द्युतिमती मरणाशून्या द्यावा-पृथिवीको प्रकाशित करते हैं ।

अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोपयातम् ।

अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥४॥

अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे नित्यः सूनो सहसो जातवेदः ।

सधस्थानि मह्यमान ऊती ॥५॥



२६ सूक्तम्

१-३ के वैश्वानर, ४-६ के मरुद्गया, ७-८ के ब्रह्म (वैश्वानर अग्नि) और ९ के विश्वामित्रके उपाध्याय देवता हैं । विश्वामित्र ऋषि । ७ वीं ऋचाके ऋषि अग्नि वा ब्रह्म हैं । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

वैश्वानरं मनसाग्निं निचार्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।

सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीभीरुखं कुशिकासो हवामहे ॥१॥

तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।

बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुप्यदम् ॥२॥

४ अग्निं, तुम और इन्द्र यज्ञकी हिंसा न करके अभिषव-प्रदाता इस गृहमें, सोमपानके लिये, आओ ।

५ बलके पुत्र, नित्य और सर्वज्ञ अग्नि, आश्रय दान-द्वारा तुम जीवलोकोको अलंकृत करते हुए लके स्थान अन्तरीक्षमें सुशोभित होते हो ।

१ हम कुशिक-गोत्रोद्भूत हैं । धनकी अभिलाषासे हव्यको संग्रह करते हुए भीतर ही भीतर वैश्वानर अग्निको जानकर-स्तुति-द्वारा उन्हें बुलाते हैं । वे सत्यके द्वारा अनुगत हैं; स्वर्गका विषय जानते हैं; इका फल देते हैं; उनके पास रथ है; वह यज्ञमें आते हैं ।

२ आश्रय-प्राप्ति और यज्ञमानके यज्ञके लिये उन शुभ्र, वैश्वानर, मातरिश्व (विद्युद्भूत) ऋचा-तय, यज्ञपति, मेधावी, श्रोता, अतिथि और क्षिप्रगामी अग्निको हम बुलाते हैं ।

अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्धुगे-धुगे ।
 स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जाश्विः ॥३॥
 प्र यन्तु वाजास्तविपीभिरग्नयः शुभे संमिश्लाः पृषतीरयुक्षत ।
 बृहदुजो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥४॥
 अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आत्वेपमुग्रसः ईमहे वयम् ।
 ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिशिजः सिंहा न हेषकतवः सुदानवः ॥५॥
 व्रातं व्रातं गणं गणं मुशस्तिभिरनेर्भामं मस्ताभोज ईमहे ।
 पृषदश्वासो अनवधराधसो गन्तारो यज्ञ विदथेषु धीराः ॥६॥
 अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं मत्रासन् ।
 अर्कत्रिधानृजसो विमानोजस्रो धर्मो हविरस्मि नाम ॥७॥
 त्रिभिः पवितैरुपुष्यर्कं हृदामतिं ज्योतिरनु पूजानन् ।
 वर्षिष्टं रत्नमकृत स्वधाभिरादि व्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥८॥

३ दिनदिनानेवाका घोंड़का वचन जेने अपनी माताके द्वारा वर्द्धित होता है, वैसे ही प्रतिदिन वैश्वानर अर्थात् कौशिकीके द्वारा वर्द्धित होते हैं। देवोंमें जानकर अग्नि हमें उत्तम अश्व, उत्तम वीर्य और उत्तम धन प्रदान करें।

४ अग्नि-रूप अश्वरुग्ण गमन करे: बली मरुतोंके साथ मिलकर पृषती (वाइच) बाहनोंको संयुक्त करें। सर्वेश और अहिंसनीय मरुद्रुग्ण अधिक जलशाली और पर्वतसदृश मेघको बन्धित करते हैं।

५ मरुद्रुग्ण अग्निके आश्रित और सन्तारके आपर्पक हैं। उन्हीं मरुतोंके दीत और उग्र आश्रयके लिये हम भलों भाँति याचना करते हैं। वर्षण-रूप-धारी, हेपा (दिनदिनाना)-शब्द-कारी और सिंहके समान गजजनेवाले मरुद्रुग्ण विशेषरूपसे जल देते हैं।

६ बलके दल और कुण्डके कुण्ड स्तुतिमंत्रों द्वारा अग्निके तेज और मरुतके बलकी हम याचना करते हैं। विन्दु-चिह्नित अश्व (पृषती)वाले और अक्षय धन-संयुक्त तथा धीर मरुद्रुग्ण हृदयके उद्देश्यसे यज्ञमें जाते हैं।

७ मैं अग्नि या परब्रह्म जन्मसे ही जातवेदा या परतत्त्व-रूप हूँ। घृत या प्रकाश ही मेरा नेत्र है। मेरे मुखमें अमृत है। मेरे प्राण त्रिविध (वायु-सूर्य दीति) हैं। मैं अन्तरीक्षको मापनेवाला हूँ। मैं अक्षय उन्नाय हूँ। मैं हृदय-रूप हूँ।

८ अन्तःकरण द्वारा मनोहर उशोतिकी भावों भाँति जानकर अग्निने अग्नि-वायु-सूर्य-रूप तीन पक्षीरूपोंसे पूजनीय आत्माको शुद्ध किया है। अग्निने अपने रूपों द्वारा अपनेको अतीव रमणीय किया था तथा दूसरे ही क्षण व्यावा-पृथिवीको देखा था।

शतधारमुत्समन्नीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम् ।
मेलिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥६॥

३७ सूक्त

अग्नि देवता । प्रथम ऋचाके देवता ऋतु या अग्नि । यहाँ से ३२ सूक्तवक्त्रके
अग्नि विश्वामित्र हैं । गायत्री छन्द ।

प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या । देवाङ्गिगाति सुम्नयुः ॥१॥
ईले अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् । श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥२॥
अग्ने शक्रेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनम् । अति द्वेषांसि तरेम ॥३॥
समिध्यमानो अध्वरेऽग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्केशस्तमीमहे ॥४॥
पृथुपाजा अमर्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥५॥
तं सवाधो यतश्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये ॥६॥

६ शत धारवाले स्रोतकी तरह अविच्छिन्न प्रवाहवाले, विद्वान्, पालक, वाक्योंका मेल कराने वाले, माता-पिताकी गोदमें प्रसन्न और सत्यवादी (विश्वामित्रके उपाध्याय वा अग्नि) को, हे धावा-पृथिवी, तुम पूर्ण करो ।

१ अतुओं, ऋक् और हविवाले देवता, पशु, मांस, अर्द्ध मांस आदि तुम्हारे यजमानके लिये सुखकी इच्छा करते हैं और यजमान देवोंको प्राप्त करता है ।

२ मेधावी, यज्ञ-निर्वाहक, वेगवान् और धनवान् अग्निकी, स्तुति-वचनोंके द्वारा, मैं पूजा करता हूँ ।

३ दीप्तिमान् अग्निदेव, हव्य तैयार करके तुम्हें हम यहीं रख सकेंगे और पापसे उत्तीर्ण होंगे ।

४ यज्ञके समय प्रज्वलित, उबालावाले केशसे संयुक्त, पावक तथा पूजनाय अग्निके पास हम अभिलषित; फलकी याचना करते हैं ।

५ प्रभूत तेजवाले, मरण-शून्य, घृतशोधन-कर्ता और सम्यक् पूजित अग्नि यज्ञका हव्य ले जायँ ।

६ यज्ञ-विघ्न-नाशक और हव्ययुक्त ऋत्विकोंने सुकको संयत करके, आश्रय-प्राप्तिके लिये, एवं प्रकार स्तुतिके द्वारा उन अग्निको अपने अभिमुख किया था ।

होता देवो अमर्त्यः परस्तादेति मायया । विदधानि प्रचोदयन् ॥७॥
 वाजी वाजेषु धीयतेध्वरेषु प्रणीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥८॥
 धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमादधे । दक्षस्य पितरं तना ॥९॥
 नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येला सहस्कृत । अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥१०॥
 अग्निं यन्तुरमसुरमृतस्य योगे वनुषः । विप्रा वाजैः समिन्धते ॥११॥
 ऊर्जां नपात्तमध्वरे दीदिवांसमुपधावि । अग्निमीलै कविक्रतुम् ॥ १२ ॥
 ईलेन्यां नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समशिरिध्यते वृषा ॥ १३ ॥
 वृषो अग्निः समिन्धतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईलते ॥१४॥
 वृषां त्वा वयं वृषन्वृषाणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥१५॥

७ हॉम-निष्पादक, अमर और सुतिमान् अग्नि यज्ञ-कार्यमें लोगोंको उच्चैजित करके यज्ञ-कार्यकी अभिप्राताके सहयोगसे अग्रगन्ता होने हैं ।

८ यत्नवान् अग्नि युद्धमें प्राणे स्थापित किये जाते हैं । यज्ञ-कालमें वह यथास्थान निक्षिप्त होते हैं । श्व मेषावी और यज्ञ-सम्पादक हैं ।

९ जो अग्नि कर्म इंचार धरणीय हैं, भूतोंके गर्भ-रूपसे अवस्थित हैं, पितृ-स्वरूप हैं, उन्हीं अग्निको दक्षका पुत्री (यज्ञ-भूमि) धारणा करती हैं ।

१० यज्ञ-सम्पादित अग्नि, तुम उत्कृष्ट दीप्तिसे युक्त, हव्याभिलाषी और धरणीय हो । तुम्हें दक्षकी तनया इला (देवी-रूपा भूमि) धारणा करती हैं ।

११ मेषावी अथवा लोण संस्कारके नियामक और जलके प्रेरक अग्निको, यज्ञके सम्पादनके लिये, अन्न द्वारा, मर्जा मांति, उदीप्त करते हैं ।

१२ अन्नके गता, अन्तरीक्षके पास दीप्तिमान् और सर्वज्ञ अग्निकी यज्ञकी मैं स्तुति करता हूँ ।

१३ पूजनीय, नमस्कार-योग्य, दर्शनीय और अग्नीष्टवर्षी अन्धकारको दूर करते हुए प्रज्वलित होते हैं ।

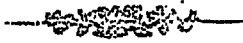
१४ अग्नीष्टवर्षी और अद्रवकी तरह देवोंके हृदयवाहक अग्नि प्रज्वलित होते हैं । हविष्मान् अग्निकी मैं पूजा करता हूँ ।

१५ अग्नीष्टवर्षी अग्नि, हम घृत आदिका सेचन करते हैं, तुम जलका सेचन करते हो । हम तुम्हें दीप्त करते हैं । तुम दीप्तिमान् और वृहत् हो ।

३८ सूक्त

अग्नि देवता । गायत्री, तुष्णिक, त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोडाशं जातवेदः । प्रातःसावे धियावसो ॥१॥
 पुरोला अग्ने पचतस्तुभ्यं वाघ परिष्कृतः । तं जुषस्व यविष्ठय ॥२॥
 अग्ने वीहि पुरोलाशमाहुतं तिरो अह्यम् । सहस्रः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥३॥
 माध्यन्दिने सवने जातवेदः पुरोलाशमिह कवे जुषस्व ।
 अग्ने यहस्य तव भागधेयं न प्रमिनन्ति विदथेषु धीराः ॥ ४ ॥
 अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोलाशं सहस्रः सूनवाहुतम् ।
 अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ॥ ५ ॥
 अग्ने वृधान आहुतिं पुरोलाशं जातवेदः । जुषस्व तिरो अह्यम् ॥६॥



१ जातवेदा अग्नि, तुम्हारा स्तोत्र ही धन-प्रदायक है । प्रातःसवनमें तुम हमारे पुरोडाश और हव्यकी सेवा करो ।

२ शुचतम अग्नि, तुम्हारे लिये पुरोडाशका पाक किया गया है; उसे संस्कृत किया गया है । तुम उसका सेवन करो ।

३ अग्नि, दिनान्तमें सम्यक् प्रदत्त पुरोडाशका भक्षण करो । तुम बलके पुत्र हो, यज्ञमें निहित होओ ।

४ हे जातवेदा और मेधावी अग्नि, माध्यन्दिन सवनमें पुरोडाशका सेवन करो । धीर अश्वर्यु लोग यज्ञमें तुम्हारा भाग नष्ट नहीं करते । तुम महान् हो ।

५ बलके पुत्र अग्नि, तृतीय सवनमें दिये गये पुरोडाशकी तुम अभिलाषा करो । अनन्तर अविनाशी, रत्नवान् और जागरण-कारी सोमको, स्तुतिके साथ, अमर देवोंके पास, स्थापित करो ।

६ जातवेदा अग्नि, दिनके अन्तमें तुम पुरोडाश-रूप आहुतिका सेवन करो ।

२६ क्लृप्ता

अग्नि देवता । अनुष्टुप्, जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम् ।

एतां विश्वत्तोमाभराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥१॥

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भं इव सुधितो गर्भिणीषु ।

दिवे दिव ईड्यो जाय्वद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥२॥

उत्तानायामवभरा चिक्रिःत्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणां जजान ।

अरुपस्तूपो रुशदस्य पाज इत्नायास्पुत्रो वयुनेजनिष्ट ॥३॥

इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।

जातवेदो नि धीमहमे हव्याय वोह्वे ॥४॥

मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥५॥

१ यही अग्नि मन्थन और उत्पत्तिके साधन हैं । संसार-रक्षक अरगिको ले आओ । पहलेकी तरह हम अग्निका मन्थन करेंगे ।

२ गर्भिणीके गर्भका तरह जातवेदा अग्नि काष्ठ (अरगि)-द्वयमें निहित हैं । अपने कर्ममें जागरूक और हविमें युक्त अग्नि मनुष्योंके, प्रतिदिन, पूजनीय हैं ।

३ हे शानवान् अध्वर्यु, ऊर्ध्वमुख अरगिपत्र अधोमुख अरगि रखो । तुरत गर्भयुक्त अरगिने अभीष्टवर्षा अग्निको उत्पन्न किया । उसमें अग्निका दाहकाय था । उज्ज्वल तेजसे युक्त इलाके पुत्र अग्नि अरगिमें उत्पन्न हुए ।

४ जातवेदा अग्नि, हम तुम्हें पृथिवीके ऊपर, उत्तर घेदीके नाभि-स्थलमें, हव्य चहन करनेके लिये स्थापित करते हैं ।

५ नेता अन्वयुगला, यधि, त्रैध-शून्य, प्रकृष्ट शानवान्, अमर, सुन्दर शरीरवाले अग्निको मन्थन द्वारा उत्पन्न कृते । नेता अन्वयुगला, यधके सूत्रक, प्रथम और सुखदाता अग्निको कर्मके प्रारम्भमें उत्पन्न करो ।

यदी मन्यन्ति बाहुभिर्विरोचतेश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
 चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परिवृणक्तयश्मनस्तृणा दहन् ॥६॥
 जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
 यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥ ७ ॥
 सीद होतः स्वउलोके चिकित्वान्त्सादय यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।
 देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयोधाः ॥ ८ ॥
 कृणोत धूमं वृषणां सखायोस्त्रेधन्त इतन वाजमच्छ ।
 अयमग्निः पृतनापाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ॥ ९ ॥
 अयन्ते योनिऋत्विषो यतो जातो अरोचथाः ।
 तं जानन्नश्न आसीदाथा नो वर्द्धया गिरः ॥ १० ॥

६ जिस समय हाथोंसे मन्थन किया जाता है, उस समय काष्ठसे अग्नि, अश्वकी तरह, सुशोभित होकर तथा द्रुतगामी अश्वद्वयके विचित्र रथकी तरह शीघ्र गन्ता होकर शोभा धारण करते हैं। कोई भी अग्निका मार्ग नहीं रोक सकता। अग्निने तृण और उपलको भस्म कर उस स्थानको छोड़ दिया।

७ उत्पन्न अग्नि भी सर्वज्ञ, अप्रतिहतगमन और कर्म-कुशल है; इसलिये मेधावी लोग उनकी स्तुति करते हैं। वह कर्म-फल प्रदान करके शोभा प्राप्त करते हैं। देवता लोगोंने पूजनीय और सर्वज्ञ अग्निको यज्ञमें हव्यवाहक किया था।

८ होम-निष्पादक अग्नि, अपने स्थानपर बैठे। तुम सर्वज्ञ हो। यजमानको पुण्य लोकमें स्थापित करो। तुम देवोंके रक्षक हो। हव्यके द्वारा देवोंकी पूजा करो। मैं यज्ञ करता हूँ, मुझे यथेष्ट अन्न प्रदान करो।

९ अश्वशुभ्रण, अग्नीष्टवर्षी धूम उत्पन्न करो। तुम सबल होकर युद्धके सामने जाओ। यह अग्नि वीर-प्रधान और सेना-विजेता है। इन्हींकी सहायतासे देवोंने असुरोंको परास्त किया था।

१० अग्नि, ऋतु-काष्ठ-(पलाश-अश्वत्थादि)-वान् यह अरणि तुम्हारा उत्पत्ति-स्थान है। इससे उत्पन्न होकर तूम शोभा प्राप्त करो। उसे जानकर तुम बैठ जाओ। इससे उत्पन्न होकर तुम शोभा प्राप्त करो। तुम वह जानकर उपवेशन करो। हमारी स्तुतिको वर्द्धित करो।

तनूनपाद्युच्यते गर्भं आसुरो नराशंसो भवति याद्वजायते ।

मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत् सरीमणि ॥११॥

सुनिर्मथा निर्माथितः सुनिधा निहितः कविः ।

अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ॥१२॥

अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोस्त्रेमाणं तरणिं वीदुजम्भम् ।

दशस्वसारो अश्रुवः समीचीः पुसांसं जातमभिसंरभन्ते ॥१३॥

प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।

न निमिपति सुराणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥१४॥

अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिन्द्रदुः ।

द्युम्नवद्ब्रह्म कुशिकास एरिर एक एको दमे अग्निं समीधिरे ॥१५॥

११ गर्भस्य अग्निको तनूनपात् कहा जाता है । जिस समय अग्निप्रत्यक्ष होने हैं, उस समय वह आसुर (आसुर-हन्ता अथवा अरणि-रूप-काष्ठ-पुत्र) नराशंस (अग्नि-नाम) होते हैं । जिस समय अन्तरीक्षमें तेजका चिक्ताग करते हैं, उस समय मातरिश्वा (अग्नि-नाम) होते हैं । अग्निके प्रसृत होनेपर वायुकी उत्पत्ति होती है ।

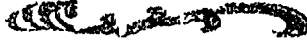
१२ अग्नि, तुम मेधाधी और मन्थनके द्वारा उत्पन्न हो । तुम्हें अत्युत्तम स्थानमें स्थापित किया गया है । हमारा यज्ञ निर्धिन्न करो और देवाभिलार्थके लिये देवोंकी पूजा करो ।

१३ मर्त्य आत्यिक लोमांसे अमर, अक्षय, दृढ़-दन्त-विशिष्ट और पाप-तारक अग्निको उत्पन्न किया है । पुत्र-सन्तानकी तरह उत्पन्न अग्निको लक्ष्य कर भगिनी-स्वरूप दस अंगुलियाँ, परस्पर मिलकर, आनन्द-सूचक शब्द करती हैं ।

१४ अग्नि सनातन है । जिस समय सात मनुष्य उनका हवन करते हैं, उस समय वह शोभा पाते हैं । जिस समय वह माताके स्तन और फोंडुपर जोभा पाते हैं, उस समय देखनेमें वह सुन्दर मालूम पड़ते हैं । यह प्रतिदिन सजग रहते हैं; क्योंकि वह असुरके जठरसे उत्पन्न हुए हैं ।

१५ मरुतोंके समान शत्रुओंके साथ युद्ध करनेवाले और ब्रह्मासे प्रथम उत्पन्न कुशिक-गोत्रात्तर अग्नि लोंग निश्चय ही सारा संसार जानते हैं । अग्निको लक्ष्य करके हव्य-युक्त स्तोत्रका पाठ करते हैं । वे लोंग अपने-अपने गृहमें अग्निको दीत करते हैं ।

यद्दद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्त्वोवृणीमही ।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन्विद्वाँ उपयाहि सोमम् ॥१६॥



१६ होम-निष्पादक, विद्वान् और सर्वज्ञ अग्नि, इस प्रवर्तित यज्ञमें तुम्हें हम वरण करते हैं; इसलिये तुम इस यज्ञमें देवोंको हव्य प्रदान करो। नित्य स्तव करो। सोमकी बातको जानकर उसके पास आओ।

प्रथम अध्याय समाप्त



द्वितीय अध्याय



३० सूक्त

३ अनुवाक । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।
 तितित्क्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१॥
 न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्रयाहि हरिवो हरिभ्याम् ।
 रिथराय वृष्णो सवना कृतमा युक्ता आवाणः सर्गमधाने अशौ ॥२॥
 इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महावातस्नुविकूर्म्मिर्ऋधावान् ।
 यदुग्रोथा वाधितो मर्त्येषु क त्वा वृषभ वीर्याणि ॥३॥
 त्वं हि स्म च्यावयन्नश्रुतान्येको वृत्रा चरसि जिहमानः ।
 तव व्यावापृथिवीपर्वतासोनुव्रताय निमित्तव तस्थुः ॥४॥

१ इन्द्र, नामार्ति ऋग्विक्र लोग तुम्हारी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं। सखा लोग तुम्हारे लिये सोमका अभिषेक करने हैं; शुद्ध हव्य धारण करते हैं; शत्रुओंकी हिंसाको सहते हैं। तुम्हारी अपेक्षा संसारमें कौन प्रसिद्ध है ?

२ हे हविर्वा अश्ववाले इन्द्र, दूरस्थ स्थान भी तुम्हारे लिये दूर नहीं हैं। हरिवश अश्वसे युक्त होकर जोघ्र आओ। तुम एङ्गचित और अर्धोष्टवर्षी हो। तुम्हारे ही लिये यह सब सवन किया गया है। अग्निके समिद्ध होनेपर, सोमाभिषेक लिये, प्रस्तर-श्लगड प्रयुक्त हुए हैं।

३ अर्धोष्टवर्षी इन्द्र, तुम परम पंडित्यवाले हो। तुम्हारा शिप्र (शिरस्त्राण) सुन्दर है। तुम धनवान्, विजैता, महान् मरुद्गणघाले, संग्राममें गालाधिप कर्म करनेवाले, शत्रुहिंसक और भयङ्कर हो। संग्राममें याथा प्राप्त करके मनुष्योंके प्रति तुमने जो धीर्थ धारण किया है, तुम्हारा वह धीर्थ कहाँ है ?

४ इन्द्र, अकेले ही तुमने एङ्गमूल शत्रुओंको उनके स्थानोंसे गिराया है। वृत्रादिको मारा है। तुम्हारी आवाणें व्यावापृथिवी और पर्वत अचल हैं।

उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृहमवदो वृत्रहा सन् ।
 इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन् काशिरित्ते ॥५॥
 प्र सू त इन्द्र वृत्रहा हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
 जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥६॥
 यस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं स ।
 भद्रा त इन्द्र सुमतिघृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥७॥
 सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र संपिणक्कुरारुम् ।
 अभिवृत्रं वर्द्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥८॥
 नि सासनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ ।
 अस्तभ्राद्दृयां वृषभो अन्तरिक्षमर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ॥९॥

५ इन्द्र, तुम बहुत लोगोंके द्वारा आहूत और धीर्ययुक्त हो। अकेले ही तुमने वृत्रका वध करके देवोंको जो अमय वाक्य प्रदान किया था, वह ठीक है। मघवन्, तुम अपार धावापृथिवीको संयोजित करते हो। तुम्हारी ऐसी महिमा प्रख्यात है।

६ इन्द्र, तुम्हारा अश्ववाला रथ शत्रुको लक्ष्य करके निम्न मार्गसे शीघ्र आगमन करे। शत्रुको वध करते-करते तुम्हारा वज्र आवे। अपने सामने आनेवाले शत्रुओंका विनाश करो। भागनेवाले शत्रुओंका वध करो। संसारको यज्ञ-युक्त करो। तुम्हारे अन्दर ऐसी सामर्थ्य निविष्ट हो।

७ इन्द्र, तुम निरन्तर ऐश्वर्यको धारण करते हो। तुम जिस मनुष्यको दान करते हो, वह पहले अप्राप्त गृह-सन्वन्धीय पशु, सुवर्ण आदि धन प्राप्त करता है। अनेक लोकोसे आहूत, घृत, हव्य आदिसे युक्त तुम्हारा अनुग्रह कल्याणवाही होता है। तुम्हारी धन देनेकी शक्ति असीम है।

८ अनेक लोकोसे आहूत इन्द्र, तुम दानवीरके साथ वर्तमान हो। बाधक और गर्जनशील वृत्रको हस्तहीन करके चूर्ण-विचूर्ण कर डालते हो। इन्द्र, वर्द्धमान और हिंस्र वृत्रको पाद-हीन करके तुमने बलसे विनष्ट किया था।

९ इन्द्र, तुमने महती, अनन्ता और चला पृथिवीको समभावापन्न करके उसके स्थानमें निविष्ट किया था। असीष्टवर्षक इन्द्रने, धुलोक और अन्तरिक्ष जैसे पतित न हो, इस प्रकार धारण किया है। इन्द्र, तुम्हारा प्रेरित जल पृथिवीपर आवे।

अज्ञानृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुराहन्तोर्भयमानो व्यार ।
 सुगान् पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ॥१०॥
 एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुतद्याम् ।
 उतान्तरिचादभि नः समीकहपो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥११॥
 दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः ।
 सं यदानहध्वन आदिदश्रेर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥१२॥
 दिदृचन्त उपसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।
 विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुणि ॥१३॥
 महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्यामापक्वँ चरति विभ्रती गौः ।
 विश्वं स्वाद्य सम्भृतमुस्त्रियायां यत् सीमिन्द्रो अदधाद् भोजनाय ॥१४॥

१० इन्द्र, अतीव हिंसक वल नामका गोमूत्र अथवा गोष्ठभूत मेघ वज्र-प्रहारके पहले ही डरकर टुकड़े-टुकड़े हो गया था । गौंके निकलनेके लिये इन्द्रने मार्ग सुगम कर दिया था । रमणीय शब्दायमान उल अनेक लोकोंसे आहत इन्द्रके सम्मुख आया था ।

११ अकेले इन्द्रने ही पृथिवी और ब्रह्माण्डको परस्पर संगत और धनयुक्त करके परिपूर्ण किया है । शूर, नुम रथवाले हो । हमारे पास रहनेके अमितापी होकर शंजित अश्वोंको अन्तरीक्षसे हमारे सामने प्रेरित करे ।

१२ सूर्य इन्द्र द्वारा प्रेरित है । वह अपने गमनके लिये प्रकाशित दिशाओंका प्रतिदिन अनुसरण करते हैं । जिस समय वह अश्वके द्वारा अपना मार्ग-गमन समाप्त कर देते हैं, तब हमें छोड़ देते हैं—यह भी इन्द्रके ही लिये ।

१३ गमनशील रात्रिके पश्चात् उपरि गत हंनिपर सब लोग महान् तथा चित्र सूर्य-तेजका दर्शन करनेकी इच्छा करते हैं । जिस समय उपाकाल विगत हो जाता है, उस समय सब अग्निहोत्र आदि कर्मकां कर्तव्य समझने लगते हैं । इन्द्रके कितने ही सत्कार्य हैं ।

१४ इन्द्रने नदियोंमें महान् तेजवाला जल स्थापित किया है । इन्द्रने जलसे स्वाद्युत्तर दधि, घृत, क्षीर आदि, भोजनके लिये गौंमें स्थापित किया है । नवप्रसूता गौं दुग्ध धारण करके विचरणा करती है ।

इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्यज्ञाय शिच गृणते सखिभ्यः ।
 दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥१५॥
 सङ्घोष शृणवेदमैरमित्रैर्जहीन्येष्वशनिं तपिष्ठाम् ।
 वृश्चेमधस्ताद्विरुजा सहस्व जहि रत्नो मघवन्नून्धयस्व ॥१६॥
 उद्धृह रत्नः सहमूलमिन्द्र वृश्वा मध्यं प्रयग्रं शृणीहि ।
 आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषि हेतिमस्य ॥१७॥
 स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः संयन्महीरिष आसरिस पूर्वीः ।
 रायो वन्तारो वृहतः स्यामारमे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥१८॥
 आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके ।
 ऊर्ध्व इव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥१९॥
 इमं कामं मन्दयागोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
 स्वर्यवो मतिभिरतुभ्यं विप्रः इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥२०॥

१५ इन्द्र तुम दृढ़ बनो । शत्रुओंने मार्ग बन्द किया है । यज्ञ और स्तुति करनेवाले तथा सखा लोगोंको अभीष्ट फल प्रदान करो । शत्रुओंका वध करना उचित है । वे धीरे-धीरे जाते और हथियार फेंकते हैं । वे हत्यारे और तूषीरवाले हैं ।

१६ इन्द्र, हम समीपस्थ शत्रुओं द्वारा ढोड़ा हुआ वज्र-नाद सुनते हैं । अतीव सन्ताप देनेवाली इन सब अशनियोंको इन सब शत्रुओंके सामने ही रखकर इनका विनाश करो; समूल छेदन करो; विशेष रूपसे वाधा दो; अभिभूत करो । इन्द्र, राक्षसोंका वध करो; पीछे यज्ञ सम्पन्न करो ।

१७ इन्द्र, राक्षस-कुलका समूल उन्मूलन करो । उनका मध्यभाग छेदो; अग्रभाग विनष्ट करो । गमनशील राक्षसको दूर करो । यज्ञ-विद्वेषी (ब्राह्मण-शत्रु) के प्रति सन्तापप्रद अस्त्र फेंको ।

१८ संसारके निर्वाहक इन्द्र, हमें अश्वसे युक्त करो । हमें अविनाशी करो । तुम जब हमारे निकट रहोगे, तब हम महान् अन्न और प्रभूत धनका भोग करके बड़े हो सकेंगे । हमें पुत्र, पौत्र आदिसे युक्त धन प्राप्त हो ।

१९ इन्द्र, हमारे लिये दीप्तिसे युक्त धन ले आओ । तुम दानशील हो और हम मुम्हारे दानके पात्र हैं । हमारी अभिलाषा बड़वानलकी तरह बढ़ी हुई है । धनपति, हमारी अभिलाषा पूर्ण करो ।

२० हमारी इस अभिलाषाको गौ, अश्व और दीप्तिवाले धनके द्वारा पूर्ण करो तथा उसके द्वारा हमें विख्यात करो । इन्द्र, स्वर्गादि सुखाभिलाषी और कर्मकुशल कुशिकमन्दनोंने मन्त्र द्वारा तुम्हारा स्तोत्र किया है ।

आ नो गोत्रादर्हहि गोपतेः गाः समस्मभ्यं सनयो यन्नु वाजाः ।
 दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोस्मभ्यं सु मघवन्वोधि गोदाः ॥२१॥
 गुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
 शृण्वन्तमुग्रमृतये समत्सु घ्नन्तम् वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥२२॥



३१ सूक्त ।

इन्द्र देवता । इपीरथके अपत्य कुशिक अथवा विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

शासद्गृह्णिर्दुहितुर्नस्यं गाद्विद्वां ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।
 पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन् संशम्येन मनसा दधन्वे ॥१॥
 न जामये तान्त्रो रिथथमारैक चकार गर्भं सनितुर्निधानम् ।
 यदी मातरो जनयन्त वह्निसन्यः सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥२॥

२१. स्वर्गाधिपति इन्द्र, मेघकों विदाँर्ग करके हमें जल दो । उपभागके योग्य अन्न हमारे पास आवे ।
 अभीष्टवर्षक, तुम इयुलोकको व्याप्त करके स्थित हो । सत्यबल मघवन्, हमें गौं दो ।

२२. इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो । तुम युद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत पेश्वर्यवाले,
 नेतृ-श्रेष्ठ, स्तुति-श्रवण-कर्ता, उग्र, युद्धमें शत्रु-विनाशी और धन-विजेता हो । आश्रय-प्राप्तिके लिये हम
 तुम्हें बुलाते हैं ।

१. पुत्रहीन पिता रेतोंथा जाग्रताको सम्मानयुक्त करते हुए शास्त्रके अनुशासनके अनुसार पुत्रीसे
 उत्पन्न पौत्र (दौहित्र) के पास गया । अपुत्र पिता, पुत्रीको गर्भ रहेगा, ऐसा विश्वास करके शरीर धारण
 करता है ।

२. औरस पुत्र पुत्रीको नहीं धन देता । वह पुत्रीको उसके भर्ता (पति) के रेतःसेचनका आधार
 बनाता है । यदि पिता-माता पुत्र और कन्या, दोनोंका ही उत्पादन करते हैं, तब उनमेंसे एक (पुत्र)
 उत्कृष्ट त्रिया-कर्मका अधिकारी होता है और दूसरा (पुत्री) सम्मान-युक्त होता है ।

अग्निर्गङ्गे जुहारेजमानो महस्पुत्रां अरुषस्य प्रयत्ने ।

महान् गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥३॥

अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन् ।

तं जानतीः प्रत्युदायन्नु षासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥४॥

वीलौ सतीरभिधीरामतृन्दन् प्राचाहिन्वन् मनसा सप्त विप्रा ।

विश्वामविन्दन् पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥५॥

विद्यदी सरमारुगूणमद्रेमहिपाथः पूर्वं सध्र्यक्कः ।

अग्रं नयत् सुपथक्षराणामच्छारवं प्रथमा जानती गात् ॥६॥

अगच्छदुविप्रतमः सखीयन्नसूदयत् सुकृते गर्भमद्रिः ।

स्नानमर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥७॥

३ इन्द्र, तुम दीप्ति-युक्त हो। तुम्हारे यज्ञके लिये ज्वाला द्वारा कम्पमान अग्निने यथेष्ट-पुत्ररूप रश्मियोंको उत्पन्न किया है। इन रश्मियोंका जल-रूप गर्भ महान् है; ओषधि-रूप जन्म महान् है। हे हर्षश्व, तुम्हारी सोमाहुति द्वारा प्रयुक्त इन रश्मियोंकी प्रवृत्ति महती है।

४ विजेता मरुद्गण वृत्रके साथ युद्ध करनेवाले इन्द्रके साथ सङ्गत हुए थे। सूर्य-संज्ञक महान् तेज तमोरूप वृत्रसे निर्गत होता है, इस वान्तको मरुतोंने जाना था। उपाएँ, इन्द्रको सूर्य समझ करके, उनके सामने गयी थीं। अकेले इन्द्र सारी रश्मियोंके पति हुए थे।

५ धीमान् और मेधावी सात अङ्गिरा लोगोंने सुदृढ़ पर्वतपर रोकी हुई गायोंको खोज निकाला था। वे, पर्वतपर गायें हैं, ऐसा विश्रय करके जिस मार्गसे वहाँ गये थे, उसी मार्गसे लौट आये। उन्होंने यज्ञ-मार्गमें सारी गायोंको प्राप्त किया था। यह, सब जानकर इन्द्र, नमस्कार द्वारा, अङ्गिरा लोगोंकी सम्भावना करके पर्वतपर गये थे।

६ जिस समय सरमा पर्वतके दूटे हुए द्वारपर पहुँची, उस समय इन्द्रने अपने कहे हुए यथेष्ट अन्नको, अन्यान्य सामग्रियोंके साथ, उसे दिया। अच्छे पौरोंवाली सरमा शब्द पहचान कर सामने जाते हुए, अन्नय गायोंके पास, पहुँच गयी। *

७ अतीव मेधावी इन्द्र अङ्गिरा लोगोंकी मित्रताकी इच्छासे गये थे। पर्वतने महायोद्धाके लिये अपने गर्भस्थ गोधनको बाहर कर दिया। शत्रु-हन्ता इन्द्रने तक्षण मरुतोंके साथ उन्हें प्राप्त किया। अङ्गिराने तुरत उनकी पूजा की।

सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्ववेदं जनिमा हन्ति शुष्णाम् ।
 प्रणो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सर्खीरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥८॥
 नि गव्यता मनसा सेदुरकैः कृणवानासो श्रमृतत्वाय गातुम् ।
 इदं चिन्नु सदनं भूयैषां येन मासौ असिषासन्नृतेन ॥९॥
 संपश्यमाना श्रमदन्नाभि रवं पयः प्रलस्य रेतसो दुधानाः ।
 वि रोदसी अतपद्धोष एषां जाते निष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥१०॥
 स जातेभिर्वृत्तहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अकैः ।
 उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधुस्वान्न दुदुहे जेन्या गौः ॥११॥
 पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विपीमत्सुकृतो विहिल्यन् ।
 विष्कम्भन्तः स्कम्भनेना जनिती असीना उद्धर्ष रभसं वि मिन्वन् ॥१२॥

= जो इन्द्र उत्तम पदार्थके प्रतिनिधि हैं, जो समर-भूमिमें अग्रगामी हैं, जो सब उत्पन्न पदार्थोंको जानते हैं, जिन्होंने शुष्णका वध किया था, वही दूरदर्शी और गोधनके अभिलाषी इन्द्र, शुलोकसे सम्मान करने हुए, हमें पापसे बचावें ।

६ भीतर ही भीतर गोधनकी प्रातिकी इच्छा करके, स्तोत्रके द्वारा अमरता प्राप्त करनेकी युक्ति करते हुए, यज्ञ-कार्यमें लगे थे । इनके इस यज्ञमें यद्येष्ट उपवेशन हैं । इन्होंने इस सत्यभूत यज्ञके द्वारा महीनोंको अलग करनेकी इच्छा की थी ।

१० आदित्या लोगों अपने गोधनको लक्ष्य करके, देखते हुए, पहलेके उत्पन्न पुत्रकी रक्षाके लिये दूध दूधकर हुए हुए थे । उनकी आनन्दध्वनि आवापृथिवीमें व्याप्त हुई थी । पहलेकी ही तरह वह संसारमें अवस्थित हुए थे । गायोंकी रक्षाके लिये वीर पुरुषको नियुक्त किया था ।

११ सहायताके लिये, मरुतोंके साथ, इन्द्रने वृत्रका वध किया था । वे ही पूजनीय और होम-योग्य हैं । मरुतोंके साथ गायोंका, यज्ञके लिये, दान किया था । घृत-युक्त-हव्य-धारिणी, प्रभूत-हव्य-दात्री और प्रशस्ता गौने इनके लिये स्वाहुतः क्षीर आदि दिया था ।

१२ आदित्या लोगोंने पालक इन्द्रके लिये महान् और दीप्तिमान् स्थान-संस्कार किया था । सुकर्म-शाली आदित्या लोगोंने इन्द्रके उपयुक्त इस स्थानको विशेष रूपसे दिखा दिया था । यज्ञमें बैठकर उन लोगोंने जनयित्री आवापृथिवीको स्त्राभ-रूप अन्तरिक्ष द्वारा रोककर वेगवान् इन्द्रको शुलोकमें संस्थापित किया था ।

मही यदि धिषणा शिश्नथे धात् सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः ।
 गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविपीरनुत्ताः ॥१३॥
 म्हाते सख्यं वशिम शक्तीरावृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वाः ।
 सहि स्तोत्रमव आगन्स सूरेरस्माकं सु मघवन्वोधि गोपाः ॥१४॥
 सहि क्षेत्रं पुरुश्चन्द्रं विविद्वानादित् सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।
 इन्द्रो नृभिरजनदीन्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निस् ॥१५॥
 अपश्चिदेश विभ्वोतदमूनाः प्रसध्रीचीरस्तजद्विश्चश्चन्द्राः ।
 सध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन् त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥१६॥
 अनु कृष्णो वसुधित्ती जिहाते उभे सूर्यस्य मँहना यजले ।
 परि यत्ते सहिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र कास्या ऋजिप्याः ॥१७॥

१३ छायापृथिवीके परस्पर विश्लिष्ट होनेपर यदि महान् स्तुति इन्द्रदेवको तत्क्षणात् वृद्धि-प्राप्त और धारण-क्षम करे, तो इन्द्रके प्रति दोष-रहित स्तुति सङ्गत हो। फलतः इन्द्रका सारा बल त्वभाव-सिद्ध है।

१४ इन्द्र, मैं तुम्हारी, महती मित्रताके लिये, प्रार्थना करता हूँ। तुम्हारी शक्तिके लिये प्रार्थना करता हूँ। तुम वृत्र-हन्ता हो। तुम्हारे पास अनेक अश्व, वहन करनेके लिये, आते हैं। तुम विद्वान् हो। हम तुम्हें महत् सख्य, स्तोत्र और हव्य प्रदान करेंगे। इन्द्र, तुम हमारे रक्षक हो, ऐसा जानना।

१५ भली भाँति समझकर इन्द्रने मित्रोंको महान् क्षेत्र और यथेष्ट-हिरण्य दान किया है। इसके अनन्तर उन्होंने उन लोगोंको गौ आदि भी दान किया है। वह दीप्तिमान् हैं। उन्होंने नेता मरुद्गणके साथ सूर्य, उषा, पृथिवी और अग्निको उत्पन्न किया है।

१६ शान्तमना इन इन्द्रने विस्तीर्ण, परस्पर सङ्गत और संसारके आनन्ददायक जलको उत्पन्न किया है। वह माधुर्य-युक्त सोम-समूहको पवित्र (जल-परिष्कारक) अथवा अग्नि, सूर्य और वायुके द्वारा शोधित करके और सारे संसारको प्रसन्न करके दिन-रात संसारको अपने व्यापारमें प्रेरित करता है।

१७ सूर्यकी महिमासे सारे पदार्थोंके धारण-कर्ता और यहाँही दिन-रात क्रमानुसार घूम रहे हैं। ऋजुगति, मित्र-भूत और कमलीय मरुद्गण शत्रुको परास्त करनेके लिये तुम्हारी शक्तिका अनुसरण करने योग्य होते हैं।

पतिर्भव वृत्रहन् सूनुतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः ।

आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥१८॥

तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।

द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्चनो मघवन् सातये धाः ॥१९॥

मिहः पावकाः प्रतता अभूवन् स्वस्ति नः पिष्टुहि पारमासाम् ।

इन्द्रत्वं रथिरः पाहि नो रिपो मच्चू मच्चू कृणुहि गोजितो नः ॥२०॥

अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्द्वामभिर्गात् ।

प्र सूनुताः दिशमाननृतेन दुरश्च विश्वा अष्टुणोदप स्वाः ॥२१॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृणवन्तमुग्रमृतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥२२॥



१८ वृत्रहन्ता इन्द्र, तुम अघिनाशी, अभीष्टवर्षी और अन्नदाता हो। हमारी प्रियतम स्तुतिके स्वामी बनो। तुम महान् हो। यज्ञमें तुम जानके अभिलाषी हो। महान् आश्रय और कल्याण-वाहिनी मैत्रीके लिये हमारे सामने आओ।

१९ इन्द्र, तुम पुरानन हो। अङ्गिरा लोगोंकी तरह मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। मैं तुम्हारी स्तुति करनेके लिये अभिनयता लाता हूँ। तुम देवरहित द्राहियोंको मार डालते हो। इन्द्र, हमें उपभोगके योग्य धन दो।

२० इन्द्र, पवित्र जल चारों ओर फैला है। हमारे लिये अघिनाशी जल-समूहके तीरको जलसे पूर्ण करो। तुम रथवाले हो। हर्ष शत्रुसे बचाओ। हमें शीघ्र गार्थोंके विजेता करो।

२१ वृत्रहन्ता और गार्थोंके स्वामी इन्द्र हमें गौ दान करें। कृष्णों अथवा यज्ञ-विधातक अशुरोंको दीप्ति-युक्त तेजके द्वारा विनष्ट करें। उन्होंने सत्य-वचनसे अङ्गिरा लोगोंको प्रियतम गार्थ दान करके सारे द्वारोंको रन्द कर दिया था।

२२ इन्द्र, तुम अन्न-लाभ-कर्ता, युद्धमें उरसाह द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत-पेश्वर्थ-युक्त, नेतृ-श्रेष्ठ स्तुति-श्रवण-कर्ता, उग्र, संग्राममें शत्रु-विनाशकारी और धनजेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये तुम्हें बुलाता हूँ।

३२ सूक्त

इन्द्रदेवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

इन्द्र सोमं सोमपते पिवेमं माध्यन्दिनं सवनं चारु यत्ते ।

प्र प्रुथ्याशिप्रे मधवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥१॥

गवा शिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय ।

ब्रह्मकृता मास्तेना गणोन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥२॥

ये ते शुष्मं ये तद्विषीमवर्धन्नर्चन्तु इन्द्र मरुतस्त ओजः ।

माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥३॥

त इन्वस्य मधुमद्विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन् ।

येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदामर्मणो मन्यमानरय मर्म ॥४॥

१ सोमपति इन्द्र, इस माध्यन्दिन सवनके अवसरपर तुम सोम पान करो; क्योंकि यह तुम्हारा प्रिय है। हे धनवान् और ऋजीष (रिद्धी) सोमसे युक्त इन्द्र, दोनों घोड़ोंको रथसे खोलकर और उनके जवड़ोंको घाससे पूर्ण करके इस यज्ञमें उन्हें प्रसन्न करो ।

२ इन्द्र, गन्धसंयुक्त और मन्थन-सम्पन्न नूतन सोमका पान करो। तुम्हारे हर्षके लिये हम उसे दान करते हैं। स्तोता मरुतों और रुद्रोंके साथ जबतक वृषति न हो, तबतक सोम पान करो ।

३ इन्द्र, जो मरुद्गण तुम्हारे शत्रु-शोषक तेजको बढ़ाते हैं, वही मरुद्गण तुम्हारा बल बद्धित करते हैं; वही मरुद्गण स्तुति करके तुम्हारी युद्ध-शक्तिको बढ़ाते हैं। वज्रहस्त, शोभन-शिरस्त्राण-युक्त इन्द्र, माध्यन्दिन सवनमें रुद्रोंके साथ सोम पान-करो ।

४ मरुद् लोग इन्द्रके बल हुए थे, वृत्र समझता था कि, मेरा रहस्य कोई नहीं जानता। परन्तु मरुतोंके द्वाग प्रेरित होकर इन्द्रने वृत्रका रहस्य जाना था। ये ही मरुद्गण तुम्हारे लिये शांघ्र माधुर्य युक्त उल्साह-वाक्य बोले थे ।

मनुष्यदिन्द्र सवनं जुषाणः पिवा सोमं शश्वते वीर्याय ।
 स आववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥५॥
 त्वमपो यद्ध वृत्तं जघन्वाँ अर्त्याँ इव प्रासृजः सर्तवाजौ ।
 श्यानमिन्द्र चरता बधेन वत्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥६॥
 यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृषमजरं युवानम् ।
 यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते ॥७॥
 इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।
 दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥८॥
 अद्रोष सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् ।
 न द्याव इन्द्र तवसस्त औजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त ॥९॥

१ इन्द्र, मनुके यज्ञकी तरह तुम मेरे इस यज्ञका सेवन करते हुए शश्वत चलके लिये सोम-पान करो। हर्यश्व, यज्ञ-योग्य मरुतोंके साथ तुम आओ। गमनशील मरुतोंके साथ अन्तरीक्षसे जल-प्रेरित करो।

६ इन्द्र, चूँकि तुम दीप्तिमान् जलके आवरणकर्ता हो, दीप्ति शून्य और सोये हुए वृत्रको, युद्धमें, निहत किया है; इसलिये तुमने युद्ध-समयमें अश्वकी तरह जलको छोड़ दिया है।

७ फलतः हम हव्य द्वारा प्रचुद्ध और महान्, अजर और नित्यतरुण स्तोतव्य इन्द्रकी पूजा करते हैं। परिमाणशून्य, द्यावापृथिवी यज्ञार्ह इन्द्रकी महिमाको परिमित नहीं कर सकती।

८ सारे देवगण इन्द्रके कर्म—सुकृत और बहुर यज्ञादि—की हिंसा नहीं कर सकते। इन्द्रदेव भूलोक, द्युलोक और अन्तरीक्षलोकको धारण किये हुए हैं। उनका कर्म रमणीय है। उन्होंने सूर्य और उषाको उत्पन्न किया है।

९ दौरात्म्य-शून्य इन्द्र, तुम्हारी महिमा ही वास्तविक महिमा है; क्योंकि तुम उत्पन्न होकर ही सोम पान करते हो। तुम चलवान् हो। स्वर्गादि लोक तुम्हारे तेजका निवारण नहीं कर सकते; दिन, मास और वर्ष भी नहीं निवारण कर सकते।

त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन् ।
 यद्वावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्यः कारुधायाः ॥१०॥
 अहन्नहिं परिशयानमर्ण ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।
 न ते महिरवमनुभूदधर्यौर्यदन्यया स्फिग्या चामवस्थाः ॥११॥
 यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुतप्रियः सुतसोसो मियेधः ।
 यज्ञेन यज्ञसव यज्ञियः सन् यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥१२॥
 यज्ञेनेन्द्रमत्रसा चक्रे अर्वागिनं सुम्नाय नव्यसे बवृत्याम ।
 यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्वेभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥१३॥
 विवेष यन्सा धिषणा जजानस्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमहः ।
 अंहसो यत्र पीपरयथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥१४॥

१० इन्द्र, उत्पन्न होनेके साथ ही तुमने सर्वोच्च स्वर्गप्रदेशमें रहकर तुरत आनन्द-प्राप्तिके लिये सोम पान किया था। जिस समय तुम द्यावापृथिवीमें अनुप्रविष्ट हुए हो, उसी समय तुम प्राचीन-सृष्टिके विधाता हुए हो।

११ इन्द्र, तुमसे अनेक उत्पन्न हुए हैं। जो अग्नि अपनेको बलवाद् समझकर जलको परिवेष्टित करते हुए अवस्थिति करता था, उसी अग्निको प्रवृद्ध होकर तुमने विनष्ट किया है। परन्तु जिस समय तुम पृथिवीको एक कटिमें छिपाकर अवस्थान करते हो, उस समय स्वर्ग तुम्हारी महिमाकी सीमा नहीं कर सकता।

१२ इन्द्र, हमारा यज्ञ तुम्हारी वृद्धि करता है। जिस कार्यमें सोम अभिपुत होता है, वह तुम्हारा प्रिय है। देय-नयोग्य, यज्ञके लिये अपने यज्ञमानकी तुम रक्षा करो। अहिका विनाश करनेके लिये यह यज्ञ तुम्हारे वज्रको दृढ़ करे।

१३ पुरातन, मध्यतन और अधुनातन स्तोत्र द्वारा जो इन्द्रवर्द्धित होते हैं, उन्हीं इन्द्रको यज्ञमान, रक्षक यज्ञके द्वारा, अपने सामने ले आता है; नये धनके लिये उन्हें आर्वाचित करता है।

१४ जमी में मन-ही-मन इन्द्रकी स्तुति करनेकी इच्छा करता हूँ, तभी स्तुति करता हूँ। मैं दूरवर्ती अशुभ दिनके पहले ही इनकी स्तुति करता हूँ। इन्द्र हमें दुःखके पार ले जायँ। इसीलिये दोनों तटोंके रहनेवाले लोग जैसे नौकारोहीको पुकारते हैं, वैसे ही हमारे मातृ-पितृ-कुलोंके लोग इन्द्रको पुकारते हैं।

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेकेव कोशं सिसिच पिवन्त्यै ।
 समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिंदभि सोमास इन्द्रम् ॥१५॥
 न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परिषन्तो वरन्त ।
 इत्था सखिभ्य इपितो यदिन्द्रा इहं चिदरुजो गव्यमूर्धम् ॥१६॥
 गुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
 शृण्वन्मुग्रमूतये समस्तु घ्नन्तं वृत्राणि संज्ञितं धनानाम् ॥१७॥

३३ सूक्त

१५, १६ और १७ मन्त्रोंके नदी ऋषि हैं, अश्विनके विश्वामित्र हैं ।

अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विपिते हासमाने ।
 गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्हुतुद्री पयसा ज्वेते ॥१॥

१५ इन्द्रका कलस पूर्ण हुआ है; पानार्थ स्वाहा शब्दका उच्चारण हुआ है । जैसे जल-सेका जल-पात्रमें जल-सेक करता है, वैसे ही मैं सोमका सेवन करता हूँ । सुस्वादु सोम, प्रदक्षिण करता हुआ, इन्द्रके सम्मुख, उनकी प्रसन्नताके लिये, गमन करता है ।

१६ बहुलोकाहृत इन्द्र, गभीर सिन्धु तुम्हारा निवारण नहीं कर सकता । उसके चारों ओर चर्त्तमान उपसागर तुम्हारा निवारण नहीं कर सकता; क्योंकि, बन्धुओं द्वारा इस प्रकार प्रार्थित होकर तुमने अति प्रबल गव्य उर्व (बड़वानल या अवरोधक वृत्त) का निवारण कर डाला है ।

१७ इन्द्र, तुम अन्न-प्रपक, युद्धमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्य-सम्पन्न, नेत्र-श्रेष्ठ, स्मृति-श्रवणकर्त्ता, उग्र, संग्राममें शत्रु-विनाशी और धनजेता हो । आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं ।

१ जलप्रवाहवती विपाशा [व्यास] औं शतुद्री [सतलज] नामकी दो नदियां पर्वतकी गोदसे सागरसङ्गमाभिलाषिणी होकर घोड़सालसे विमुक्त घोड़ियोंकी तरह स्पर्धा करती हुई, दो गायोंके समान मुशोभित होकर चत्सलेहाभिलाषिणी हो, गायोंकी तरह वेगसे समुद्रकी तरफ जाती हैं ।

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्तमाणे अच्छा समुद्रं रथेव याथ ।
 समाराणे उर्मिभिः पिन्वमाने अन्यावामन्यामप्येति शुभ्रे ॥२॥
 अच्छा सिन्धुं मातृतमामयांसं विपाशमुर्वी सुभगामगन्म ।
 वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥३॥
 एना वयं पयसां पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
 न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः कियुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥४॥
 रसध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
 प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥५॥
 इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्जबाहुरपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
 देवो नयत् सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥६॥

२ नदीद्वय, तुम्हें इन्द्र प्रेरित करते हैं । तुम उनकी प्रार्थना सुनती हो । दो रथियोंकी तरह समुद्रकी ओर जाती हो । तुम एक साथ प्रवाहित होकर, तरङ्ग द्वारा बद्धित होकर, परस्पर आस-पास जाती हुई सुशोभित हो रही हो ।

३ मातृ-तुल्य शुतुद्री नदीके पास उपस्थित हुआ हूँ, परम सौभाग्यवती विपाशाके पास उपस्थित हुआ हूँ । ये दोनों वत्सको चाटनेकी इच्छावाली गायोंकी तरह एक स्थानकी ओर जाती हैं ।

४ हम (दोनों नदियाँ) इस जलसे धुल कर देवकृत स्थानके सामने जाती है । हमारे गमनका उद्योग बन्द होनेवाला नहीं है । किस लिये यह वत्स हम दोनों नदियोंको पुकारता है ।

५ जलवती नदियों, मेरे (विश्वामित्रके) सोम-सम्पादक वचनके लिये एक दणके लिये, गमनसे विरत होओ । मैं कुशिकका पुत्र हूँ; प्रसन्नताके लिये महती स्तुतिके द्वारा नदियोंको, अपने उद्देशकी सिद्धिके लिये बुलाता हूँ ।

६ नदियोंके परिचेक वृत्रको मारकर वज्रबाहु इन्द्रने हम दोनों नदियोंको खोदा है । जगत्प्रेरक, सुहस्त और धृतिमान इन्द्रने हमें प्रेरित किया है । इन्द्रको आज्ञासे हम प्रभूत होकर जाती हैं ।

प्रवाच्यं शश्वथा वीर्यं तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्वत् ।
 वि वजूणं परिपदो जघानायन्नापोयनमिच्छमानाः ॥७॥
 षतद्वचोजरितर्मापि मृष्टा आयत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।
 उक्थेषु कारो प्रति नो जुपस्व मा नो निकः पुरुषत्रा नमस्ते ॥८॥
 ओषु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
 निपू नमध्वं भवता सुपारा अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥९॥
 आ ते कारो शृणवामा वर्चांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
 नि ते नसै पीप्यानेव योषा मर्यायेत्र कन्या शश्वचै ते ॥१०॥
 यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयुर्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
 अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥११॥

७ इन्द्रने जिस अहे (वृत्र)का विदोषण किया था, उनके उस वीर कार्यका सदा कीर्तन करना चाहिये। इन्द्रने चारों ओर आसोन अवरोधक लोगोंको वज्रसे बिनष्ट किया था। गमनाभिलाषी जल आया था।

८ हे स्तोता, तुम यह जो वाक्य-घोषणा करते हो, उसे नहीं भूलना। भविष्यत् यज्ञ-दिनमें मन्त्र-रचना करके तुम हमारी सेवा करो। हम (दोनों नदियाँ) तुम्हें नमस्कार करती हैं। हमें पुरुषकी तरह प्रगल्भ नहीं करना।

९ हे भगिनीभूत नदीद्वय, मैं (विश्वामित्र) स्तुति करता हूँ; सुनो। मैं दूर देशसे रथ और अश्व लेकर आता हूँ। तुम निम्नस्थ बनो, ताकि मैं पार हो जाऊँ। नदीद्वय, स्रोतवत् जलके साथ रथचक्रके अर्धादेशमें गमन करो।

१० स्तोता, हमने (दो नदियोंने) तुम्हारी सारी बातें सुनीं। तुम दूरसे आये हो; इसलिये रथ और शकटके साथ गमन करो। जैसे पुत्रको स्तन-पान करानेके लिये माता और जैसे मनुष्यको आलिङ्गन करनेके लिये युवती स्त्री, अवगत होती हैं, वैसे ही हम भी तुम्हारे लिये अवगत होंती हैं।

११ नदीद्वय, चूँकि भरत-कुलोत्पन्न तुम्हें पार करेंगे, चूँकि पार जानेके इच्छुक भरतवंशीय लोग इन्द्र द्वारा प्रेरित और तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर पार होंगे, चूँकि वे लोग पार हानेकी चेष्टा करते हैं और तुम्हारी अनुमति पा चुके हैं; इसलिये मैं (विश्वामित्र) सर्वत्र तुम्हारी स्तुति करूँगा। तुम यथाह हो।

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्तविप्रः सुमतिं नदीनाम् ।

प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृषाध्वं यात शीभम् ॥१२॥

उद्र ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्राणि मुञ्चत ।

सादुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारताम् ॥१३॥



३४ सूक्त

इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

इन्द्रः पूर्भिदातिरदासमकैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।

ब्रह्मजुतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्भोदसी उभे ॥१॥

१२ गोधनाभिलाषी भरतवंशीय लोग पार हो गये; ब्राह्मण लोग नदियोंकी सुन्दर स्तुति करते हैं। तुम अन्न-कारिणी और धन-समन्विता होकर छोटी-छोटी नदियोंको तृप्त और परिपूर्ण करो तथा शीघ्र गमन करो ।

१३ नदीद्वय, तुम्हारी तरङ्ग इस प्रकार प्रवाहित हो कि, युगकील + उसके ऊपर रहे; तुम लोग रज्जुको नहीं छूना ।* पाप-शून्या, कल्याण-कारिणी और अनिनन्दनीया विपाशा और शत्रुघ्नी इस समय न बढें । *

१ पुरभेदी, महिमावाले और धनशाली इन्द्रने शत्रुओंको मारते हुए, तेजके द्वारा, दासको जीता है। स्तोत्र द्वारा आकृष्ट, बर्द्धित-शरीर और बहु-अस्त्रधारी इन्द्रने द्यावापृथिवीको परिपूर्ण किया है।

+ The pin of the yoke.—wilson.

* Leave the traces full.—wilson.

* पिजवान राजाके पुत्र सुदासके पुरोहित विश्वामित्र एक बार पौरोहित्य कर्मसे बहुतसा धन लेकर व्यास और सतलज या विपाशा और शत्रुघ्नी नदियोंके संगमस्थलपर पहुँचे। अग्नाध-गम्भीर नदियोंकी, विश्वामित्रने, प्रथम तीन मंत्रोंसे, स्तुति की। पीछे नदियोंने विश्वामित्रको उत्तर दिया और अन्तको जल थटा कर उन्हें पार जानेको कहा।—सायण ।

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियमि वाचममृताय भूषन् ।

इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥२॥

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्विर्पणीतिः ।

अहन् व्यंसमुशधग्नेस्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥३॥

इन्द्रः स्वर्पा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।

प्रारोचयन्मनवे केतुमहूनामदिन्दुज्योतिर्वृहते रणाय ॥४॥

इन्द्रस्तुजो वर्हणा आविवेश नृवदधानो नर्या पुरूणि ।

अचेतयद्विय इमा जरित्रे प्रेमं वर्गामतिरच्छुक्रमासाम् ॥५॥

महो महानि पनयन्त्ययेन्द्रस्य कर्म सुकृता पुहृणि ।

वृजनेन वृजिनान् संपिपेप मायाभिर्दस्यूरभिभूत्योजाः ॥६॥

२ इन्द्र, तुम पूजनीय और बलवान् हो। तुम्हें अलंकृत करके, अन्नके लिये, तुम्हारी प्रीति उच्चारण करता हूँ। तुम मनुष्यों और देवोंके अग्रगामी हो।

३ इन्द्र, तुम्हारा कर्म प्रसिद्ध है। तुमने वृत्रको रोका था। शत्रुओंके आक्रमण-निवारक इन्द्रने मायाचियोंका, विद्रोह रूपसे, वध किया था। शत्रुवधामिलापी इन्द्रने वनमें छिपे स्कन्धहीन शत्रुका विनाश किया है। उन्होंने राम्यों या रात्रियोंकी गायोंको आविष्टक किया है।

४ स्वर्गदाता इन्द्रने दिनको उत्पन्न करके युद्धामिलापी अङ्गिरा लोगोंके साथ परकीय सेनाका आभिमव करके पगस्त किया है। मनुष्यके लिये दिनके पताका-स्वरूप सूर्यको प्रदीप्त किया था। महा-युद्धके लिये ज्याति प्रकट हुई।

५ वहुत धनका प्रहण करके वाधादात्री और वर्द्धमाना शत्रु-सेनाके बीच इन्द्र पैठे। स्तोत्रके लिये, उन्होंने, उपाको चेतन्य प्रदान किया और उनके शुकवर्ण तेजको वर्द्धित किया।

६ इन्द्र महान् हैं। उपासक लोग उनके प्रभूत सत्कर्मोंकी प्रशंसा करते हैं। बल द्वारा वह बलवानोंको चूर-चूर करते हैं। पराभवकसामें ज्यासपन्न इन्द्रने, माया द्वारा, दस्युओंको चूर्ण किया है।

युधेन्द्रो महना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
 विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥
 सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससर्वासं स्वरपश्च देवीः ।
 ससानयः पृथिवीं यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८॥
 सासानात्यौ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
 हिरण्यमुत भोगं ससान हवी दस्यून प्रार्यं वर्यामावत् ॥९॥
 इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीं रसनोदन्तरिचम् ।
 विभेदं बलं नुनुदे विवाचोथाभवदमिताभिकतूनाम् ॥१०॥
 शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
 शृण्वन्तमुग्रमृतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥

७ देवोंके पति और मानवोंके वर-प्रदाता इन्द्रने महायुद्धमें धन प्राप्त करके स्तोताओंको दान दिया। मेधावी स्तोता लोग यज्ञमानके धरमें मन्त्र द्वारा इन्द्रकी कीर्तिकी प्रशंसा करते हैं।

८ स्तोता लोग सबके जेता, वरणीय, जलप्रद, स्वर्ग और स्वर्गीय जलके स्वामी इन्द्रके आनन्दमें आनन्दित होते हैं। इन्द्रने पृथिवी, अन्तरीक्ष और स्वर्गको दान कर दिया है।

९ इन्द्रने अश्वका दान किया है, सूर्यका दान किया है, अनेक लोगोंके उपभोगके योग्य गोधन दान किया है, सुवर्णमय धन दान किया है तथा दस्युओंका वध करके आर्य-र्षा (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जातियों) की रक्षा की है।

१० इन्द्रने ओषधि प्रदान की है, दिन दिया है, वनस्पति और अन्तरीक्ष प्रदान किया है। उन्होंने मेघको भिन्न किया है, विरोधियोंका वध किया है, जो युद्ध करने सामने आये, उनका वध किया है।

११ इन्द्र, तुम अन्न-प्राप्त-कर्त्ता हो, युद्धमें उरसाह द्वारा प्रवृद्ध हो। तुम धनवान् हो, प्रभूत-वैभव-सम्पन्न हो, नेतृश्रेष्ठ हो, स्तुति-श्रोता हो, उग्र हो, संग्राममें अरि-मर्दन और धन-जेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

३५ सूक्त

इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

तिष्ठथा हरो रथ आयुज्यमाना याहि वायुर्णनियुतो नो अच्य ।
 पिवास्यन्धो अभिस्तथो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥१॥
 उपाजिरा पुरुहूताय सती हरी रथस्य धूर्वा युनज्मि ।
 द्रव्यथा संभृतं विश्वतरिषदुपेमं यज्ञमावहात इन्द्रम् ॥२॥
 उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमवत्वं वृषभ स्वधावः ।
 ग्रसेतामश्वां वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदशीरद्वि धानाः ॥३॥
 ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
 स्थिर रथं सुबमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन्विद्वाँ उपयाहि सोमम् ॥४॥

१ इन्द्र, हरि नामके दोनों अश्व रथमें योजित किये जाते हैं। जैसे वायु अपने नियुक्त नासक अश्वोंकी प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही तुम भी इन दोनोंको कुछ दण प्रतीक्षा करके हमारे सामने आओ। हमारा दिया सोम पीयो। हम स्वाहा शब्दका उच्चारण करके, तुम्हारे आनन्दके लिये, सोम दान करते हैं।

२ अनेक लोकोंमें आहत इन्द्रके शीघ्र गमनके लिये रथके अग्र भागमें द्रुतगामी अश्वद्वयको हम संयोजित करते हैं। विधिवत् अनुष्ठित इस यज्ञमें अश्वद्वय इन्द्रको ले आवें।

३ अभीष्टवर्षक और अन्नवान् इन्द्र, अपने वीर्यवान् और शत्रुमयत्राता अश्वद्वयको हमारे निकट ले आओ। तुम इस यज्ञमानकी रक्षा करो। रक्तवर्ण हरि नामके अश्वद्वयको इस देव-यजन-स्थानमें छोड़ दो। वे खावें। तुम समान रूपवाले उपयुक्त धान्य अथवा भूँजे हुए जौका भक्षण करो।

४ इन्द्र, मन्त्र द्वारा तुम्हारे अश्वद्वय योजित होते हैं तथा युद्धमें जिनकी समान प्रसिद्धि है, उन्हीं दोनों अश्वोंको मन्त्र द्वारा हम योजित करते हैं। इन्द्र, तुम विद्वान् हो। तुम समझकर सुदृढ़ और सुखकर रथपर आरोहण करके सोमके पास आओ।

मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन् यजमानासो अन्ये ।
 अत्यायाहि शश्वतो वयं तेरं सुतेभिः कृण्वाम सोमैः ॥५॥
 तवायं सोमस्त्वमेह्यर्गाड् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि ।
 अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषया दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥६॥
 स्तार्था ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृताधाना अत्त्वे ते हरिभ्यम् ।
 तदोक्से पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवीषि ॥७॥
 इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन् ।
 तस्या गत्या सुमना ऋध्व पाहि प्रजनन्विद्वान् पथ्या अनु स्वाः ॥८॥
 याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्द्धन्भवन् गणस्ते ।
 तेभिरेतं सजोषा वावशानोऽग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥९॥
 इन्द्र पिब रयधया चित् सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र ।
 अर्ध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥१०॥

५ इन्द्र, दूसरे यजमान तुम्हारे वीर्यवान् और कमनीय पृष्ठोवाले हरिद्वयको आनन्दित करें हम अभिषुत सोमके द्वारा, यथेष्ट रीतिसे, तुम्हारी वृत्ति करेंगे । तुम अनेक यजमानोंको अतिक्रम करके शीघ्र आओ ।

६ यह सोम तुम्हारा है । इसके सामने आओ । प्रसन्न-वदन होकर इस प्रभूत सोमका पान करो । इन्द्र, इस यज्ञमें कुशके ऊपर बैठकर इस सोमको जठरमें रखो ।

७ इन्द्र, तुम्हारे लिये कुश फैलाये गये हैं । सोम अभिषुत हुआ है तुम्हारे अश्वद्वयके भोजनके लिये धान्य तैयार है तुम्हारा आसन कुश है; अनेक लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम अभीष्टवर्षी हो । तुम्हारे पास मरुत्सेना है । तुम्हारे लिये हृश्य विस्तृत है ।

८ इन्द्र, तुम्हारे लिये अर्ध्वर्गुण्य, प्रस्तर और जलने इस सोम-दुग्धको मधुररस-विशिष्ट किया है । दर्शनीय और विद्वान् इन्द्र, प्रसन्न वदनसे अपनी हितकर स्तुतिको जान काके सोम पान करो ।

९ इन्द्र, सोम-पान-समयमें जिन मरुतोंको तुम सम्मानान्वित करते हो, युद्धमें जो तुम्हें बर्द्धित करते और तुम्हारे सहायक होते हैं, उन्हीं सब मरुतके साथ सोमपानामिलाषी होकर अग्निकी जिह्वा द्वारा सोम पान करो ।

१० यज्ञनीय इन्द्र, स्वयं अथवा अग्निकी जिह्वा द्वारा अभिषुत सोम पान करो । शक्र, अर्ध्वर्गुके हाथसे प्रदत्त सोम अथवा होताके भजनीय हृद्यका सेवन करो ।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसत्तौ ।
शृण्वन्तमुग्रमृतये समस्तु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥



३६ सूक्त

इन्द्र देवता । के० ल १० म ऋचाके अंगिराके वंशज घोर ऋषि हैं । लिप्युद्बन्ध ।

इमामूषु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।
सुतेसुते वावृधे वद्धर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतोभूत् ॥१॥
इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।
प्रयम्यमानान् प्रतिषू गृभायेन्द्र पिव वृषधूतस्य वृष्णाः ॥२॥
पिवा वद्स्व तव घां सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेसे ।
याथापिवः पूर्वी इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अथा नवीयान् ॥३॥

११ इन्द्र, तुम अन्न-प्रापक युद्धमें अस्ताह द्वारा प्रवृद्ध हो । तुम धनवान्, प्रसूत पेश्वर्यवाले, नेत्रश्रेष्ठ, स्तुतिश्रोता, उग्र, संग्राममें शत्रु-ह ता और धरजेता हो । आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं ।

१ इन्द्र, धन-दानके लिये मरुतोंके साथ सदा आकर विशेष रूपसे प्रस्तुत सोमको धारण करो । जो इन्द्र विशाल कर्मके कारण प्रसिद्ध हैं, वे प्रत्येक सोमामिपवमें पुष्टिकर हव्य द्वारा वद्धित हुए हैं ।

२ पूर्व समयमें इन्द्रको लक्ष्य करके सोम दिया गया था, जिससे इन्द्र कालात्मक, दीप्त और महात् हुए हैं । इन्द्र, तुम इस प्रदत्त सोमको ग्रहण करो । स्वर्गादि फल देनेवाले और प्रस्तर द्वारा अभिषुत सोमका पान करो ।

३ इन्द्र, पान करो और परिपुष्ट बनो । तुम्हारे लिये प्राचीन और नवीन सोम अभिषुत हुआ है । इन्द्र, तुम स्तुति-योग्य हो । जैसे तुमने प्राचीन सोमका पान किया था, वैसे ही इस क्षणमें नूतन सोमका पान करो ।

महौं अमत्रो वृजने विरप्युग्रं शवः पत्यते धृष्यवोजः ।
 नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत् सोमासो हर्यश्रमन्दन् ॥४॥
 महौं उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन ।
 इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्रजायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥५॥
 प्रयत् सिन्धवः पूसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।
 अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान् यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः ॥६॥
 समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ।
 अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥७॥
 हदाइव कुक्ष्यः सोमधाना समी विव्याच सवना पुरूणि ।
 अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृलं जघन्वाँ अंवृणीत सोमम् ॥८॥
 आ तू भर साकिरेतत् परिष्ठाद्विन्ना हि त्वा वसुपतिम् वसूनाम् ।
 इन्द्र यत्ते माहिनं दत्तमस्त्यरभृभ्यं तद्धर्यश्व इ यन्धि ॥९॥

४ जो इन्द्र अतोव शक्तिशाली है, जो समर-भूमिमें शत्रुओंके विजेता है, जो शत्रुओंके आह्वानकर्ता है, उन्हीं इन्द्रका उग्र बल और दुर्धर्य तेज सर्वत्र विस्तृत हो रहा है। जिस समय हर्यश्व इन्द्रको संभलस हृष्ट करता है, उस समय पृथिवी और स्वर्ग भी इन्द्रको धारण नहीं कर सकते।

५ वली, उग्र, अभीष्ट-वर्षक और दाता इन्द्र, वीर कीर्तिके लिये, प्रवृद्ध हुए हैं। स्तोत्रके साथ मिल गये हैं। इन्द्रकी सब गायोंने दुग्धदायी होकर जन्म लिया है। इन्द्र का दान बहुत है।

६ जिस समय नदियाँ स्रोतका अनुकरण करके दूरस्थ समुद्रकी ओर जाती हैं, उस समय थंकी भाँति जल भागता है। ठीक इसी भाँति वरणीय इन्द्र इस अन्तरीक्षसे अभिषुत लता-खण्ड-रूप अल्प सोम की ओर दौड़ते हैं।

७ समुद्र सङ्गामिलाषिणी नदियाँ जैसे समुद्रको पूर्ण करती हैं, वैसे ही अर्धयुं लोग इन्द्रके लिये अभिषुत सोमका सम्पादन करते हुए हस्त द्वारा लताका दोहन करते और प्रस्तर द्वारा धारारूप मधुर सोमरसका शोधन करते हैं।

८ इन्द्रका उदर तालाबके समान सोमका आधार है। वह एक ही साथ अनेक यज्ञोंको व्याप्त करते हैं। इन्द्रने प्रथम भक्तणीय सोम आदिका भक्षण किया है; अनन्तर वृषका निहत करके देवोंको भाग दे दिया है।

९ इन्द्र, शीघ्र धन दो। तुम्हारे इस धनको कौन रोक सकता है। हम तुम्हे धनाधिपति जानते हैं। तुम्हारे पास जो पूजनीय धन है, उसे हमें दो।

अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीविन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
 अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छवत इन्द्र शिप्रिन् ॥१०॥
 शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
 शृण्वन्तमुग्रमूतये समस्तु घ्नन्तं वृत्वाणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥



३७ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । गायत्री और अनुष्टुप् छन्द ।

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाहाय च । इन्द्र त्वावर्तयामसि ॥१॥
 अर्वाचीनं सुते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥२॥
 नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥३॥
 पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥४॥

१० इन्द्र, ऋजीपी (उच्छिष्ट) सोमवाले इन्द्र, तुम सबके वरणीय प्रभूत धन दो । जीनेके लिये हमें सौ वर्ष दो । सुन्दर जवड़ोंवाले इन्द्र, हमें बहु वीर पुत्र दो ।

११ इन्द्र, तुम अन्नप्रापक यज्ञमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध हो । तुम धनवान, प्रभूत चैभववाले, नेतृवर, स्तुति-श्रवण-कर्ता, प्रचण्ड, युद्धमें शत्रु-नाशक और धन-विजेता हो । आश्रय पानेके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं ।

१ इन्द्र, वृत्र-विनाशक चलकी प्राप्ति और शत्रु-सेनाके पराभवके लिये तुम्हें हम प्रवर्तित करते हैं ।

२ शतक्रतु इन्द्र, तुम्हारे मन और चक्षुको प्रसन्न करके स्तोता लोग हमारे सामने तुम्हें प्रेरित करें ।

३ शतक्रतु इन्द्र, अभिमानी शत्रुओंके पराभवकर्ता युद्धमें हम सारी स्तुतियोंसे तुम्हारा नाम-कीर्त्तन करेंगे ।

४ इन्द्र सबकी स्तुतिके योग्य, असीम तेजवाले और मनुष्योंके स्वामी हैं । हम उनकी स्तुति-करते हैं ।

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुपब्रुवे । भरेषु वाजसातथे ॥५॥
 वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥६॥
 द्युष्मेषु पृतनाज्ये पृसुनूर्पु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥७॥
 शुष्मिन्तमं न ऊतयेद्य इन्नं पाहि जागृविम् । इन्द्रसोमं शतक्रतो ॥८॥
 इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आवृणे ॥९॥
 अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।
 उक्ते शुष्म तिरामसि ॥१०॥
 अर्वावतो न आगह्यथो शक्र परावतः ।
 उलोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आगहि ॥११॥



५ इन्द्र, वृत्रका विनाश करने और युद्धमें धन-प्राप्तिके लिये बहुतां द्वारा आहूत इन्द्रका हम आह्वान करते हैं ।

६ शतक्रतु इन्द्र, युद्धमें तुम शत्रुओंके पराभव-कर्ता हो । हम, वृत्रके विनाशके लिये, तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ।

७ इन्द्र, जो धन, युद्ध, वीर-निश्चय और बलमें हमारे आभिमानी शत्रु हैं, उन्हें पराजित करो ।

८ शतक्रतु, हमारे आश्रय-लाभके लिये अत्यन्त बलवान्, दीप्तियुक्त और स्वप्न निवारक सोम पान करो ।

९ शतक्रतु, पञ्च जनोंमें जो सब इन्द्रियाँ हैं, उनको हम तुम्हारी ही समझते हैं ।

१० इन्द्र, प्रभूत अन्न तुम्हारे निकट जाय । शत्रुओंका दुर्दुर्धर्ष अन्न हमें प्रदान करो । हम तुम्हारे उत्कृष्ट बलको वर्द्धित करेंगे ।

११ शक्र इन्द्र, निकट अथवा दूर देशसे हमारे पास आओ । वज्रवान् इन्द्र, तुम्हारा जो उत्कृष्ट स्थान है, वहींसे इस यज्ञमें आओ ।

इन्द्र सूक्त

इन्द्र और इन्द्रावरुण देवता । विश्वामित-गोत्रीय प्रजापति अथवा वाच-गोत्रीय प्रजापति अथवा

विश्वामित ऋषि । लिप्पुप् छन्द ।

अभि तष्टेत्र दीधशा मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः ।

अभि प्रियाणि समृशत पराणि कवी रैच्छामि संदशे सुमेधाः ॥१॥

इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तत्तव द्याम् ।

इमा उते ऋग्योवर्धमाना मनोवाता अथ नु धर्माणि गमन् ॥२॥

निपीमिदत्र गुह्या दधाना उत चत्राय रोदसी समञ्जन् ।

संमात्राणिर्मिरे येमुरुवीं अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥३॥

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूयच्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।

महत्तद्दृणो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्यो ॥४॥

१ स्तोत्रा, त्वष्टाकी तरह, इन्द्रकी स्तुतिको जागरित करो । उल्काद, भारवाही और द्रुवगात्री अश्वकी तरह ऋषिमें प्रवृत्त होकर तथा इन्द्रके प्रिय कर्मके विषयपर चिन्ता कर मैं, मेधावान् होते हुए, स्वर्गगत कवियोंको देवदेवीकी इच्छा करता हूँ ।

२ इन्द्र, कवियोंके जन्मके सम्बन्धमें उन गुरुओंसे पृच्छा, जिन्होंने मनःसंयम और पुण्य कार्य द्वारा स्वर्गका निर्माण किया था । इस समय इस यज्ञमें तुम्हारे लिये प्रणीत स्तुतिर्था वृद्धिज्ञत होकर, मनकी तरह, वेगसे जाती हैं ।

३ इस भूलाक्रममें, सर्वत्र, कवियोंने गृह कर्मका निधान करके पृथिवी और स्वर्गको, बल-प्राप्तिके लिये, अललंघ्यत किया है । उन्होंने मात्राओं या मूलतत्त्वोंके द्वारा पृथिवी और स्वर्गका परिमाण किया है । उन्होंने परस्पर-मिलिता, विस्तीर्णा और महती धावापृथिवीको सङ्गत किया है और धावापृथिवीके बीचमें, धारणार्थि, अन्तरीक्षको स्थापित किया है ।

४ सारे कवियोंने रथस्थित इन्द्रको विभूषित किया है । स्वभावतः दीप्तिमान् इन्द्र दीप्तिसे आन्वृद्धित होकर स्थित हैं । अभीष्टवर्षी और असुर इन्द्रकी कीर्ति अद्भुत है । विश्वरूप धारण करके वह अमृतमें अधस्थित है ।

असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।
 दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ॥५॥
 त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
 अपश्यमत्र मनसा जगन्वान् व्रते गन्धर्वा अपि वायुकेशान् ॥६॥
 तदिन्वस्य वृषभस्य घेनोरानामभिर्ममिरे सवम्यं गोः ।
 अन्यदन्यदसुर्य वसाना निमायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥७॥
 तदिन्वस्य सवितुर्णाकिर्म हिरण्ययीममतिं यामशिश्नेत् ।
 आसुष्टती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥८॥
 युवं प्रत्नस्य साधथो महो यदैवी स्वस्तिः परिणस्यातम् ।
 गीपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥९॥

५ अभीष्टवर्षक, सनातन और सर्वश्रेष्ठ इन्द्रने जल-सृष्टि की है। इस प्रभूत जलने उनकी पिपासाको रोका है। स्वर्गके पौत्र-स्वरूप और शोभायमान इन्द्र और वरुण छुतिमान् यज्ञकर्त्ताकी स्तुतिसे लाभ-योग्य धन, हमारे लिये, धारण करते हैं।

६ राजा इन्द्र और वरुण, व्यापक और सम्पूर्ण सवन-त्रयको इस यज्ञमें अलंकृत करो। इन्द्र, तुम यज्ञमें गये थे; क्योंकि मैंने इस यज्ञमें वायुकी तरह केश-विशिष्ट गन्धर्वोंको देखा था। ४४

७ जो यज्ञमान लोग अभीष्टदाता इन्द्रके लिये गौश्रोकें भोग-योग्य हव्यको शीघ्र दृहते हैं, जिनके अनेक नाम हैं, उन्होंने नवीन असुर-बलको धारण करते हुए तथा मायाका विकाश करते हुए अपने-अपने रूपको, इन्द्रको, समर्पित किया था।

८ सूर्यकी स्वर्णमयी दीप्तिकी कोई सीमा नहीं कर सकता। इस दीप्तिके जो आश्रय हैं, वह उत्तम स्तुति द्वारा स्तुत होकर जैसे माता सन्तानका आलिङ्गन करती है, वैसे ही सर्व-व्यापक धावापृथिवीको आलिङ्गित करते हैं।

९ इन्द्र और वरुण, तुम दोनों प्राचीन स्तोताका कल्याण करो अर्थात् उसको स्वर्गीय मङ्गल-रूप श्रेय दो। हमें चारों ओरसे वचाओ। इन्द्रकी जीभ सबको अभय प्रदान करती है। इन्द्र स्थिर हैं। सारे मायावी लोग उनकी नानाविध कीर्तियाँ देखते हैं।

* १२२१४में गन्धर्वोंका अन्तरीक्षमें निवास करना लिखा है। ११११३ में गन्धर्वोंका सोमरस प्रस्तुत करना लिखा है। गन्धर्वोंका पेसा ही चिवरण पुराणोंमें भी है।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमृतये समस्तु घ्नन्तं वृत्वाणि सञ्जितं धनानाम् ॥१०॥



३ हि सूक्त

४ अनुवाक । इन्द्र देवता । ३५मे ५३ सूक्तकके विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

इन्द्रं मतिर्हृद आवच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति ।
या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य ॥१॥
दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना ।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमरमे सरजा पित्र्याधीः ॥२॥
यमाचिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदाह्यस्थात् ।
वपुंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्नएता ॥३॥

१० इन्द्र, तुम अन्न-लाभ-कर्ता यज्ञमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत पेशवर्षसे युक्त नेत्रश्रेष्ठ, स्तुति-श्रवण-कर्ता, उग्र, युद्धमें शत्रु-संहारक और धन-विजेता हो । आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं ।

१ इन्द्र, तुम विश्वपति हो । हृदयसे उच्चारित और स्तोत्राग्रों द्वारा सम्पादित स्तोत्र तुम्हारे सामने जाता है । तुम्हें जगाकर यज्ञमें जो स्तुति कही जाती है और जो मुझसे ही उत्पन्न है, उसे तुम जानो ।

२ इन्द्र, सूर्यसे भी पहले उत्पन्न जो स्तुति यज्ञमें उच्चारित होकर तुम्हें जगाती है, वह स्तुति कल्याणकारी शुभ्र वस्त्र धारण करके हमारे पितरोंके पाससे ही आगत और सनातन है ।

३ यमक-पुत्रों (अश्विनीकुमारों) की माताने उन्हें उत्पन्न किया । उनकी प्रशंसा करनेके लिये मेरी जीभका अगला भाग नाच रहा है । अन्यकार-नाशक दिनके आदिमें आगत मिथुन (जोड़ा) जन्मके साथ ही स्तुतिमें मिलता है ।

नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः ।
 इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥४॥
 सखाह यत् सखिभिर्नवग्वैरभिद्ध्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन् ।
 सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥५॥
 इन्द्रो मधुसम्भृतमुस्त्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः ।
 गुहाहितं गुह्यं गूह्यमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥६॥
 ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके ।
 इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुपस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥७॥
 ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनुष्यादारे स्याम दुरितस्य भूरेः ।
 भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसत्रो वर्हणावत् ॥८॥

४ इन्द्र, हमारे जिन पितरोंने, गोधनके लिये, युद्ध किया था, उनका पृथिवीपर, कोई भी निन्दक नहीं है। महिमा और कीर्तिवाले इन्द्रने अङ्गिरा लोगोंको समिद्ध गोवृन्द प्रदान किया था।

५ नदग्व (अङ्गिरा लोगों) के सखा इन्द्र जिस समय घुटनेके ऊपर जोर देकर गोधनकी खोजमें गये थे, उस समय अङ्गिरा लोगोंके साथ अग्धकारमें द्विपे सूर्यको देख सके थे।

६ इन्द्रने प्रथम दुग्धदायी धेनुओंपर मधु सिञ्चित किया; पश्चात् चरण और खुरसे युक्त धन ले आये। उदारचेता इन्द्रने गुहामध्यस्थित, प्रच्छन्न और अन्तरीक्षमें द्विपे मायावीको दाहिने हाथसे पकड़ा।

७ रात्रिसे ही उत्पन्न होकर इन्द्रने ज्योति धारण की। हम पापसे दूर भय-शून्य स्थानमें रहेंगे। हे सोमपा और सोम-पुष्ट इन्द्र, बहुस्तोम-विनाशक और स्तोत्रकारीकी इस स्तुस्तिका सेवन करो।

८ यज्ञके लिये सूर्य आवापृथिवीको प्रकाशित करें। हम प्रभूत पापसे दूर रहेंगे। वसुओं, स्तुति द्वारा तुम्हें अनुकूल किया जा सकता है। प्रभूत और समृद्ध धनको प्रभूत-दान-शील मनुष्यको प्रदान करो।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।

श्रुवन्तमुग्रमृतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥६॥

६ इन्द्र, तुम अन्न-प्राप्ति-कर्ता युद्धमें उत्साह द्वारा प्रबुद्ध, धनवान्, प्रभू-पेश्वर्य-सम्पन्न, नैतृश्रेष्ठ, स्तुति-श्रवण कर्ता, उग्र-संग्राममें शत्रु-नाशक और धन-विजेता हो । आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं ।

द्वितीय अध्याय समाप्त



तृतीय अध्याय

४० सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । गायत्री छन्द ।

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥
 इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्यं पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृषिम् ॥२॥
 इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः । तिरः स्तवान विश्पते ॥३॥
 इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्रयन्ति सत्पते । ज्यं चन्द्रास इन्द्रवः ॥४॥
 दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव युत्सास इन्द्रवः ॥५॥
 गिर्वणः पाहि नः सुतम् मधोर्धाराभि रज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥६॥
 अभि युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥७॥

१ हे इन्द्र, तुम अभीष्टपूरक हो । अभिषुत सोमपानके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं । मदकारक और अन्नमिश्रित सोमका तुम पान करो ।

२ हे बहुजनस्तुत इन्द्र, यह अभिषुत सोम बुद्धिवर्द्धक है । इसे पीनेकी अभिलाषा प्रकट करो और इस तृप्तिकारक सोमसे जठरका सिञ्चन करो ।

३ हे स्तूयमान, मरुत्पति इन्द्र, सम्पूर्ण यजनीय देवोंके साथ तुम हमारे इस हविवाले यज्ञका भली भाँति वर्द्धन करो अर्थात् हविः स्वीकार कर इस यज्ञको पूर्ण करो ।

४ हे सत्पति इन्द्र, हमारे द्वारा प्रदत्त, आह्लादाक, दीप्त, अभिषुत सोम तुम्हारे जठर-देशमें जा रहा है । इसे धारण करो ।

५ हे इन्द्र, यह अभिषुत सोम सबके द्वारा वरणीय है । इसे तुम अपने जठरमें धारण करो । यह सब दीप्त सोमरस तुम्हारे साथ श्लोकमें रहता है ।

६ हे स्तुतिपात्र इन्द्र, मदकारक सोमकी धारासे तुम प्रसन्न होते हो; अतः हमारे अभिषुत सोमका पान करो । तुम्हारे द्वारा वर्द्धित अन्न ही हम लोगोंको प्राप्त होता है ।

७ देवयाजकोंकी श्रुतिमान्, द्रयरहित सोम आदि सम्पूर्ण हवि इन्द्रके अभिमुख जाती है । सोम-पान कर इन्द्र वर्द्धित होते हैं

अर्वावतो न आगहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८॥

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आगहि ॥९॥

४१ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । गायत्री छन्द ।

आ तू न इन्द्रमद्रचग्धुवानः सोमपोतये । हरिभ्यां याह्यद्विवः ॥१॥

सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तरे वर्हिरानुषक् । अजुञ्जन प्रातरदूयः ॥२॥

इम्हा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आवर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोनाशम् ॥३॥

रारन्धि सवनेपु ण एपु स्तोमेषु वृत्रहन् । उग्रथेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४॥

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिस् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५॥

८ हे वृत्रविदारक इन्द्र, निकटतम प्रदेशमें या अत्यन्त दूर देशसे हमारी ओर आओ । हमारी इस स्तुति-नाश्रीका प्रकार प्रहण करो ।

९ हे इन्द्र, यद्यपि तुम अत्यन्त दूर देश, निकटतम प्रदेश और मध्य भाग देशमें आहूत होते हो; तथापि सोमपानके लिये इस यज्ञमें आओ ।

१ हे चक्रधर इन्द्र, होताओंके द्वारा आहूत होनेपर हमारे पास हमारे यज्ञमें, तुम, सोमपानके लिये हरि नामक घोड़ोंके साथ, शीघ्र आओ ।

२ हमारे यज्ञमें यथासमय ऋत्विक् होता, तुम्हें बुलानेके लिये, बैठे हैं । कुश परस्पर सम्यक् करके चिह्न दिया गया है । प्रातःस्वन्नमें सामाम्निपथके लिये प्रस्तर सब भी परस्पर सम्यक् किये हुए हैं; अतः सोमपानके लिये आओ ।

३ हे स्तुतिलभ्य इन्द्र, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं; अतः इस यज्ञीय कुशपर बैठो । हे शूर, हमारे द्वारा प्रदत्त इस पुरोनाशका भक्षण करो ।

४ हे स्तुतिपात्र और वृत्रहन्ता इन्द्र, हमारे यज्ञके तीनों सघनोंमें किये गये स्तोत्रों और उक्र्यों (जख्रों) में रमण करो ।

५ महान् सामपायी और यज्ञपति इन्द्रका स्तुतियाँ वैसे ही चाटती हैं, जैसे गौपें बड़ड़ेको चाटती हैं ।

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६॥
 वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥७॥
 मारे अस्मद्धि सुमुचो हरिप्रियार्वाङ् यहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥८॥
 अर्वाञ्च त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतसू बर्हिरसदे ॥९॥



७३ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । गायत्री छन्द ।

उप नः सुतमागहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥१॥
 तमिन्द्र मदमागहि बर्हिष्ठां प्रावभिः सुतम् । कुविन्दस्य तृष्यावः ॥२॥
 इन्द्र मित्था गिरो ममाच्छायुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥३॥

६ हे इन्द्र, प्रभूत धनदानके लिये सोमके द्वारा तुम शरीरको प्रसन्न करो; परन्तु मुझ स्तोताको निन्दित नहीं करना ।

७ हे इन्द्र, हम तुम्हारी इच्छा करते हुए हविसे युक्त होकर तुम्हारी स्तुति करते हैं । हे सबके निराशयिता इन्द्र, तुम भी हविके स्वीकरणार्थ हमारी रक्षा करो ।

८ हे हरि-(अश्व)-प्रिय, हमसे दूर देशमें घोड़ोंको रथसे मत खोलो । हमारे निकट आओ । हे सोमवान् इन्द्र, इस यज्ञमें दृष्ट बनो ।

९ हे इन्द्र, अमजलसे युक्त और लम्बे केशवाले घोड़े, बैठने योग्य कुशके सामने, तुम्हें सुखकर रथपर हमारे पास ले आवें ।

१ हे इन्द्र, हमारे दुग्धमिश्रित अभिबुल सोमके निकट आओ; क्योंकि तुम्हारा अश्व-संयुक्त रथ हमारी कामना करता है ।

२ हे इन्द्र, इस सोमके निकट आओ । यह पत्थरोंपर पीसकर निकाला गया है और कुशोंपर रखा गया है । इसका प्रचुर परिमाणमें पान करके शीघ्र तृप्त होओ ।

३ इन्द्रके लिये उच्चारित हमारी यह स्तुति-वाणी इन्द्रको, सोमपानार्थ बुलानेके लिये इस यज्ञ-देशसे इन्द्रके निकट जाय ।

इन्द्र सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥४॥
 इन्द्र सोमाः सुता इमेतान्दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥५॥
 विद्या हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे । अथा ते सुह्नमीमहे ॥६॥
 इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिव । आगत्या वृषभिः सतम् ॥७॥
 तुभ्येदिन्द्र स्व ओन्नये सोमं बोदामि पीतये । एष रन्तु ते हृदि ॥८॥
 त्वां सुतस्य पीतये प्रलमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवश्यवः ॥९॥

४३ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ याज्ञर्वाङ्गुपवन्धुरेष्ट्रास्त्वेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
 प्रिया सखाया विमुचोप वहिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥१॥

४ स्तोत्रों और उक्त्यों द्वारा सोमपानके लिये यज्ञमें हम इन्द्रको बुलाते हैं । बहुवार
 आहृत इन्द्र यज्ञमें आँवें ।

५ हे शतक्रतु इन्द्र, तुम्हारे लिये सोम तैयार है, इसे जठरमें धारण करो । तुम अन्न-
 धन हो ।

६ हे कवि, युद्धमें तुम शत्रुओंके अभिभय-कर्ता और धनजेता हो । हम तुम्हें पेसा ही जानते
 हैं; अतएव हम तुमसे धनकी याचना करते हैं ।

७ हे इन्द्र, हमारे इस यज्ञमें आकर गव्य-मिश्रित तथा यव-मिश्रित अभिपुत सोमका शीवा
 द्वारा पान करो ।

८ हे इन्द्र, तुम्हारे पीनेके लिये ही इस अभिपुत सोमको हम तुम्हारे जठरमें प्रेरित करते हैं ।
 यह सोम तुम्हारे हृदयमें तृप्तकर हो ।

९ हे पुरातन इन्द्र, हम कुशिक-वंशोत्पन्न तुम्हारे द्वारा रक्षित होनेकी इच्छा करते हुए, अभि-
 पुत सोमपानके लिये स्तुति-वचनों द्वारा तुम्हें बुलाते हैं ।

१ हे इन्द्र, जूप्याले रथपर चढ़कर तुम हमारे निकट आओ । यह सोम प्राचीन कालसे
 ही तुम्हारे उद्देशसे प्रस्तुत है । तुम अपने प्रियतम सखास्वरूप अश्वको कुशके निकट खोजो ।
 ये ऋत्विक् सोमपानके लिये तुम्हें बुला रहे हैं ।

आयाहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उपनो हरिभ्याम् ।
 इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥२॥
 आ नो यज्ञ नमो वृधं सजोषा इन्द्रदेव हरिभिर्याहि तूयम् ।
 अहं हित्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥३॥
 आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
 धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि ॥४॥
 कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मधवन्वृजीषिन् ।
 कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मेवस्वो अमृतस्य शिचाः ॥५॥
 आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो बहन्तु ।
 प्र ये द्विता दिव ऋजत्याताः सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥६॥

२ हे स्वामी इन्द्र, तुम समस्त पुरातन प्रजाका अतिक्रमण करके आओ । घोड़ोंके साथ यहाँ आकर सोमपान करो, यही हमारी प्रार्थना है । स्तोताओंके द्वारा प्रयुक्त सख्यभिलाषिणी स्तुतियाँ तुम्हारा आह्वान कर रही हैं ।

३ हे द्योतमान इन्द्र, हमारे अन्नवर्द्धक यज्ञमें, घोड़ोंके साथ, तुम शीघ्र आओ । घृतसहित अन्नरूप हवि लेकर हम सोमपान करनेके स्थानमें तुम्हारा, स्तुति द्वारा, प्रभूत आह्वान कर रहे हैं ।

४ हे इन्द्र, सेचनसमर्थ, सुन्दर धुरा और शोभन अङ्गवाले, सखास्वरूप ये दोनों घोड़े तुम्हें यज्ञभूमिमें रथपर ले जाते हैं । भूँजे जाँसे युक्त यज्ञकी सेवा करते हुए सखा स्वरूप इन्द्र हम स्तोताओंकी स्तुतियाँ सुनें ।

५ हे इन्द्र, मुझे लोगोंका रक्षक बनाओ । हे मधवन्, हे सोमवान् इन्द्र, मुझे सबका स्वामी बनाओ । मुझे अतीन्द्रियदृष्टा (ऋषि) बनाओ तथा अभिषुत सोमका पानकर्ता बनाओ और मुझे अन्नय धन प्रदान करो ।

६ हे इन्द्र, महाबू और रथमें संयुक्त हरि नामक मत्त घोड़े तुम्हें हमारे अभिमुख ले आवें । कामनाओंके वर्षक इन्द्रके अश्व षडुओंके विनाशक हैं । इन्द्रके हाथोंसे संस्पृष्ट होनेपर वे घोड़े आकाशमार्गसे अभिमुख आते हुए और दिशाओंको द्विधा करते हुए गमन करते हैं ।

इन्द्र पिव वृष धूतस्य वृष्ण आयन्ते श्येन उसते जभार ।
 यस्य मदेच्यावयसि प्रकृष्टीर्यस्य मदे अपगात्रा ववर्थ ॥७॥
 शुन हुवेम मघत्रानसिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
 श्रृगवन्तमुग्रमूतथे समस्तु घ्नन्तं वृत्ताणि सज्जितं धनानाम् ॥८॥



४४ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित श्रुषि । वृहती वन्द ।

अयन्ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।
 जुपाण इन्द्र हरिभिर्न आगह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥१॥
 हर्यन्नुपसमर्चयः सूर्य हर्यन्नरोचयः
 विद्राँ शिचकित्वान् हर्यश्व वर्ध स इन्द्र विश्वा अभिश्रियः ॥२॥

७ हे इन्द्र, तुम सोमामिलापी हो । तुम अभीष्टफलदायक, और प्रस्तर द्वारा अभिपुत्र सोमका पान करा । सुपर्णपत्नी तुम्हारे लिये सोमको लाया है । सोमपानजन्य हर्षके उत्पन्न होनेपर तुम शत्रुभूत मनुष्यादिकों पातित करते हो एवं सोमजन्य हर्षके उत्पन्न होनेपर तुम वर्षा ऋतुमें मेघोंको अपावृत्त करते हो ।

८ इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करा । तुम युद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान् प्रभूत, पेश्वर्यवाले, नेतृश्रेष्ठ, स्तुतिश्रवण-कर्ता, उग्र, युद्धमें शत्रुविनाशी और धनविजेता हो । आश्रयप्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं ।

१ हे इन्द्र, पत्शरों द्वारा अभिपुत्र, प्रीतिवर्द्धक, कमनीय सोम तुम्हारे लिये हो । हरिनामक घोड़ोंमें युक्त, हरिद्वर्ण रथपर तुम आधिष्ठान करो और हमारे अभिमुख आगमन करो ।

२ हे इन्द्र, सोमामिलापी होकर तुम उपाकी अर्चना करते हो तथा सोमामिलापी होकर तुम सूर्यको भी प्रदीप्त करते हो । हे हरिनामक घोड़ोंवाले, तुम विद्वान् हो, हमारे मनोभिलाषके ज्ञाता हो तथा अभिमत्तफल-प्रदानसे तुम हमारी सम्पूर्ण सम्पत्तिको परिवर्द्धित करते हो ।

यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्षसम् ।
 अधारयद्धरितोभूरिभोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत ॥३॥
 जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमाभाति रोचनम् ।
 हर्यश्वा हरितं धत्त आयुधमा वजूं बाहोर्हरिम् ॥४॥
 इन्द्रो हर्यतमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
 अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥५॥

—ॐ—

४५ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । वृहती छन्द ।

आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
 मात्वा केचिन्नियमन्वि न पाशिनोति धन्वेवताँ इहि ॥१॥

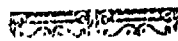
३ हरिद्वय रश्मिवाले धूलोकका तथा ओषधियोंसे हरिद्वयवाली पृथिवीका, इन्द्रने, धारण किया है । हरिद्वयवाली धावापृथिवीके मध्यमें अपने घोड़ोंके लिये इन्द्र प्रभूत भोजन प्राप्त करते हैं । इन्द्र इसी धावापृथिवीके मध्यमें विचरण करते हैं ।

४ कामनाओंके पूरक, हरिद्वयवाले, इन्द्र जन्मग्रहण करते ही सम्पूर्णा दीप्तिमान् लोकोंको प्रकाशित करते हैं । हरिनामक घोड़ोंवाले इन्द्र हाथोंमें हरिद्वय आयुध धारण करते हैं तथा शत्रुओंके प्राणसंहारक वज्र धारण करते हैं ।

५ इन्द्रने कमनीय, शुभ्र, क्षीरादिके द्वारा व्याप्त होनेके कारण शुभ्र, वेगवान् और प्रस्तरों द्वारा अभिषुत सोमको अपावृत किया है—आवरणरहित कर दिया है । पाशियों द्वारा अपहृत गौओंके इन्द्रने अश्वयुक्त होकर गुहासे बाहर निकाला है ।

१ हे इन्द्र, मादक और मयूरोंके रोमों (पिच्छों)के समान रोमोंसे युक्त घोड़ोंके साथ तुम इस यज्ञमें आओ । जैसे उड़ते पक्षीको व्याधे फाँस रखते हैं, वैसे कोई भी तुम्हारे मार्गमें प्रतिबन्धक न हो । अधिक मरुभूमिको जैसे उल्लङ्घित कर जाते हैं, वैसे ही तुम भी इन सकल बाधाओंका अतिक्रमण करके हमारे यज्ञमें शीघ्र आओ ।

वृत्रखादो बलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
 स्थाता रथस्य ह्योररभिस्वर इन्द्रो दृह्लाचिदारुजः ॥२॥
 गम्भीराँ उदधीँ रिव क्रतुं पुष्पसि गाइव ।
 प्र सुगोपा यत्रसं धेनवो यथा हृदं कुल्या इवाशत ॥३॥
 आ नस्तुजं रयिं भराशं न प्रति जानते ।
 वृक्षं पकं फलमंकीव धनुहीन्द्र संपारणं वसु ॥४॥
 स्वयुरिन्द्र स्वरासि स्मदिष्टिः स्वयशस्तरः ।
 स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवनः सुश्रवस्तमः ॥५॥



२ इन्द्र वृत्रहन्ता हैं। ये मेघोंको विदीर्ण करके जलका प्रेरण करते हैं। इन्होंने शत्रुपुरीको विदीर्ण किया है। इन्द्रने हमारे सम्मुख दानों घोड़ोंको चलानेके लिये रथपर आरांक्षण किया है। इन्द्रने पलवान् शत्रुओंको नष्ट किया है।

३ हे इन्द्र, साधु गोपगण जैसे गौत्रोंको यव आदि खाद्य पदार्थोंसे पुष्ट करते हैं, महावकाश समुद्रको जिस प्रकार तुम जल द्वारा पुष्ट करते हो, वैसे ही यज्ञ करनेवाले इस यज्ञमानको भी तुम अभिमत्त-फल-प्रदानसे सन्तुष्ट करो। धनुगण जैसे वृणादिको और छोटी सरिताएँ जैसे महाजलाशयको प्राप्त करती हैं, वैसे ही यज्ञीय सोम तुम्हें प्राप्त करता है।

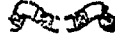
४ हे इन्द्र, जैसे व्यवहारण पुत्रको पिता अपने धनका भाग दे देता है, वैसे ही शत्रुओंको परास्त करनेवाला, धनवान् पुत्र हमें दो। पके फलोंके लिये जैसे अङ्गुश (जगगी) वृक्षको चालित कर देता है, वैसे ही तुम हमारी इच्छाको पूर्ण करनेवाला धन दो।

५ हे इन्द्र, तुम धनवान् हो, स्वर्गके राजा हो, सुवचन हो और प्रभूत कीर्तिवाले हो। हे बहु-जनस्तुत, तुम अपने बलसे वर्द्धमान होकर हमारे लिये अतिशय शोभन प्रदानवाले होओ।

४६ सूक्त

इन्द्रदेवता । विरयामित्र ऋषि ।

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य वृष्वेः ।
 अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणीद्रं श्रुतस्य महतो भहानि ॥१॥
 महौ असि महिष वृषायेभिर्धनस्पृदुग्रसहमानो अन्यान् ।
 एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च ह्ययया च जनान् ॥२॥
 प्र माताभीरिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
 प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षाहजीषी ॥३॥
 उरुं गभीरं जनुषा भ्युग्रं दिश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
 इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आविशन्ति ॥४॥
 यं सोममिन्द्र पृथिवी द्यावा गर्भं न माता बिभृतस्वाया ।
 तं ते हिन्वन्ति तमुते सृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवाउ ॥५॥



१ हे इन्द्र, तुम युद्ध करनेवाले अभिमत-फलदाता, धनोंके स्वामी, सामर्थ्यवान्, नितान्त तपण, चिरन्तन, शत्रुओंके धराजित-कर्ता, जराग्रहित, वज्रधारी और तीनों लोकोमें विश्रुत हो । तुम्हारा वीर्य महान् है ।

२ हे पूजनीय उग्र इन्द्र, तुम महान् हो । तुम अपने धनको पार ले जाते हो । पराक्रमसे शत्रुओंको तुम अभिभूत करते हो । तुम सम्पूर्ण संसारके एक मात्र राजा हो । तुम शत्रुओंका संहार करो और साधुचरित जनोंको स्थापित करो ।

३ दीप्यमान और सब प्रकारसे अपरिमित, सोमवान् इन्द्र पर्वतोंसे भी श्रेष्ठ हैं, बलमें देवताओंसे भी अधिक हैं, द्यावापृथिवीसे भी अधिक हैं तथा विस्तार्य, महान् अन्तरीक्षसे भी श्रेष्ठ हैं ।

४ हे इन्द्र, तुम महान् हो; अत एव गभीर हो तथा स्वभावसे ही शत्रुओंके लिये भयङ्कर हो । तुम सर्वत्र व्याप्त हो, स्तोताओंके रक्षक हो । नदिशाँ जैसे समुद्रके अभिमुख गमन करती हैं, वैसे ही यह पूर्वकालिक अभिषुत सोम इन्द्रके अभिमुख गमन करे ।

५ हे इन्द्र, माता जिस प्रकार गर्भ धारण करती है, उसी प्रकार द्यावापृथिवी तुम्हारी कामनासे सोमको धारण करती हैं । हे कामनाओंके पूरक, उसी सोमको अध्वर्यु लोग तुम्हारे लिये प्रेरित करते हैं और उसे तुम्हारे पीनेके लिये शुद्ध करते हैं ।

४७ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिवा सोममनुष्वधं मदाय ।
 आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मि त्वं राजसि प्रदिवः सुतानाम् ॥१॥
 सजोपा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिव वृत्रहा शूर विद्वान् ।
 जहि शत्रूँ रपमृधोनुदस्वाथाभयं कृणु हि विश्वतो नः ॥२॥
 उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।
 याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन् वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥३॥
 ये त्वाहिहत्ये मघवनवर्द्धन्ये शम्भरे हरिवो ये गविष्टौ ।
 ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिवेन्द्र सोमंसगणो मरुद्भिः ॥४॥

१ हे इन्द्र, तुम जलधर्मक मन्वात् हो । रमणीय पुरोडाजादि रूप अन्नसे युक्त सोमको तुम संग्रामकें लिये और हर्षकें लिये पियो । तुम विशेष रूपसे सोम संग्राहकका जठरमें सेक करो; क्योंकि तुम पूर्वकालमें ही अभिपूत सोमोंके स्वामी हो ।

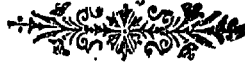
२ हे शूर इन्द्र, तुम देवगणोंके संगत, मरुद्गणोंसे युक्त, वृत्रहन्ता और कर्मविपयज्ञाता हो । तुम सोमपान करो । हमारे शत्रुओंका मारो, हिंसक जन्तुओंका अपनादन करो और हमें सर्वत्र निर्भय करो ।

३ हे ऋतुपा इन्द्र, स्वयं-स्वरूप मरुतों और देवोंके साथ तुम हमारे अभिपूत सोमका पान करो । युद्धमें सहायता पानेके लिये जिन मरुतोंका तुमने सेवन—ग्रहण—किया था और जिन मरुतोंने तुम्हें स्वामी माना था, उन्हीं मरुतोंने तुम्हें संग्राममें शत्रुहननादि रूप पराक्रमवान् किया था; तब तुमने वृत्रको मारा था ।

४ हे मघवन, हे अश्वघन इन्द्र, जिन मरुतोंने, अहिर्बुध्न-कार्यमें, बलदान द्वारा, तुम्हें संवर्द्धित किया था, जिनहोंने तुम्हें शम्भर-वधमें संवर्द्धित किया था और जिनहोंने गौश्रोंके लिये पण्य असुरोंके साथ युद्धमें संवर्द्धित किया था, जो मेघावाँ मरुत् तुम्हें आज भी प्रसन्न कर रहे हैं, उन मरुद्गणोंके साथ तुम सोम पान करो ।

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।

विश्वासाहमवसे नूतनायोद्यं सहोदाभिह तं हुवेम ॥५॥



४३ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । लिप्टुप् छन्द ।

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुभावन्दन्धसः सुतस्य ।

साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोमस्य ॥१॥

यजायथास्तदहरस्य कामेशोः पीयूषमपिवो गिरिष्ठाम् ।

तं ते माता परियोषा जनित्रीमहः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ॥२॥

उपस्थाय मातरमन्नमैदतिगममपश्यदभि सोममूधः ।

प्रयावयन्मचरद्गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुध प्रतीकः ॥३॥

५ हे इन्द्र, तुम मरुद्गणयुक्त, जलवर्षी, प्रोत्साहक, प्रभूतशब्दविशिष्ट, दिव्य, शासनकर्ता, विश्वके अभिभविता, उग्र तथा चलप्रद हो । हम नूतन आश्रय (रक्षा)-लाभके लिये तुम्हें-बुलाते हैं ।

१ जलवर्षक, सद्यःउत्पन्न, कमनीय इन्द्र हविर्युक्त सामरूप अन्नके संग्रहकर्ताकी रक्षा करें । प्रत्येक कार्यमें सोमपानकी इच्छा होनेपर तुम देवताओंके पहले गव्यमिश्रित साधु सोमका पान करो ।

२ हे इन्द्र, तुम जिस दिन उत्पन्न हुए थे, उसी दिन पिपासित होनेपर तुमने पर्वतस्थ सोमलाताके रसका पान किया था । तुम्हारे महान् पिता कश्यपके (सूक्तिका) गृहमें, तुम्हारी युवती माता आदितिने, स्तन्यदानके पहले, तुम्हारे भुँहमें, सोमरसका ही सिञ्चन किया था ।

३ इन्द्रने मातासे प्रार्थनापुरःसर अन्नकी याचना की और उसके स्तनमें क्षीररूपसे स्थित दीप्त सोमको देखा । शृत्स (शत्रुहर्तारथं देवताओं द्वारा अभिकांतित इन्द्र) शत्रुओंको अपने स्थानोंसे उच्चालित कर सर्वत्र विचरण करने लगे । बहुतों प्रकारसे अङ्गविक्षेप कर इन्द्रने वृत्रहर्तारथं बह्नुविध महान् कार्य किये ।

उग्रस्तुराषाडभिभूत्यो जायथावशं तन्वं चक्र एषः ।
 त्वष्टारमिन्द्रो जनुपाभिभूयामुष्या सोममपिवच्चमूपु ॥४॥
 गुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतसं वाजसातौ ।
 शृणवन्तमुग्रमृतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५॥



४६ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । विश्विष् घन्द ।

शंसा महामिन्द्रं यस्मिन्विश्वत्रा आकृष्टयः सोमपाः काममव्यन् ।
 यं सुक्रन्तुं धिपणां विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥१॥
 यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतभं हरिष्ठाम् ।
 इततमः सत्वभिर्यो ह शूपैः पृथुञ्जया अमिनादायुर्दस्योः ॥२॥

४ अग्रश्रौंके लिये मयद्वार, जोष्र अभिभवकर्ता और पराक्रमवान् इन्द्रने अपने शरीरको नाना प्रकारका बनाया । इन्द्रने आपनी सामर्थ्यसे त्वष्टा नामक असुरको पराजित कर चमस-स्थित मोमको चुगाकर पिया ।

५ इन्द्र, तुम अद्य प्राप्त करो । युद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत, पेश्वर्यवाले, नेत्रश्रेष्ठ, स्तुतिश्रवणकर्ता, उग्र, युद्धमें शत्रुविनाशो और धनविजेता हो । आश्रयप्राप्तिके लिये हम तुम्हें चुनते हैं ।

१ 'ह स्तोता, महान् इन्द्रो स्तुति करो । इन्द्र द्वारा रचित होनेपर सब मनुष्य यक्षमें सोमपान कर प्रभाष्ट प्राप्त करते हैं । देवताओं और आवापृथिवीने ब्रह्मा द्वारा आधिपत्यके लिये नियुक्त शोभन कर्मवाले तथा पापोंके हन्ता इन्द्रको उत्पन्न किया ।

२ मंग्राममें आपने तेजसे राजमान, हरि नामक घोड़ोंसे युक्त रथपर स्थित, यत्न-युद्धके नेता और मंग्राममें सेनाश्रौंको दो भागोंमें विभक्त करनेवाले जिन इन्द्रको कोई भी अतिक्रान्त नहीं कर सकता, वही इन्द्र सेनाश्रौंके उत्कृष्ट स्वामी हैं । ये युद्धमें शत्रु-यत्नशोपक मन्त्रोंके साथ तीव्रवेग होकर शत्रुओंके प्राणोंको नष्ट करते हैं ।

सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वाव्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
 भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥३॥
 धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
 क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणोव वाजस्र ॥४॥
 शूनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
 शृग्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घन्तां वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५॥



५० सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान् ।
 श्रोरुव्यथाः पृणत्तामेभिरन्नैरास्य हरिस्तन्वः काममृध्याः ॥१॥

३ जैसे बलवान् अश्व शत्रुबलका सन्तरण करता है, वैसे ही बलवान् इन्द्र संग्राममें शत्रुओंका उत्क्रमण करते हैं। द्यावापृथिवीको व्याप्त कर इन्द्र धनवान् होते हैं। यज्ञमें पूषदेवकी तरह हवनीय इन्द्र स्तुति कर्त्ताओंके पिता हैं। आहूत होकर कमनीय इन्द्र अन्नदाता होते हैं।

४ इन्द्र सुलोक तथा अन्तरिक्षके धारक हैं। वे ऊर्ध्वगामी रथकी तरह वर्तमान हैं। वह गमनशील मरुतोंके द्वारा सहायवान् हैं। वह रात्रिको आच्छादित करते हैं, सूर्यको उत्पन्न करते हैं और भजनीय कर्मफल-रूप अन्नका वैसे ही विभाग करते हैं, जैसे धनीका वाक्य धन-विभाग करता है।

५ इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। तुम युद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्य-वाले, नरश्रेष्ठ, स्तुतिश्रवणकर्ता उग्र, युद्धमें शत्रुविनाशी और धनविजेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

१ इन्द्र यज्ञमें आकर स्वाहाकृत इस सोमका पान करें। जिस इन्द्रका यह सोम है, वह विघ्न-कारियोंके हिंसक, याजकोंके अभिगतफल वर्षक और मरुद्वान् हैं। अतिशय व्यापक इन्द्र हम लोगोंके द्वारा दिये गये अन्नसे तृप्त हों। हव्य इन्द्रके शरीरकी अभिलाषा पूर्ण करे।

आ ते सपयूँ जवसे युनडिम ययोरनुप्रदिवः श्रुष्टिमावः ।

इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिवात्वस्य सुपुतस्य चारोः ॥२॥

गोभिर्मिमिच्छुं दधिरे सुवारमिन्दं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः ।

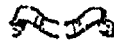
मन्दानः सोमं पपिवां ऋजीपिन् समस्मभ्यं पुरुधो गा इषय्य ॥३॥

इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।

स्वर्यवो मतिभि स्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकोसा अक्रन् ॥४॥

शुनं हुवेम रघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृणवन्तमुग्रमूतये समस्तु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धननाम् ॥५॥



२. हे इन्द्र, तुम्हें यज्ञमें अतिके लिये हम रथका परिचारक-अश्वयुक्त करते हैं। तुम पुरातन हो, घोड़ोंके घेगका अनुगमन करते हो। हे शोभन-हनु इन्द्र, घोड़े तुम्हें यज्ञमें धारण करें। आकर तुम इस कर्मनाय और भलीभाँति अभिपुत्र सोमका शीघ्र पान करो।

३. स्तोत्राओंके अभिमनफलवर्धक और स्तुति द्वारा प्रसन्न करने योग्य इन्द्रका स्तोत्र करनेवाले ऋन्विक लोग श्रेष्ठ्य और चिरकालीन आयु प्राप्तिके लिये गव्यमिश्रित सोम द्वारा धारण करते हैं। हे सोमयान इन्द्र, प्रसुद्ध होकर तुम सोमपान करो और स्तोत्राओंको अग्निहोत्रादि-कार्यसिद्धिके लिये बहुविध धेनु दो।

४. हमारा इस अभिलाषाका गौ, अश्व और द्दीतिवाले धनके द्वारा पूर्ण करो तथा उनके द्वारा हमें विख्यात करो। इन्द्र, स्वर्गादि-सुखाभिलाषी और कर्मकुशल कुशिकन्दर्शन मन्त्र द्वारा तुम्हारा स्तोत्र किया है।

५. इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। तुम शुद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान, प्रभूत-पेश्वर्धवाले, नेतृ-श्रेष्ठ, स्तुतिश्रवणकर्ता, उग्र, युद्धमें शत्रुविनाशी और धनविजेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें युताने हैं।

५१ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । जगती, गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द ।

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्यमिन्द्रं गिरो वृहतीरभ्यनूपत ।
 वाबृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवे दिवे ॥१॥
 शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो स इन्द्रमुपयन्ति विश्वतः ।
 वाजसनिं पूर्भिदं तूष्णिमपतुरं धामसाचमभिपाचं स्वर्विदम् ॥२॥
 आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेनेहसस्तुभ इन्द्रो दुवस्यति ।
 विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासा हमभिमातिहनं स्तुहि ॥३॥
 नृणामुत्वा नृतमं गीभिरुक्थरभिप्रवीरमर्चता सवाधः ।
 सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥४॥

१ अभिमतफलप्रदानसे मनुष्योंके धारक, धनवान उक्थ्य द्वारा प्रशंसनीय, बल-धन आदि सम्पत्तिसे प्रतिक्षण वर्द्धमान, स्तोताओं द्वारा बहुशः आहूत, मरणाधर्भरहित और शोभन स्तुतिवचनसे प्रतिदिन स्तुयमान इन्द्रकी प्रभूत स्तुति-वचनोंसे सब प्रकारसे स्तुति की जाय ।

२ इन्द्र सौ यक्ष करनेवाले, जलवाले, मरुतोंसे युक्त, सगूर्या जगत्के नेता, अग्निके दाता, शत्रुपुरीके भेदक, युद्धार्थ शीघ्रगन्ता, मेघभेदन द्वारा जलके प्रेरक, धन प्रदाता, शत्रुओंके अभिभवकर्ता तथा स्वर्गके प्रदाता हैं । इन्द्रके निकट हमारी स्तुतिवाणी सब प्रकारसे जाय !

३ इन्द्र शत्रुओंके बलसंहारक हैं, संग्राममें वे सबसे स्तुत होते हैं । वे निष्पाप स्तुतियोंको सम्मानित करते हैं । अग्निहोत्रादि करनेवाले यजमानके गृहमें सोमपान कर वे अत्यन्त प्रसन्न होते हैं । विश्वामित्र, मरुतोंके साथ शत्रुओंके अभिभवकर्ता और शत्रुसंहारक इन्द्रकी स्तुति करो ।

४ हे इन्द्र, तुम मनुष्योंके नेता तथा वीर हो । राक्षसों द्वारा पीड़ित ऋत्विक् स्तुतियों तथा उक्थों (शब्दों) द्वारा तुम्हें भलीभाँति अर्चित करते हैं । वृत्रहन्नादि कर्म करनेवाले इन्द्र बलके लिये गमनोद्यम करते हैं । एक मात्र पुरातन इन्द्र ही इस अन्नके ईश्वर हैं; अतः इन्द्रको नमस्कार है ।

पूर्वीरस्य निष्पिबधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी विभर्ति ।
 इन्द्राय द्यात्र ओषधीस्तापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥५॥
 तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यां सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
 बोध्या पिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयोधाः ॥६॥
 इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याति अपिवः सुतस्य ।
 तव प्रणीती तव शूर शर्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥७॥
 सः वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः ।
 जातं यत्त्वा परिदेवा अभूपणन् महे भराय पुरहूत विश्वे ॥८॥
 असूर्ये मरुत आपिरेपो मन्दन्निन्द्रमनुदातिवाराः ।
 तौभः साकं पिवतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुपः स्वे सधस्थे ॥९॥

१ मनुष्योंमें इन्द्रका अनुशासन नामा प्रकारका है । शासक इन्द्रके लिये पृथिवी बहुत धन धारण करती है । इन्द्रकी आज्ञासे घुलोक, ओषधियाँ, जल, मनुष्य और वृत् उनके उपभोगयोग्य धनकी रक्षा करते हैं ।

२ हे अश्ववान इन्द्र, तुम्हारे लिये स्तोत्रों और शस्त्रोंको ऋत्विक् लोग यथार्थ ही धारण करते हैं, तुम उनका ग्रहण करो । हे मयके निवासयिता और सखिस्वरूप इन्द्र, तुम व्याप्त हो । यह अभिनव हवि तुम्हें दी गयी है, इसे ग्रहण करो । स्तोत्राओंको श्रद्धा दोगे ।

३ हे मरुतोंमें युक्त इन्द्र, शार्याति राजाके यज्ञमें जैसे तुमने अभिपुत्र सोमका पान किया था, वैसे ही इस यज्ञमें सोम पान करो । हे शूर, तुम्हारे निर्वाध निवासस्थानमें स्थिर और सुन्दर यज्ञ करनेवाले मेधाधी यजमान हविके द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं ।

४ हे इन्द्र, सोमकी कामना करते हुए तुम सिल मरुतोंके साथ हमारे इस यज्ञमें अभिपुत्र सोमका पान करो । हे पुत्रों द्वारा आहूत इन्द्र, तुम्हारे जन्म-ग्रहण करते ही सब देवताओंने तुम्हें महासंग्रामके लिये भूषित किया था ।

५ हे मरुतों, जलके प्रेरणासे इन्द्र तुम्हारे मित्र होते हैं । उन्हें चलदाता तुम्हने प्रसन्न किया था । वृषधियाँका इन्द्र तुम्हारे साथ हवि देनेवाले यजमानके गृहमें अभिपुत्र सोमका पान करें ।

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पवात्वस्य गिर्वृणः ॥१७॥

यस्ते अनु स्रधामसत्सुते नियच्छ तन्वम् । सत्वा समत्तु सोभ्यम् ॥१९॥

प्र ते अश्रोतु कुन्दयोः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः । प्रवाहू शूर राधसे ॥२२॥



५२ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप्, गायत्री और जगती छन्द ।

धानावन्तं करंभिरभूपपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥१॥

पुरोलाशं पचस्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुभ्यं हव्यानि सिस्वते ॥२॥

पुरोलाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योपणाम् ॥३॥

पुरोलाशं सनश्रुत प्रातः सावे जुषस्व नः । इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥४॥

१० हे धनके स्वामी स्तूयमान इन्द्र, उद्देशानुक्रमसे बल द्वारा इस अभिषुत सोमका शीघ्र पान करो ।

११ हे इन्द्र, तुम्हारे लिये जो अन्नमिश्रित सोम अभिषुत हुआ है, उसमें अपने शरीरको निमग्न करो । तुम सोमपानके योग्य हो । तुम्हें वह सोम प्रसन्न करे ।

१२ हे इन्द्र, वह सोम तुम्हारी दोनों कुक्षियोंको व्याप्त करे, स्तोत्रोंके साथ वह तुम्हारे शरीरको व्याप्त करे । हे शूर, धनके लिये वह तुम्हारी दोनों भुजाओंको भी व्याप्त करे ।

१ हे इन्द्र, भुजे जौसे युक्त, दधिमिश्रित, सन्तुसे युक्त, सवनीय पुरोडाशसे युक्त और शस्त्रवाले हमारे सोमका, प्रातःसवनमें, तुम सेवन करो ।

२ हे इन्द्र, पक्व पुरोडाशका तुम सेवन करो । पुरोडाशके भक्षणके लिये उद्यम करो । हवनके योग्य यह पुरोडाश आदि हवि तुम्हारे लिये गमन करती है ।

३ हे इन्द्र, हमारे इस पुरोडाशका भक्षण करो । हमारी इस श्रुति लक्षणा वाणीका वैसे ही सेवन करो, जैसे स्त्रीकी भक्ति करनेवाला कामी पुरुष सुवती स्त्रीका सेवन करता है ।

४ हे पुराणकालसे प्रसिद्ध इन्द्र, हमारे इस पुरोडाशका प्रातःसवनमें सेवन करो, जिससे तुम्हारा कर्म महान् हो ।

माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोडाशमिन्द्र कृध्वेह चारुम् ।
 प्र यत् स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थ्यो वृषायमाण उप गीभिरीद्वे ॥५॥
 तृतीये धानाः सवने पुरुष्टु त पुरोडाशमाहुतं मामहस्व नः ।
 ऋभुमन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्तः उपशिञ्जेम धीतिभिः ॥६॥
 पूषण्वते ते चक्रुमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः ।
 अपूपमद्विध सगणो मरुद्भिः सोमं पिव वृत्रहा शूर विद्वान् ॥७॥
 प्रति धाना भरत त्वयमस्मै पुरोडाशं वीरतमाय नृणाम् ।
 दिवेदिवे सदशीरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ॥८॥



५ हे इन्द्र, माध्यन्दिन-सवन-स्रावण्यो भुने जोके कमनीय पुरोडाशका यहाँ आकर भक्षण करके संस्मृत करो। तुम्हारी परिचर्या करनेवाले, स्तुतिके लिये त्वरित गमन (व्यग्र), अतएव वृषकी नगद श्वर उधर दौड़नेवाले, स्तोता जय स्तुतिलक्षण वचनोंमें तुम्हारी स्तुति करते हैं, तभी तुम पुरोडाश आदिका भक्षण करते हो।

६ हे बहुजनस्तुत इन्द्र, तृतीय सवनमें हमारे भुने जोका और हुत पुरोडाशका भक्षण करो। हे कवि, तुम ऋभुवाले तथा धनयुक्त पुत्रवाले हो। हम लोग हवि लेकर स्तुतियों द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं।

७ हे इन्द्र, तुम पूषा नामक देववाले हो। तुम्हारे लिये हम दही-मिला सतू बनाते हैं। तुम हरि नामक घोड़ेवाले हो। तुम्हारे खानेके लिये हम भुना जो तैयार करते हैं। मरुतोंके साथ तुम पुरोडाशका भक्षण करो। हे शूर, तुम वृत्रहन्ता हो। विद्वान् हो, सोम पियो।

८ अन्नचरुओं, इन्द्रके लिये शीघ्र भुना जो दो। यह नेतृत्तम है। इन्हें पुरोडाश प्रदान करो। हे शत्रुओंके अभिभवकर्ता इन्द्र, तुम्हें लक्ष्य कर प्रतिदिन की गयी, एक प्रकारकी, स्तुति-तुम्हें सोम-पानके लिये उत्साहित करे।

५६ सूक्त

१४ ऋचाके इन्द्र और पर्वत देवता, १५-१६ के वाग्देवता, १७-२० के रथांग देवता हैं, अवशिष्टके इन्द्र देवता हैं । विश्वामित्र ऋषि । जगती आदि छन्द ।

इन्द्रा पर्वता बृहता रथेन वामीरिष आवहतं सुवीराः ।
 वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीभिरिडया मदन्ता ॥१॥
 तिष्ठा सुकं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यत्नि ।
 पितुर्न पुत्रः सिचमारभेत इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥२॥
 शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय बार्हः कृणवाव जुष्टम् ।
 एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाथा च भूद्रकथमिन्द्राय शस्तम् ॥३॥
 जायेदस्तं मघवनत्सेदु योनिस्तदित्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।
 यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥४॥

१ हे इन्द्र और पर्वत, महान् रथपर मनोहर और सुन्दर पुत्रसे युक्त अन्न लाओ । हे द्योतमान, हमारे यज्ञमें तुम दोनों हव्यका भक्षण करो । हव्य द्वारा दृष्ट होकर हमारे स्तुतिलक्षण वचनोंसे वर्द्धित होओ ।

२ हे मघवन, इस यज्ञमें कुछ कालतक तुम सुखपूर्वक रहो । हमारे यज्ञसे चले मत जाओ । क्योंकि, सुन्दर अभिपुत्र सोम द्वारा हम शीघ्र ही तुम्हारा यजन करते हैं । हे शक्तिसम्पन्न इन्द्र, मधुर वचनों द्वारा पुत्र जैसे पिताके वल्लप्रान्तका ग्रहण करता है, वैसे ही हम सुमधुर स्तुतियों द्वारा तुम्हारे वल्लप्रान्तको गृहीत करते हैं ।

३ हे अध्वर्युओ, हम दोनों स्तुति करेंगे । तुम हमें उत्तर दो । हम दोनों इन्द्रके उद्देश्यसे प्रीति-युक्त स्तोत्र करते हैं । तुम यजमानके कुशके ऊपर उपवेशन करो । इन्द्रके लिये, हम दोनोंके द्वारा किया गया उक्थ (शस्त्र) प्रशस्त हो ।

४ हे मघवन, स्त्री ही गृह होती है और स्त्री ही पुरुषोंका मिश्रण-स्थान है । रथमें युक्त होकर अश्व तुम्हें उस गृहमें ले जायँ । हम जब कभी तुम्हारे लिये सोमको अभिपुत्र करेंगे, तब हमारे द्वारा प्रहित, दूतस्वरूप अग्नि तुम्हारे निकट गमन करे ।

परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम् ।
 यत्रा रथस्य वृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥५॥
 अपाः सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि कल्याणीर्जाया सूरणं गृहे ते ।
 यत्रा रथस्य वृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥६॥
 इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
 विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्रतिरन्त आयुः ॥७॥
 रूपं रूपं मघवा वोभवीति मायाः कृणवानस्तन्वं परिस्वाम् ।
 त्रिष्यदिवः परि मुहूर्त्तमागात् स्वैर्मन्वैरनृतुपा ऋतावा ॥८॥
 महौ अपिदेवजा देवजूतोस्तभ्नात् सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
 विश्वामित्रो यदवहत् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥९॥

५ हे मघवन, तुम स्वकीय गृहामिमुख हाओ अथवा हमारे इस यज्ञमें आगमन करो । हे पोषक, दोनों स्थानोंमें तुम्हारा प्रयोजन है; क्योंकि वहाँ गृहमें स्त्री है और यहाँ सोम है । गृह-गमनके लिये तुम महान् रथके ऊपर अधिष्ठान करो अथवा हेपारव करनेवाले घोड़ोंको रथसे विमुक्त करो ।

६ हे इन्द्र, यहीं उतरकर सोम पान करो । सोम पीकर घर जाना । तुम्हारे रथगीय गृहमें मङ्गल-कारिणी जाया और सुन्दर ध्वनि है । गृह-गमनके लिये तुम महान् रथके ऊपर अवस्थान करो अथवा अश्वको रथसे विमुक्त करो—इसी यज्ञमें उहरो ।

७ हे इन्द्र, यज्ञ करनेवाले ये भोज सुदास राजाके याजक हैं, नाना रूप हैं अर्थात् अङ्गिरा मेधातिथि आदि हैं । देवोंमें भी बलवान् रथके पुत्र बलवान् मरुत् मुक्त विश्वामित्रके लिये, अश्वमेधमें महनीय धन देने हुए, अश्वको भली भाँति वर्द्धित करें ।

८ इन्द्र जिस रूपकी कामना करते हैं, उस रूपके हाँ जाते हैं । मायावी इन्द्र अपने शरीरको नाना-विध बनाते हैं । वे अतवान् होकर भी अमृतमें सोमपान करते हैं । वे स्वकीय स्तुति द्वारा आहूत होकर, स्वर्ग लांकरसे मुहूर्त-मध्यमें, तीनों सवनोंमें गमन करते हैं ।

९ अतिशय सामर्थवान्, अतीन्द्रियार्थद्रष्टा, श्रोतमान तेजोंके जनयिता तेजों द्वारा आकृष्ट और अश्वर्षु आदिके उपदेश विश्वामित्रने जलवान् सिन्धुको निरुद्धवेग किया । पित्रघनके पुत्र सुदास राजाको अथ विश्वामित्रने यज्ञ कराया था, तब इन्द्रने कुशिकगोत्रापन्न ऋषियोंके साथ प्रिय व्यवहार किया था ।

हंसा इव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा ।

देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो विपिवध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु ॥१०॥

उप प्रेत कुशिकाश्चेत्यध्वमश्वं रायो प्रमुञ्चता सुदासः ।

राजा वृत्रं जह्वनत् प्रागपागुदगथा यजाते वर आपृथिव्याः ॥११॥

य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम् ।

विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥१२॥

विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।

करदिन्नः सुराधसः ॥१३॥

किं ते कृणवन्ति कीकटेषु गोवो नाशिरं दुहे न तपन्ति घर्मम ।

आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैवाशाखं मघवन्न्थयानः ॥१४॥

१० हे मेधावियो, हे अतीन्द्रियार्थद्रष्टाओं, हे नेतृगणके उपदेशको, हे कुशिक-गोत्रोत्पन्नो, हे पुत्रो, यज्ञमें पत्थरों द्वारा सोमके अमिषुत होनेपर तुम लोग स्तुतियों द्वारा देवताओंको प्रसन्न करते हुए शस्त्र करो अर्थात् श्लोक (मन्त्र) का भली भाँति उच्चारण करो, जैसे हंस शब्दोंका भली भाँति उच्चारण करते हैं। देवगणके साथ तुम लोग मधुर सोम रसका पान करो ।

११ हे कुशिक-गोत्रोत्पन्नो, हे पुत्रो, तुम लोग अश्वके समीप जाओ, अश्वको उत्तेजित करो। धनके लिये सुदासके अश्वको छोड़ दो। राजा इन्द्रने विघ्नकारक वृत्रका पूर्व, पश्चिम और उत्तर देशमें वध किया है। अतएव सुदास राजा पृथ्वीके उत्तम स्थानमें यज्ञ करें।

१२ हे कुशिक पुत्रो, हम (विश्वामित्र) ने धावापृथिवी द्वारा इन्द्रका स्तव किया है। स्तोता विश्वामित्रका यह इन्द्र-विषयक स्तोत्र भरतकुलके मनुष्यकी रक्षा करे।

१३ विश्वामित्र-वंशीयोंने वज्रधर इन्द्रके लिये स्तोत्र किया है। इन्द्र हम लोगोंको शोभन धनसे युक्त करें।

१४ हे इन्द्र, अनार्योंके निवासयोग्य देशोंमें कीकटसमूहके मध्यमें गौएँ तुम्हारे लिये क्या करेंगी? वे सोमके साथ मिश्रित होनेके योग्य दुग्ध दान नहीं करती हैं। दुग्ध प्रदान द्वारा वे पात्रको भी दीप्त नहीं करती हैं। हे धनवान् इन्द्र, उन गौओंको तुम हमारे निकट लाओ और प्रमगन्द (अत्यन्त कुसीदिकुल) के धनका भी आनयन करो। हे मघवन्, नीच वंशवालोंका धन हमें दो।

ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।

आ सूर्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् ॥१५॥

ससर्परीरभरत्तूयमेभ्योधिश्रवः पाञ्जजन्यासुकृष्टिषु ।

सापद्या नव्यमायुर्दधानायां मे पलस्तिजमदग््नयो ददुः ॥१६॥

स्थिरौ गावौ भवतां वीदुरक्षो मेषा वि वह्नि मा युगं विशारि ।

इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोररिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥१७॥

वलं धेहि तनूपु नो वलमिन्द्रानदुत्सु नः ।

वलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि वलदा अरि ॥१८॥

अभिव्ययस्व खदिरस्य सारमोजे धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् ।

अच वीलो वीलित वीलयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥१९॥

१५ अग्निकों प्रज्वलित करनेवाले अग्निषों द्वारा सूर्यसे लाकर हम लोगोंको दी गयी, अन्नानको बाधित करनेवाली, रूप तथा शब्दतया सर्वत्र सर्पणशीला वाक् (वचन) आकाशमें प्रभूत शब्द करती हैं । सूर्यकी दुहिता चाग्देवता इन्द्र आदि देवताओंके निकट पत्थररहित अमृत रूप अन्नको विस्तृत करती हैं ।

१६ गय-पथ रूपसे सर्वत्र सर्पणशीला चाग्देवता चारों वर्ण तथा निपादमें जो अन्न विद्यमान है, उससे अधिक अन्न हमें शीघ्र दे । दीर्घ आयुवाले जमदग्नि आदि मुनियोंने जिस पंचनको सूर्यसे लाकर हमें दिया है, पत्तोंके निर्वाहक सूर्यकी दुहिता, चद्र चाग्देवता हमारे लिये नूतन अन्न दान करे ।

१७ मुद्रासके यज्ञमें अवभृथ करनेके उपरान्त यज्ञशालासे जानेको इच्छा करते हुए विश्वामित्र रयाङ्गकी स्तुति करते हैं—गोष्ठय स्थिर होओ, अच दृढ़ होओ। दण्ड जिससे विनष्ट नहीं हो, युग जिसमें विनष्ट नहीं हो, युग जिसमें विशीर्ण नहीं हो। पतनशील कीलकद्वयके विशीर्ण होनेके पहले ही इन्द्र धारण करें। हे अर्हिसित नेमिविशिष्ट रथ, तुम हम लोगोंके अभिमुख आगमन करो।

१८ हे इन्द्र, तुम हम लोगोंके शरीरमें बलदान करो, हमारे घृपमोंको बलदान करो और हमारे पुत्र-पौत्रोंको चिरजीवी होनेके लिये बलदान करो; क्योंकि तुम बलप्रद हो।

१९ हे इन्द्र, रथके खदिर-काष्ठके सारको दृढ़ करो, रथके शीशमके काठको दृढ़ करो। हे हम लोगों के द्वारा दृढीकृत भक्त, तुम दृढ़ होओ। हमारे गमनशील इस रथसे हमें पैर नहीं देना।

अयमस्मान् वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत् ।

स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ॥२०॥

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अय याच्छ्रेष्ठाभिर्मर्मघवञ्छूर जिन्व ।

यो नो द्वेष्यधरः सम्पदोष्ट यमुद्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥२१॥

परशुं चिद्वितपति शिम्बलां चिद्विवृश्रति ।

उखां चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२॥

न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशुमन्यमानाः ।

नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥२३॥

इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।

हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परिणयन्त्याजौ ॥२४॥

२० वनस्पतियों द्वारा निर्मित यह रथ हम लोगोंको मत त्यक्त करे, मत विनष्ट करे। जवतक हम लोग गृह न प्राप्त करें, जवतक रथ चलता रहे और जवतक कि, अश्व विमुक्त न हो जायँ, तवतक हम लोगोंका मङ्गल हो।

२१ हे शूर, हे धनवान् इन्द्र, हम लोग शत्रुओंके हिंसक हैं। हम लोगोंको तुम प्रभूत और श्रेष्ठ आश्रय दान द्वारा सन्तुष्ट करो। जो हम लोगोंसे द्वेष करता है, वह निकृष्ट होकर पतित हो। हम लोग जिससे द्वेष करते हैं, उसे प्राणवायु परित्याग करे।

२२ हे इन्द्र, जैसे कुठारको पांकर वृत्त प्रतप्त होता है, वैसे ही हमारे शत्रु प्रतप्त हों। शालमली पुष्प जैसे अनाथास ही वृन्तच्युत हो जाता है, वैसे ही हमारे शत्रुओंके अवयव विच्छिन्न हों। प्रहत, जलसावी स्थाली (हाँड़ी) पाककालमें जैसे फेनोद्गीर्ण करती है, वैसे ही मेरी मन्त्रसामर्थ्यसे प्रहत होकर शत्रु मुख द्वारा फेनोद्गीर्ण करें।

२३ वसिष्ठके भृत्योंको विश्वामित्र कहते हैं—हे पुरुषो, अवसांग करनेवाले विश्वामित्रकी मन्त्र-सामर्थ्यको तुम लोग नहीं जानते हो। तपस्याका क्षय न हो जाय, इसी लोभसे चुपचाप बैठे हुपको पशु मानकर ले जा रहे हो। वसिष्ठ मेरे साथ स्पर्द्धा करनेके योग्य नहीं हैं; क्योंकि प्राज्ञ व्यक्ति मूर्ख व्यक्तिको उपहासास्पद नहीं करते हैं; अश्वके सम्मुख गर्दभ नहीं लाया जाता है।

२४ हे इन्द्र, भरतवंशीयगण (वसिष्ठके साथ) अपगमन (पार्थक्य) जानते हैं, गमन (एकता) नहीं जानते हैं अर्थात् शिष्टोंके साथ उनकी संगति नहीं है। संग्राममें सहज शत्रुकी तरह उन लोगोंके प्रति वे अश्व प्रेरण करते हैं और धनुर्धारण करते हैं।

५४ सूक्त

५ अनुवाक । विश्वदेवगण देवता । विश्वामितके पुत्र प्रजापति अथवा वाक्के पुत्र प्रजापति ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

इमं महे विदध्याय शूषं शश्वत्कृत्व ईड्याय प्रजभ्रः ।

शृणोतु नो दम्भेभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजलः ॥१॥

महिमहे दिवे अर्चापृथिव्यै कामो म इच्छश्चरति प्रजानन् ।

ययोर्हस्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवोमादयन्ते सचायोः ॥२॥

युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तुमहेषुणः सुविताय प्रभूतम् ।

इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसायामि रत्नम् ॥३॥

उतो हि वां पूर्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः ।

नरश्चिद्रां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथवि वेविदानाः ॥४॥

१ महान् यज्ञमें मन्थन द्वारा निष्पाद्यमान अौर स्तुति-योग्य अग्निके उद्देश्यसे यह सुखकर स्तोत्र वारम्भार उच्चारित होता है । अग्नि गृहमें विद्यमान हो कर तथा तेजोविशिष्ट होकर हमारे इस स्तोत्र को सुनें । दिव्य तेजसे निरन्तर युक्त होकर अग्नि हमारे इस स्तोत्रको सुनें ।

२ हे स्तोता, महती धावापृथिवीकी सामर्थ्यको जानते हुए तुम उनकी अर्चना करो । मेरा मनोरथ सम्पूर्ण भोगका इच्छुक है, सर्वत्र वर्तमान है । पूजाभिलाषी देवगण सम्पूर्ण मनुष्योंके यज्ञमें धावापृथिवीके स्तोत्र करनेमें मत्त होते हैं ।

३ हे धावापृथिवी, तुम्हारा ऋत (अनृशंसता) यथार्थ हो । तुम हमारे महान् यज्ञकी समाप्तिके लिये समर्थ होओ । हे अग्नि, युक्तोक्त अौर पृथिवीको नमस्कार है । हविर्लिङ्गण अन्नसे मैं परिचर्या करता हूँ, उत्तम धनकी याचना करता हूँ ।

४ हे सत्ययुक्त धावापृथिवी, पुरातन सत्यवादी महर्षियोंने तुमसे हितकर अर्थ (अभिलषित) प्राप्त किया था । हे पृथिवी, युद्धमें जानेवाले मनुष्यगण तुम्हारे माहात्म्यको जानकर तुम्हारी वन्दना करते हैं ।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचदेवाँ अच्छा पथ्या कासमेति ।
 ददश्च एषामवमासदां सिपरेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥५॥
 कविर्नृचक्षा अभिधीमचष्ट ऋतस्य योना विधृते मदन्ती ।
 नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन ऋतुना संविदाने ॥६॥
 सप्तान्या विधुते दूरे अन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके ।
 उत स्वसारायुवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥७॥
 विश्वेदेते जनिमा संविविक्तो महो देवान्विभ्रती न व्यथेते ।
 एजद्भ्रुवं पत्येते विश्वमेकं चरत् पतत्रि विषुणं विजातम् ॥८॥
 सत्त्वा पुराण मध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामितन्नः ।
 देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथिव्युते तस्थुरन्तः ॥९॥

५ उस सत्यभूत अर्थको कौन जानता है ? कौन उस जाने हुए अर्थको बोलता है। कौन समीचीन पथ देवताओंके निकट ले जाता है। देवगणके अधःस्थान अर्थात् धूलोकस्थित नक्षत्रादि देखे जाते हैं। वे उत्कृष्ट और दुर्लभ व्रतमें अवस्थिति करते हैं।

६ कवि, मनुष्योंके द्वारा सूर्य इस धावापृथिवीको सर्वत्र देखते हैं। जलके उत्पत्ति-स्थान अन्तरिक्षमें हर्षकारिणी, रसवती और समान कर्मों द्वारा परस्पर ऐक्यभावापन्ना धावापृथिवी पक्षियोंके घोंसलोंकी तरह पृथक्-पृथक् नाना स्थानको अधिकृत करती हैं।

७ परस्पर प्रीतियुक्त कर्म द्वारा ऐकमत्य प्राप्त, वियुक्त होकर वर्तमान, अविनाशिनी धावापृथिवी जागरणशील होकर अन्नश्वर अन्तरिक्षमें नित्य तरुण भगिनीद्वयकी तरह एक आत्मासे जायमान होकर ठहरी है। वे दोनों आपसमें द्वन्द्व (मिथुन) नाम अभिहित करती हैं।

८ यह धावापृथिवी सम्पूर्ण भौतिक वस्तुको अवकाश-दान द्वारा विभक्त करती है। महान् सूर्य, इन्द्र आदि अथवा सरित्, समुद्र, पर्वत आदिको धारण करके भी व्यथित नहीं होती है। जङ्गलात्मक और स्थावरात्मक जगत् केवल एक पृथिवीको ही प्राप्त करता है। चञ्चल पशु और पक्षिगण नाना रूप होकर धावापृथिवीके मध्यमें ही अवस्थित होते हैं।

९ हे द्यौ, तुम महान् हो, तुम सबका जनन करती हो और पालन करती हो। तुम्हारी सनातनता, पूर्वक्रमागता और हम लोगोंका जननत्व सब एकसे ही उत्पन्न हुआ है। द्यौ भगिनी होती है। हम अभी उसका (भगिनीत्वका) स्मरण करते हैं। धूलोकमें, विस्तीर्ण और विविक्त आकाशमें तुम्हारी स्तुति करनेवाले देवता अपने वाहनोंके सहित स्थित हैं। वहाँ ठहरकर वे स्तोत्र सुनते हैं।

इमं स्तोमं रोदसी प्रवशीम्यदृदराः शृण्वन्नग्निजिह्वाः ।

मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः ॥१०॥

हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिदिवो विदथे पत्यमानः ।

देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमासुव सर्व्वतातिम् ॥११॥

सुकृत् सुपाणिः स्ववाँऋतावा देवस्त्वष्ट्रावसेतानि नो धात् ।

पूपएवन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वआवाणो अध्वरमतष्ट ॥१२॥

विद्युद्रथा मरुत् ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।

सरस्वती शृण्वन् यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥१३॥

विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।

उरुकमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥१४॥

१० हे धावापृथिवी, तुम्हारे इस स्तोत्रका हम अच्छी तरहसे उच्चारण करते हैं । सोमको उदरमें धारण करनेवाले, अग्निरूपी जिलावाले, भली भाँति दीप्तिमान, वित्त्य तरुण, कवि, अपने-अपने कर्मको प्रकट करनेवाले मित्र आदि देवता इस स्तोत्रको सुनें ।

११ दानार्थ हिरण्यकां हाथमें रखनेवाले, शोभन चचनवाले सविता यज्ञके तीनों सवनोंमें आकाशमें आते हैं । हे सविता, तुम स्तोत्राओंके स्तोत्रको प्राप्त करो । इसके अनन्तर, सप्तपूर्य्य, अभिलिखित फलको हम लोगोंके लिये प्रेरित करो ।

१२ सुन्दर जगत्के कर्ता, कद्रयाणपाणि, धनवान्, सत्यसङ्कल्प त्वष्टदेव रक्षाके लिये हम लोगोंको सप्तपूर्य्य अपेक्षित फल प्रदान करें । हे ऋभुओं, पूषाके सहित तुम हम लोगोंको धन प्रदान करके हृष्ट करो । यज्ञिक, सामाभिवेक लिये प्रस्तरकां उत्तोलन करनेवाले ऋत्विकोंने यह यज्ञ किया है ।

१३ द्योतमान रथवाले, आगुधधान् दीप्तिमान्, शत्रुओंके विनाशक, यज्ञोत्पन्न, सतत गमनशील, यज्ञार्ह मरुद्गण और वाग्देवता हमारे इस स्तोत्रका सुनें । हे त्वरान्वित मरुद्गण, हमें पुत्रविशिष्ट धन दान करो ।

१४ धनका हेतुभूत यह स्तोत्र और अर्चनीय शक्य, इस विस्तृत यज्ञमें, बहुकर्मा विष्णुके निकट गमन करे । सवनी जनयित्री और परस्पर अमङ्कीर्णा दिशाणं, जिस विष्णुको हिंसित नहीं करती हैं, वह विष्णु उग्रविक्रमी हैं । त्रिविक्रमावतारमें एक ही पेरसे उन्होंने सम्पूर्ण जगत्को आक्रान्त किया था ।

इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः पर्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वां ।

पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णुषेणः संगृभ्य न आभरा भूरि पशवः ॥१५॥

नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारुनाम ।

युधं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥१६॥

महत्तद्वः कवयश्चारुनाम यद्व देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।

सखन्नुभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियं सातये तक्षतानः ॥१७॥

अर्थमाणा अदितिर्यज्ञियासो दब्धानि वरुणस्य व्रतानि ।

युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान्नः पशुमाँ अस्तु गातुः ॥१८॥

देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोनागान्नो वोचतु सर्वताता ।

शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्वं न्तरिक्षम् ॥१९॥

१५ सकल-सामर्थ्य-सम्पन्न इन्द्रने छावा और पृथिवी दोनोंका महिमा द्वारा पूर्ण किया है । शत्रुपुरीको विदीर्ण करनेवाले, वृत्रको मारनेवाले और शत्रुओंको पराजित करनेवाली सेनावाले इन्द्र पशुओंका संग्रह करके हमें प्रचुर परिमाणमें पशु दान करें ।

१६ हे अश्विनीकुमारो, तुम हम बन्धुओंकी अभिलाषाकी जिज्ञासा करनेवाले हो, हमारे पालक होओ । तुम दोनोंका मिलन कमनीय है । हे अश्विन, हमारे लिये तुम उत्तम धनके देनेवाले होओ । तुम्हारा तिरस्कार कोई भी नहीं करता है । तुम्हें हम हवि देते हैं । तुम शोभन कर्म द्वारा हमारा पालन करो ।

१७ हे कवि देवगण, तुम्हारा वह प्रभूत कर्म मनोहर है, जिससे तुम लोग इन्द्रलोकमें देवत्व प्राप्त करते हो । हे बहुजनाहृत इन्द्र, तुम प्रियतम अशुओंके साथ सख्यभावापन्न हो । तुम हमारी इस स्तुतिको, धनादिलाभके लिये, स्वीकृत करो ।

१८ सर्वदा गमनशील सूर्य देवमाता अदिति, यज्ञार्ह देवगण और अर्हिसित कर्म करनेवाले वरुण हम लोगोंकी रक्षा करें । वे हमारे मार्गसे पुत्रोंके अहित कर्मको अथवा पतनकारक कर्मको दूर करें । हमारे गृहको वे पशु आदिसे तथा अपत्यसे युक्त करें ।

१९ अग्निहोत्रके लिये बहु देशोंमें प्रसूत या विहित और देवताओंके दूत अग्नि हैं । कर्म-साधनकी विगुणतासे हम सापराध हैं । हमें अग्नि सर्वत्र निरपराध कहें । छावापृथिवी, जलसमूह, सूर्य और नक्षत्रों द्वारा पूर्ण विशाल अन्तरिक्ष हमारी स्तुति सुनें ।

शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवचेमास इडया मदन्तः ।

आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥ २० ॥

सदासुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः संपिपृक्त ।

भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्रायो अश्यां सदनं पुरुचोः ॥२१॥

स्वदस्व हव्या समिधो दिदीह्यस्मद्रचक्सं मिमोहि श्रवांसि ।

विश्वाँ अग्ने पृतसु ताञ्जेषि शन्नून्हा विश्वा सुमना दीदिही नः ॥२२॥



२० अभिमत-फल-सेचक मरुद्गण, अर्थियोंकी कामनाको पूर्ण करनेवाले निश्चल पर्वत हविरन्नसे प्रसन्न होकर हमारी स्तुति सुनें। अदिति अपने पुत्रोंके साथ हमारी स्तुति सुनें। मरुद्गण हमें कल्याण-कर सुख दें।

२१ हे अग्नि, हमारा मार्ग सदा सुखसे जाने योग्य तथा अन्नवान् हो। हे देवो, मधुर जलसे ओषधियोंको संसिक्त करो। हे अग्नि, तुमसे मैत्री प्राप्त करनेपर हमारा अन्न विनष्ट नहीं हो। हम जिससे अन्नके और प्रभूत अन्नके स्थानको प्राप्त करें।

२२ हे अग्नि, हवन-योग्य हविका आस्थादन करो, हमारे अन्नको भली भाँति प्रकाशित करो और उन अन्नोंको हमारे अभिमुख करो। तुम संग्राममें वाधा डालनेवाले सब शत्रुओंको जीतो और प्रफुल्लित मनवाले होकर तुम हमारे सम्पूर्ण दिवसोंको प्रकाशित करो।



५५ सूक्त

१ के वैश्वदेव, २-६ तकके अग्नि, १० के अहोरात्र, ११-१४ तकके द्यावापृथिवी, १५ के धुनिशा, १६ के दिक्, १७-२२ तकके इन्द्र देवता हैं । प्रजापति ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

उषसः पूर्वा अधयद्द्व्यूपुर्महद्विजज्ञे अक्षरं पदे गोः ।

व्रता देवानामुष नु प्रभूषन् महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१॥

मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।

पुराण्योः सन्ननोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २ ॥

विमे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।

समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥३॥

समनो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु ।

अन्या वत्सं भरति ज्ञेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥४॥

१ उदयकालसे प्राचीन उषा जब दग्ध होती है, तब अविनाशी अग्निदेव समुद्रसे या आकाशमें उदित होते हैं । सूर्यके उदित होनेपर अग्निहोत्रादिके लिये तत्पर यजमान कर्म करते हैं और शीघ्र ही देवताओंके समीप उपस्थित होते हैं । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

२ हे अग्नि, इस समय देवता हमें अच्छी तरहसे मत हिंसित करें । देव-पदवीका प्राप्त पुरातन पुरुष (पितर) हमें मत हिंसित करें । यज्ञके प्रज्ञापक, पुरातन द्यावापृथिवीके मध्यमें उदित सूर्य हमें मत हिंसित करें । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

३ हे अग्नि, हमारी बहुविध अमिलापाएँ विविध दिशाओं गमन करती हैं । अग्निष्टोत्रादि यज्ञको लक्ष्य कर हम पुरातन स्तोत्रको दीप्त करते हैं । यज्ञार्थ अग्निके दीप्त होनेपर हम सत्य बोलेंगे । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

४ सर्वसाधारणके राजा दीप्यमान अग्नि (या सोम) बहुत देशोंमें अग्निहोत्रके लिये स्थापित होते हैं । वे वेदीके ऊपर शयन करते हैं । अरणि-काष्ठ या चर्मसके ऊपर विभक्त होते हैं । द्यावापृथिवी इनके माता-पिता हैं, उनमें अन्य अर्थात् धुलोक इन्हें वृष्टि आदिके द्वारा पृथक् करते हैं और अन्य माता वसुधा इन्हें केवल निवास देती हैं । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

आक्षित् पूर्वास्वपरा अनूरुत्सद्योजातासु तरुणीध्वन्तः ।
 अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥५॥
 शयुः परस्तादध नु द्विमाता बन्धनश्चरति वत्स एकः ।
 मिलस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥६॥
 द्विमाता होता विदथेषु सम्राडन्वयं चरति बुधः ।
 प्र रणयानि रणयवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥७॥
 शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत् ।
 अन्तर्मतिश्चरति निष्पिपधं गोर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥८॥
 नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महोश्चरति रोचनेन ।
 वपूंषि विभ्रदभि नो विचष्टे महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥९॥

५ जाँण आँपधियोंँ वर्तमान तथा नव्य आँपधियोंँ गुणानुरूपसे स्थित अग्नि या सूर्य लघोजात, पृथिवीत आँपधियोंँक आँपधन्तरमें वर्तमान हैं । आँपधियोंँ चिना किसी पुरुषके रेतः-संयोगसे अग्निके द्वारा गर्भवती होकर फल-पुष्प आदिको उत्पन्न करती हैं । यह देवोंका पेश्वर है । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

६ दानों लोकोँके निर्माता अथवा द्यावापृथिवीरूप माता-पितावाले सूर्य पश्चिम दिशामें, अस्त-वेलामें, शयन करते हैं; किन्तु उदय-वेलामें वे ही द्यावापृथिवीके पुत्र सूर्य अप्रतिबद्ध-गति होकर आकाशमें अत्रेला चलते हैं । यह सकल कर्म मित्र और वरुणाका है । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

७ दानों लोकोँके निर्माता, यदाके हाता तथा यज्ञमें भली भाँति राजमान अग्नि आकाशमें सूर्य रूपसे विचरण करते हैं । वे सब कर्मोंके मूलभूत होकर भूमिमें निवास करते हैं । रमणीय वचनवाले स्तोता, अर्द्धी तरहमें, रमणीय स्तोत्रोंको करते हैं । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

८ युद्ध करनेवाले शूर व्यक्तिके अभिमुख आनेवाली शत्रु-सेना जैसे पराङ्मुख दीख पड़ती है, वैसे ही समीपमें वर्तमान अग्निके अभिमुख आनेवाला भूतजात पराङ्मुख हाता दीख पड़ता है । सयके द्वारा दायमान अग्नि जलको दिसित करनेवाली दीप्तिको मध्यमें धारण करते हैं । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

९ पालक और देवोंके दूत अग्नि आँपधियोंँके मध्यमें अत्यन्त व्याप्त होकर वर्तमान हैं । वे सूर्यके साथ द्यावापृथिवीके मध्यमें चलते हैं । जानविद्य रूपोंको धारण करते हुए वे हम लोगोंको विशेष अनुग्रह-दृष्टिसे देखें । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

विश्वगूर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः ।
 अग्निष्ठा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१॥
 नाना चक्राते यस्या वपूंषि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत् ।
 श्यावी च यदरुपी च स्वसारौ महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥११॥
 माता च यत्र दुहिता च धेनू सवर्दुधे धापयते समीची ।
 ऋतस्य ते सदसीडे अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१२॥
 अन्यस्था वत्सं रिहती सिमाय कया भुवा निदधे धेनुरुधः ।
 ऋतस्य सा पयसां पिन्वतेला महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१३॥
 पया वस्ते पुरूरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
 ऋतस्य सन्न विचरामि विद्वान् महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१४॥

१० व्याप्त, सबके रक्षक, प्रियतम और क्षयरहित तेजको धारण करनेवाले अग्नि परम स्थानकी रक्षा करते हैं अथवा लोकभारक जलको धारण करते हुए जलके स्थान अन्तरिक्षकी रक्षा करते हैं। अग्नि उन सम्पूर्ण भूतजातको जानते हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

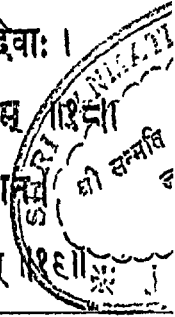
११ मिथुनभूत अहोरात्र (शुक्ल-कृष्ण आदि) नानाविध रूप धारण करते हैं। कृष्णवर्णा तथा शुक्लवर्णा जो दोनों भगिनियाँ हैं, उनके मध्यमें एक अर्जुनवर्णा या दीप्तिशालिनी है और दूसरी कृष्णवर्णा है। देवताओंका महान् बल एक ही है।

१२ माता पृथिवी और दुहिता बुलोकस्वरूप दोनों क्षीरदायिनी धेनु जिस अन्तरिक्षमें परस्पर सङ्गत होकर अपने रसको अन्योन्य पिलाती हैं, जलके स्थानभूत उस अन्तरिक्षके मध्यमें स्थित धावा-पृथिवीकी हम स्तुति करते हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

१३ बुलोक पृथिवीके पुत्र अग्निको उदकधारारूप जिह्वासं चाटते हैं और भेघ द्वारा ध्वनि करते हैं। बुलूपा धेनु पृथिवीको जलवर्जित करके अपने ऊधः-प्रदेशको पुष्ट करती है। वह जलवर्जित पृथिवी सत्यभूत आदित्यके जलसे, वर्षाकालमें, सिक्त हांती है। देवताओंका महान् बल एक ही है।

१४ पृथ्वी नानाविध शरीरको आच्छादित करती है। उन्नत होकर वह तीनों लोकोंको व्याप्त करनेवाले अथवा डेढ़ वर्षकी अवस्थावाले सूर्यको चाटती हुई अवस्थान करती है। सत्यभूत आदित्यके स्थानको जानते हुए हम उनकी परिचर्या करते हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

पदे इव निहिते दरुमे अन्तस्तयोरन्यद्गुह्यमाविरन्यत् ।
 सध्रीचीना पथ्या सा विषूची महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१५॥
 आ धेनवो धुनयन्तामशिष्वीः सवर्दुघाः शश्या अप्रदुग्धाः ।
 नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१६॥
 यदग्यासु वृपभो रोरवीति सो अन्यस्मिन् यूथे निदधाति रेतः ।
 स हि क्षपावान्त्सभगः स राजा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१७॥
 वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः ।
 पोह्लायुक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१८॥
 देवस्त्वष्टासविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान् ॥१९॥
 इमा च विश्वा भुवनाऽन्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२०॥



१५ पदद्वयकी तरह दर्शनीय अहोरात्र द्वावापृथिवीके मध्यमें स्थापित हैं । उनके मध्यमें एक गूढ़ और अन्य आविर्भूत हैं । अहोरात्रका परस्पर मिलन-पथ (काल) पुण्यकारी और अपुण्यकारी दोनोंको ही प्राप्त होता है । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

१६ पृथ्वि द्वारा सबकी प्रीति, शिशुरहिता, आकाशमें वर्तमाना, अक्षीणरसा, क्षीरप्रसविणी युवती और सर्वदा नूतनस्वरूपा दिशाएँ (या मेघ) कल्पित हों । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

१७ जलके वर्षक पजन्यरूप इन्द्र अन्य दिशाओंमें मेघ द्वारा प्रभूत शब्द करते हैं । वे अन्य दिशा-समूहमें वारिवर्षण करते हैं । वे जल या शत्रुके क्षेपनवान् हैं सबके द्वारा भजनीय हैं और सबके राज हैं । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

१८ हे जना, शूर इन्द्रके शोभन अश्वोंका हम शीघ्र ही प्रभूत वर्णन करते हैं । देवता भी इन्द्रको अश्वोंको जानते हैं । दो-दो मासोंको मिलानेपर ऋतुएँ होती हैं; फिर हेमन्त और शिशिरको मिला देनेपर पाँच ही ऋतुएँ होती हैं । ये ही इन्द्रके अश्व हैं । ये कालात्मक इन्द्रका वहन करती हैं । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

१९ अन्तर्यामी होनेके कारण सबके प्रेरक, नानाविध रूपविशिष्ट त्वष्टृदेव बहुत प्रकारसे प्रजाओंको उत्पन्न करते हैं और उनका पोषण करते हैं । ये सम्पूर्ण भुवन त्वष्टाके हैं । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

मही समैरच्चन्वा समीची उभे ते अरय वसुना न्यूष्टे ।
 शृणवे वीरो विन्दमानो वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२०॥
 इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उपत्तेति हितमित्रो न राजा ।
 पुरः सदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२१॥
 निष्पिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी विभर्ति ।
 सखायस्ते वामभाजः स्याम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२२॥

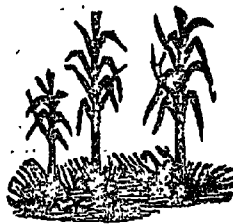


२० इन्द्रने महती और परस्पर सङ्गत धावापृथिवीको पशु-पक्षियोंसे युक्त किया है। वह धावा-पृथिवी इन्द्रके तेजसे अतिशय व्याप्त है। समर्थ इन्द्र शत्रुओंको पराजित कर उनके धनको ग्रहण करनेमें विख्यात हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

२१ विश्वधाता और हम लोगोंके राजा इन्द्र इस पृथिवी तथा अन्तरिक्षमें, हितकारी मित्रकी तरह निवास करते हैं। वीर मरुद्गण संग्रामके लिये, इन्द्रके आगे जाते हैं। वे इन्द्रके गृहमें निवास करते हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

२२ हे पर्जन्यात्मक इन्द्र, ओषधियोंने तुमसे सिद्धि पायी है, जल तुमसे ही निःसृत हुआ है और पृथिवी तुम्हारे भोगके लिये धनका धारण करती है। हम लोग तुम्हारे सखा हैं। हम लोग तुम्हारे धनका भागी हो सकें। देवताओंका महान् बल एक ही है।

तृतीय अध्याय समाप्त



ऋतुर्थ अध्याय

५६ सूक्त

विदग्देवगण देवता । प्रजापति ऋषि । लिट्पुण्ड्र

न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि ।

न रोदसी अद्रुहा वेश्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ॥१॥

पद्भारौ एको अचरन्विभर्त्युतं वर्षिष्टमुपगान आगुः ।

तिस्त्रो महीरुपरारतस्थुरत्वा गुहा द्वे निहिते दर्शका ॥२॥

त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत्तद्भुधा पुरुष प्रजावान् ।

त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥३॥

अभीक आसां पदवीरवीश्यादित्यानामह्वे चारु नाम ।

आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग् व्रजन्तीः परिपीमवृञ्जन् ॥४॥

१ मायाविगण देवोंकी ऋष्टिके अनन्तर होनेवाले, स्थिर, प्रसिद्ध, कर्मोंको हिंसित नहीं करें, विद्वान् लोग भी नहीं करें । द्रौण-रहित द्यावापृथिवी प्रजागणके साथ उन्हें विघ्नयुक्त नहीं करें अचल पर्वतोंको काँट अचल नहीं कर सकता है ।

२ एक स्थायी संवत्सर वसन्त आदि छः ऋतुओंको धारण करता है । सत्यभूत और प्रसूद आदित्यात्मक संवत्सरको रथियाँ प्राप्त करती हैं । चञ्चल लोकत्रय ऊपर-ऊपर अवस्थित हैं । स्वर्ग और अन्तरिक्ष गुहामें निहित हैं; एक पृथिवी ही दीख पड़ती है ।

३ प्रीपम, वर्षा और हेमन्त नामक तीन उरघाले, जलवर्षक, नानारूप, तीव्र ऊध (वसन्त-शम्भु, हेमन्त-विजिष्ठ, चतुष्पकार, प्रजावान्, उष्ण, वर्षा और शीतात्मक तीन गुणवाले तथा महत्त्ववान् संवत्सर आते हैं । ऐश्वर्यसमर्थ संवत्सर, सबके लिये, उदक धारण करते हैं ।

४ संवत्सर इन सकल ओषधियोंके समीप उनके पदस्वरूप जागरित हुआ है । मैं आदित्यों (चित्रादि मातृओं)का मनोहर नाम उच्चारण करता हूँ । पुतिमान् और स्वतन्त्र पथ द्वारा जानेवाला जल-समूह इस संवत्सरको चार महीनोंतक वृष्टि द्वारा प्रीत करता है और आ महीनोंतक छोड़ देता है ।

त्रीषधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीनामुत विमाता विदथेषु सम्राट् ।
 ऋतावरीर्योषणा स्तिलो अप्यास्त्रिरादिवो विदथे पत्यमानाः ॥५॥
 त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः ।
 त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणो सातये धाः ॥६॥
 त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
 अपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वीरत्नं भिद्यन्त सवितुः सत्राय ॥७॥
 त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः ।
 ऋतावान इषिरा दूडभासस्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ॥८॥

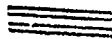


५ हे नदियो, त्रिगुणित त्रिसंख्यक स्थान देवोंका निवासस्थान हैं। तीनों लोकोंके निर्माता संवत्सर या सूर्य यज्ञके सम्राट् हैं। जलवती, अन्तरिक्षचारिणी इला, सरस्वती और भारती नामक तीन योषित् यज्ञके तीनों सवनोंमें आगमन करें।

६ हे सवके प्रेरक आदित्य, धुलोकसे आकर प्रतिदिन तीन बार रमणीय धन हम लोगोंको प्रदान करो। हे हम लोगोंके रक्षक आदित्य, हम लोगोंको दिनके मध्यमें तीन बार अर्थात् तीनों सवनोंमें पशु, कनक, रत्न और गोधन प्रदान करो। हे धिषणा, हम लोगोंको जिससे धन लाभ हो, वैधा करो।

७ सविता दिनमें तीन बार हम लोगोंको धन प्रदान करें। कल्याणपाणि, राजा, मित्रावरुण, धावापृथिवी और अन्तरिक्ष आदि देवता सविता देवकी चदान्यतासे अपेक्षित अर्थकी याचना करें।

८ विनाश-रहित और श्रुतिमान् तीन उत्तम स्थान हैं। इन तीनों स्थानोंमें कालात्मक संवत्सरके अग्नि, वायु और सूर्य नामक पुत्र शोभा पाते हैं। यज्ञवान्, शीघ्रगामी और अति-रस्कृत देवगण, दिनमें तीन बार, हमारे यज्ञमें आगमन करें।



५७ सूक्त

विश्वदेवगणं देवता । विश्वायिनं ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्ती प्रयुतामगोपाम् ।
 सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासेरिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥१॥
 इन्द्रः सुपूपा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुहे ।
 विष्ट्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्रवोत्र वसवः सुस्रभश्याम् ॥२॥
 या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
 अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति विश्रतं वषूपि ॥३॥
 अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्रावणो युजानो अध्वरे मनीषा ।
 इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥४॥
 या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेपूच्यत उरूची ।
 तये हविश्वौ अवसं यजत्रानासादय पायया चा मधूनि ॥५॥

१ विवेकवान् इन्द्र मेरी देवता-विषयक स्तुतिकां, इतस्ततः विहारिणी, एकाकिनी और रत्नक-विर्दाना धेनुकी तरह, प्रवगत करें । जिस स्तुतिरूपा धेनुसे तत्क्षण बहुत अपेक्षित फल दांहन किया जाता है, इन्द्र और अग्नि उस धेनुकी प्रशंसा करें ।

२ इन्द्र, पूषा एवम् अभीष्टवर्षी कल्याणपाणि मित्राचरुण प्रीत हांकर सम्प्रति अन्तरिक्षशायी मेघका अन्तरिक्षसे दांहन करते हैं । हे निवास-प्रद विश्वदेवगण, तुम सब इस वेदिपर विहार करो, जिससे हम लोगोंको तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख प्राप्त हो ।

३ जो ओपधियाँ जलवर्षक इन्द्रकी शक्तिकी वाञ्छा करती हैं, वे ओपधियाँ नम्र होकर इन्द्रकी सर्वाधान-शक्तिकां जानती हैं । फलाभिलाषियों, सवकी प्रीणयित्री ओपधियाँ नाना रूप-धारी घ्रीष्टि, यव, नीवारदि शस्यस्वरूप पुत्रके अभिमुख विचरण करती हैं ।

४ यक्ष्मं प्रस्तर भ्रातृण करंके हम सुन्दर रूप-विशिष्ट द्यावापृथिवीकी स्तुति-लक्षण वचन द्वारा स्तुति करते हैं । हे अग्नि, तुम्हारी प्रतिशय वरगोय, कमनीय और पूज्य दीप्तियाँ मनुष्योंके लिये ऊर्ध्वमुख होती हैं ।

५ हे अग्नि, तुम्हारी जो मधुमती, प्रज्ञाशालिनी ज्वाला अत्यन्त व्याप्तिविशिष्ट होकर देवोंके मध्यमं ग्राहानार्थ प्ररित होती है, उस जिह्वासे यजनीय देवोंको, हमारी रक्षाके लिये, इस कर्मसे उपवेक्षित कराओ । उन देवोंको हर्षकर सामपान कराओ ।

या ते अग्ने पर्वतस्येव धारा सश्नन्ती पीपयद्देव चित्रा ।
तामस्मभ्यं प्रमर्ति जातवेदो वसो रास्व सुमर्ति विश्वजन्याम् ॥६॥

—०—

५८ सूक्त

अश्विद्वय देवता । विश्वामित ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥१॥
सुयुग्रहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।
जरेथामस्मद्विपणोर्मनीषां युवोरवश्चकृमायातमर्वाक् ॥२॥
सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दत्ताविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्गवां प्रत्यवर्ति गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥३॥

६ हे इतिमाव् अग्नि, नानारूपा और हम लोगोंको ढोड़कर अन्यत्र नहीं जानेवाली तुम्हारी जो अनुग्रह बुद्धि है, वह हम लोगोंको अपेक्षित फल-प्रदान द्वारा वर्द्धित करे, जैसे मेघकी धारा वनस्पतियोंको वर्द्धित करती है। हे निवासप्रद जातवेदा, हम लोगोंको उसी अनुग्रह बुद्धिका प्रदान करो और सर्वजन-हितकारिणी शोभन बुद्धिको दो।

१ प्रीणयित्री उषा पुरातन अग्नि के लिये कमनीय दुग्ध दोहन करती है। उषापुत्र सूर्य उसके मध्यमें विचरण करते हैं। शुभ्रदीप्ति दिवस सवके प्रकाशक सूर्यका चहन करता है। उसके पूर्व ही अश्विद्वयके स्तोता जागरित होते हैं।

२ हे अश्विद्वय, उत्तम रूपसे रथमें युक्त अश्वद्वय, सत्यरूप रथ द्वारा, तुम दोनोंको यज्ञमें ले आनेके लिये चहन करते हैं। यज्ञ तुम्हारे लिये उन्मुख होते हैं, जैसे माता-पिताको लक्ष्य कर पुत्र जाते हैं। हम लोगोंके निकटसे पणियोंकी आसुरी बुद्धिको, विशेष रूपसे, नष्ट करो। हम लोग तुम्हारे लिये हवि प्रस्तुत करते हैं। तुम दोनों आगमन करो।

३ हे अश्विद्वय, सुन्दर चक्रविशिष्ट रथपर आरोहण करके और उत्तम रूपसे योजित अश्वों द्वारा वाहित होकर तुम दोनों स्तुतिकारियोंके इस श्लोकका श्रवण करो। हे अश्विद्वय, पुरातन मेधाविपण कथा नहीं बोलते हैं, जो हमारी वृत्तिहानिके विरुद्ध तुम दोनों गमन करते हो।

आ मन्येथामागतं कञ्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते ।

इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मिलासो न ददुरुतो अथे ॥४॥

तिरः पुरुचिदश्विना रजांस्यांगूषो वां मधवाना जनेषु ॥५॥

एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्त्राविमे वां निधयो मधूनम् ॥६॥

पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नुव्यभिः ॥७॥

पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥८॥

अश्विना वायुना युवं सुदत्ता नियुद्धिश्च सजोपसा युवाना ।

नासत्या तिरो अह्न्यं जुपाणा सोमं पिबतमस्त्रिधा सुदानू ॥९॥

अश्विना परिवाभिपः पुरुचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृधाः ।

रथो हवामृतजा अद्रिजूतः परि धावापृथिवी यान्ति सद्यः ॥१०॥

४ हे अश्विद्वय, तुम दोनों हमारी स्तुतिको प्रवगत करो और अश्वोंके साथ यज्ञमें प्रागमन करो। सद्य स्तोता स्तुतिलक्षण वचनोंसे तुम दोनोंका आह्वान करते हैं। वे मित्रकी तरह दुग्धमिश्रित और हर्षकर हवि तुम दोनोंको प्रदान करते हैं। सूर्य उपाके आगे उदित होते हैं। इस्तानिये प्रागमन करो।

५ हे अश्विद्वय, नाना देशोंका अपने तेजसे तिरस्कृत करके तुम दोनों देवयान पथ द्वारा इस स्थलमें प्रागमन करो। हे धनवान् अश्विद्वय, तुम दोनोंके लिये स्तोताओंका स्तोत्र उद्घोषित होता है। हे शत्रुओंके क्षयकारक, तुम दोनोंके लिये ये मदकारक सोमके पात्रविशेष सञ्चित हैं।

६ हे अश्विद्वय, तुम दोनोंका पुरातन सख्य वाञ्छनीय है और कल्याणकर है। हे नेत्रद्वय, तुम दोनोंका धन जह्नुकुलजामें है। तुम दोनोंके सुखकर सख्यका वारम्बार प्राप्त करके हम लोग मित्रभूत (तुम्हारे समान) होते हैं। हर्षकारक सोमके द्वारा तुम दोनोंके साथ, हम शोभ ही हृष्ट होते हैं।

७ शोभन सामर्थ्यसे युक्त, नित्य तक्षण, असत्परहित पवम् शोभन फलके दाता हे अश्विद्वय, घाघु और निगुद्गणके साथ मिलकर अक्षीण और सोमपायी तम दोनों दिवसके शेषमें सोम पान करो।

८ हे अश्विद्वय, प्रचुर हवि तुम लोगोंके निकट गमन करती है। दोपरहित और कर्म कुशल स्तोता लोग स्तुतिलक्षण वचनों द्वारा तुम दोनोंको परिचर्या करते हैं। स्तोताओं द्वारा प्राकृत, जलप्रद रथ धावापृथिवीके मध्यमें सद्यः गमन करती है। 13827

अश्विना मधुपुत्तमो युवाकुः सोमस्तु पातमागतं दुरोगे ।
रथो हवां भूरिवर्षः करिकृत् सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥६॥

५६ सूक्त

मित्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्दः ।

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीसुतं ब्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥१॥
प्र स मित्रमर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिञ्जति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते स्वोतो नैनमंहो अश्रोत्यन्तितो न दूरात् ॥२॥
अनमीवास इड्या मदन्तो मितज्ञां वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥३॥

६ हे अश्विद्वय, जो सोम अत्यन्त मधुर रससे मिश्रित हुआ है, उसका पान करो। तुम लोगोंका धनदानकारी रथ सोमाभिषव करनेवाले यजमानके संस्कृत गृहमें चारभ्यार आगमन करता है।

१ स्तुत होनेपर मित्र देवता सकल लोकको कृष्यादि कार्यमें प्रवर्तित करते हैं। वृष्टि द्वारा अन्न और यज्ञको उत्पन्न करते हुए मित्र देवता पृथ्वी और दुलोक दोनोंका धारण करते हैं। कर्मवान् मनुष्योंको, चारो तरफसे, मित्र देवता अनुग्रह दृष्टिसे देखते हैं। मित्रके उद्देशसे घृत-विशिष्ट हव्य प्रदान करो।

२ हे आदित्य, मित्र, यज्ञयुक्त होकर जो मनुष्य तुम्हें हविरन्न प्रदान करता है, वह अन्नवान् हो। तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर वह मनुष्य किसीसे भी विनष्ट और अभिमूत नहीं होता है। तुम्हें जो हविः देता है, उस पुरुषको दूर अथवा निकटसे पाप छू नहीं सकता है।

३ हे मित्र, रोग-वर्जित होकर, अन्नलाभसे हृष्ट होकर और पृथिवीके विस्तीर्ण प्रदेशमें मितज्ञानु होकर हम सर्वत्रगामी आदित्यके व्रत (कर्म) के निकट अवस्थिति करते हैं। हम लोगोंके ऊपर आदित्य अनुग्रह-बुद्धि करें।

अयं मित्रो नमस्यः सुशेत्रो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।

तरय वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥४॥

महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यात यजनो गृणते सुशेवः ।

तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविराजुहोत ॥५॥

मित्रस्य चर्पणीधृतो वो देवस्य सानसि । युञ्जं चिन्नश्रवस्तमं ॥६॥

अभि यो महिना दिवं मितो वभूव सप्रथाः ।

अभिश्चवोभिः पृथिवम् ॥७॥

मित्राय पञ्च ये मिरेजना अभिष्टिशवसे । सदेवान्विश्रान्विभर्ति ॥८॥

मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तवर्हिषे । इषडष्टवता अकः ॥९॥



४ नमस्कारयोग्य, सुन्दर मुखविशिष्ट, स्वामी, अत्यन्त बलविशिष्ट और सबके विधाता यह सूर्य प्रार्थुभूत हुए हैं। ये यथाहं हैं। इनके अनुग्रह और कल्याणकार वात्सल्यको हम यजमान प्राप्त कर सकें।

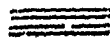
५ जो आदिश्व महान् हैं, जो सकल लोकके प्रवर्तक हैं, नमस्कार द्वारा उनकी उपासना करना उचित है। वे स्तुति करनेवालोंके प्रति प्रसन्नमुख होते हैं। स्तुतियोग्य मित्रके लिये प्रीतिकर हव्य अग्निमें अर्पित करो।

६ वृष्टि द्वारा मनुष्योंके धारक मित्रदेवका अन्न और सबके द्वारा भंजनीय धन अतिशय कीर्तियुक्त है।

७ जिस मित्रदेवने अपनी महिमासे द्युलोकको अभिमूत किया है, उसीने कीर्तियुक्त होकर पृथिवीको प्रचुर अन्नविशिष्ट किया है।

८ निषादको लेकर पाँचों चर्गा शत्रुजयक्षम और बलविशिष्ट मित्रके उद्देशसे हव्य प्रदान करते हैं। मित्र अपने स्वरूपसे समस्त देवगणको धारण करते हैं।

९ देवों और मनुष्योंके मध्यमें जो व्यक्ति कुशच्छेदन करता है, उसे मित्रदेव कल्याणकर अन्न प्रदान करते हैं।



६० सूक्त

ऋभुगण देवता । विश्वामित्र ऋषि । जगती छन्द ।

इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभितानि वेदसा ।

याभिर्सायाभिः प्रतिजूतिवर्षसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥१॥

याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।

येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥२॥

इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।

सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्टवी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥३॥

इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा सह श्रिया ।

न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥४॥

१ हे ऋभुगण, तुम लोगोंके कर्मको सब कोई जानता है। हे मनुष्यगण, तुम सब सुधन्वा-
के पुत्र हो। तुम लोग जिस सकल कर्म द्वारा शत्रुपरामवोपयुक्त और तेजोविशिष्ट होकर यज्ञीय
भागको प्राप्त करते हो, कामना-कालमें, उस सकल कर्मको तुम लोग जान जाते हो।

२ हे ऋभुगण, जिस शक्तिके द्वारा तुम लोगोंने चमसको विभक्त किया था, जिस प्रक्ष-
वलसे गो-शरीरमें चर्मयोजना की थी और जिस मनीषाके द्वारा इन्द्रके अश्वद्वयका निर्माण किया
था, उन्हीं सकल कर्मों द्वारा तुम लोगोंने यज्ञभागार्हत्व देवत्व प्राप्त किया है।

३ मनुष्यपुत्र ऋभुगणने यागादि कर्म करके इन्द्रके सखित्वको प्राप्त किया है। पूर्वमें मरण-
धर्मा होकर भी वे इन्द्रके सखित्वसे प्राण धारण करते हैं। सुधन्वके पुण्य-कार्यकारी पुत्रगण
कर्मवत् और यज्ञादि-बलसे व्याप्त होकर अमृतत्वको प्राप्त हुए हैं।

४ हे ऋभुगण, तुम लोग इन्द्रके साथ एक रथपर आरोहण करके सोमामिषके स्थानमें
गमन करो। पीछे मनुष्योंकी स्तुतियोंको ग्रहण करो। हे अमृत-फलवाहक सुधन्वाके पुत्रो, तुम्हारे
शोभन कर्मोंकी इयत्ता कोई नहीं कर सकता है। हे ऋभुगण, तुम्हारी सामर्थ्यकी इयत्ता भी कोई नहीं
कर सकता है।

इन्द्र ऋभुर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममावृषस्वा गभस्स्योः ।
 धियेपितो मघवन्दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वानृभिः ॥५॥
 इन्द्र ऋभुमान् वाजवान् मत्स्वेह नोस्मिन्सवने शच्या पुरुष्टुत ।
 इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिने व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ॥६॥
 इन्द्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुपयाहि यज्ञियम् ।
 शतं केतेभिरिपिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥७॥

६१ सूक्त

उपा देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

उपो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुपस्व गृणतो मघोनि ।
 पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनुव्रतं चरसि विश्ववारे ॥१॥

५ हे इन्द्र, तुम वाज (अथवा ऋभुओंके भ्राता)-विशिष्ट हो। ऋभुओंके साथ तुम, अन्ध्री नरहस्से, जल द्वारा सिक्त और अभिप्लुत सोमको दोनों हाथोंसे ग्रहण करके पान् करो। हे मघवन्, तुम स्तुति द्वारा प्रेरित होकर यजमानके गृहमें, सुधन्वाके पुत्रोंके साथ, सोमपानसे हृष्ट होते हो।

६ हे बहुस्तुत इन्द्र, ऋभु और वाजसे युक्त होकर तथा इन्द्राणीके साथ होकर हमारे इस तृतीय सवनमें आनन्दित होओ। हे इन्द्र, तीनों सवनोंमें सोमपानके लिये ये दिन तुम्हारे लिये नियत हुए हैं। किन्तु देवोंके व्रत और मनुष्योंके कर्मोंके साथ सकल दिन तुम्हारे लिये नियत हुए हैं।

७ हे इन्द्र, तुम स्तोत्राओंके प्रश्नोंका समापन करते हुए वाजयुक्त ऋभुओंके साथ, इस यज्ञमें स्तोत्राओंके स्तोत्रोंके अभिमुख आगमन करो। मरुद्गण भी शतसंख्यक गमनकुशल अश्वोंके साथ यजमानके सहस्र प्रकारसे प्रणीत अध्वरके अभिमुख आगमन करें।

१ हे अन्नघती तथा धनघती उपा, प्रकृष्ट पानघती होकर तुम स्तोत्र करनेवाले स्तोत्राके स्तोत्रका प्रदण करो। हे सवके द्वारा चरणीया, पुरातनी, युवतीकी तरह शोभमाना और बहुस्तोत्रघती उपा, तुम यज्ञकर्मको लक्ष्य कर आगमन करो।

उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनुता ईरयन्ती ।

आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२॥

उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।

समानमर्थं चरणीयमाना चक्रसिव नव्यस्याववृत्स्व ॥३॥

अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्पुषा याति स्वसरस्य पत्नी ।

स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्तादिवः पप्रथ आपृथिव्याः ॥४॥

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।

ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत् प्र रोचना रुरुचे रावसन्टक् ॥५॥

ऋतावरो दिवो अर्कै रबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।

आयतीमश्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविष्णं भिन्नमाणः ॥६॥

२ हे मरणधर्म-रहिता, सुवर्णमय रथवाली उषा देवी, तुम प्रिय सत्यरूप बचनका उच्चारण करनेवाली हो । तुम सूर्य-किरणके सन्धन्धसे शोभमाना होओ । प्रभूत बलयुक्त जो अरुण-वर्ण अश्व हैं, वे सुखपूर्वक रथमें योजित किये जा सकते हैं । वे तुम्हें आवहन करें ।

३ हे उषा देवी, तुम निखिल भूतजातके अभिमुख आगमनशीला, मरणधर्म-रहिता और सूर्यकी केतु-स्वरूपा हो । तुम आकाशमें उन्नत होकर रहती हो । हे नवतरा उषा, तुम एक मार्गमें विचरण करनेकी इच्छा करती हुई, आकाशमें चलनेवाले सूर्यके रथाङ्गकी तरह, पुनः-पुनः उसी मार्गमें अवृत्त होओ ।

४ जो धनवती उषा, चन्द्रकी तरह विस्तीर्ण अन्धकारको क्षयित करती हुई सूर्यकी पत्नी होकर गमन करती है, वही सौभाग्यवती और सत्कार्यशालिनी उषा तुलोक और पृथ्वीके अवसानसे प्रकाशित होती है ।

५ हे स्तोताओ, तुम लोगोंके अभिमुख उषा देवी शोभमाना होती है । तुम लोग नमस्कार द्वारा उसकी शोभन स्तुति करो । स्तुतिको धारण करनेवाली उषा आकाशमें ऊर्ध्वा-भिमुख तेजको आश्रित करती है । रोचनशीला और रमणीयदर्शना उषा अतिशय दीप्त होती है ।

६ जो उषा सत्यवती है, उसे सब कोई तुलोकके तेजःप्रभावसे जानते हैं । धनवती उषा नानाविध रूपसे युक्त होकर धावापृथिवीको व्याप्त करके रहती है । हे अग्नि, तुम्हारे अभिमुख आनेवाली, भासमाना उषा देवीसे हविकी याचना करनेवाले तुम रमणीय धनको प्राप्त करते हो ।

ऋतस्य वृध उपसामिषण्यन् वृषा मही रोदसी आविवेश ।

मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं विदधे पुरुत्रा ॥७॥



६३ सूक्त

१-३ तकके इन्द्रावरुण, ४-६ तकके बृहस्पति, ७-९ तकके पूषा, १०-१२ तकके सविता, १३-१५ तकके सोम, १६-१८ तकके मित्रावरुण देवता । विश्वामित्र ऋषि, किसी-किसीके मतसे अन्तिम तीन ऋचाके जमदग्नि ऋषि । १-३ तक त्रिष्टुप् और शेष गायत्री छन्द ।

इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन् ।

क त्यादिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मासिनं भरथः सखिभ्यः ॥१॥

अयमुवां पुरुत्तमो रयीयञ्छ्वत्तममवसे जोहवीति ।

सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हव मे ॥२॥

अस्मेतदिन्द्रावरुणा वसुष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः ।

अस्मान्वरुत्रीः शरणैरवन्त्रस्मान् होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥३॥

७ वृष्टि द्वारा जलके प्रेरक आदित्य सत्यभूत दिवसके मूलमें उपाका प्रेरण करके, विस्तीर्ण घावापृथिवीके मध्यमें प्रवेश करते हैं । तदनन्तर महती उपा मित्र और वरुणकी प्रभास्वरूपा होकर, सुवर्णकी तरह, अपनी प्रभाको अनेक देशोंमें प्रसारित करती है ।

१ हे मित्रावरुण, शत्रुओं द्वारा अभिमन्यमान; अतएव भ्रमणशीला तुम्हारी ये प्रजाएँ जिससे तरुण वयस्क शत्रुओं द्वारा हिंसित नहीं हों । तुम लोगोंका तादृश यश और कहाँ है, जिससे तुम लोग हम वन्धुओंके लिये अन्न-सम्पादन करते हो ।

२ हे इन्द्रावरुण, धनकी इच्छा करनेवाले ये महान् यजमान, रक्षा या अन्नके लिये, तुम दोनोंका सर्वदा आह्वान करते हैं । मरुद्गण, धुलोक और पृथिवीके साथ मिलित होकर तुम दोनों मेरी स्तुति सुनो ।

३ हे इन्द्रावरुण, हम लोगोंको वही अमिलपित धन हो । हे मरुद्गण, सर्वकर्म-समर्थ पुत्र और पशुसङ्घ हम लोगोंको हो । सबके द्वारा भजनीय देव-पत्नियों शरण (गृह) द्वारा हम लोगोंकी रक्षा करें । होत्रा भारती [होत्रा अग्निपत्नी, भारती सूर्यपत्नी] उदार वचनों द्वारा हम लोगोंका पालन करें ।

बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । राश्व रत्नानि दाशुषे ॥४॥
 शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत । अनाम्योज आचके ॥५॥
 वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥६॥
 इयं ते पूषन्नाष्टुणो सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥७॥
 तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीम वा धियम् । वधूयुरिव योषणाम् ॥८॥
 योविस्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । सनः पूषाविता भूवत् ॥९॥
 तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१०॥
 देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः प्रन्ध्या । भगस्य राति मीमहे ॥११॥
 देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति धियेपिताः ॥१२॥

४ हे सब देवोंके हितकर बृहस्पति, हम लोगोंके पुरोडाश (हवि) आदिका सेवन करो । तदनन्तर हवि देनेवाले यजमानको तुम उत्तम धन दो ।

५ हे ऋत्विको, तुम लोग यज्ञ-समूहमें, अर्चनीय स्तोत्रों द्वारा, विशुद्ध बृहस्पतिकी परिचर्या करो । मैं शत्रुओं द्वारा अनभिभवनीय वलकी याचना करता हूँ ।

६ भनुष्योंके लिये अभिमतफलवर्षक, विश्वरूप नामक गोवाहनसे युक्त, अतिरस्करणीय और सबके द्वारा भजनीय बृहस्पतिके निकट मैं अभिमत फलकी याचना करता हूँ ।

७ हे दीप्तिमान् पूषा, यह नवीनतम और शोभन स्तुतिरूप वचन तुम्हारे लिये हैं । इस स्तुतिका उच्चारण हम लोग तुम्हारे लिये करते हैं ।

८ हे पूषा, मेरी उस स्तुतिका ग्रहण करो । स्त्रीकामी व्यक्ति जैसे स्त्रीके अभिमुख आगमन करता है, वैसे ही तुम इस हर्षकारिणी स्तुतिके अभिमुख आगमन करो ।

९ जो पूषा निखिल लोकको विशेष रूपसे देखते हैं और उसे देखते हैं, वही पूषा हम लोगोंके रक्षक हों ।

१० जो सविता हम लोगोंकी बुद्धिको प्रेरित करता है, सम्पूर्ण श्रुतियोंमें प्रसिद्ध उस द्योतमान जगत्प्रष्टा परमेश्वरके संभजनीय परब्रह्मात्मक तेजका हम लोग ध्यान करते हैं ।

११ हम लोग धनामिलाषी होकर स्तुति द्वारा द्योतमान सवितासे भजनीय धनके दानकी याचना करते हैं ।

१२ कर्मनेता मेधावी अध्वर्युगण बुद्धि द्वारा प्रेरित होकर, यजनीय हवि और शोभन स्तोत्रों द्वारा सविता देवताकी अर्चना करते हैं ।

सोमो जिगाति गातुर्विदेवानामेति निष्कृतम् । ऋतस्य योनिमासदम् ॥१३॥
 सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पश्वे । अनमीवा इषस्करत् ॥१४॥
 अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः । सोमः सधस्यमासदत् ॥१५॥
 आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१६॥
 उरुंसा नमोवृधा महां दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिवृता ॥१७॥
 गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोमघृतावृधा ॥१८॥

१३ पथङ्ग सोम जानेवालोंको स्थान दिखाते हैं । उपवेशनकारी देवोंके लिये संस्कृत यज्ञ-स्थानमें गमन करते हैं ।

१४ सोम हम स्तोताओंके लिये एवम् द्विपदों, चतुष्पदों और पशुओंके लिये रोगशून्य अन्न प्रदान करें ।

१५ सोमदेव हम लोगोंके अन्न या आयुको बढ़ाते हुए और कर्मविघातक शत्रुओंको अभिभूत करते हुए हम लोगोंके यज्ञस्थानमें उपवेशन करें ।

१६ हे शोभनकर्मकारी मित्रावरुण, हम लोगोंके गोष्ठको दुग्धपूर्ण करो । हम लोगोंके आवास-स्थानको मधुर रससे पूर्ण करो ।

१७ हे विशुद्धकर्मकारी मित्रावरुण, तुम दोनों बहुतों द्वारा स्तुत हो एवम् हविरग्न या स्तात्र द्वारा वर्द्धमान हो । दीर्घ स्तुतियुक्त होकर तुम लोग धन या बलके महत्त्वसे विराजमान होओ ।

१८ हे मित्रावरुण, तुम दोनों जमदग्नि नामक महर्षि द्वारा अथवा अग्निको प्रज्वलित करनेवाले विश्वामित्र द्वारा स्तुत होकर यज्ञदेशमें उपवेशन करो । तुम दोनों ही कर्मफलके वर्द्धयिता होः सोमपान करो ।

तृतीय मण्डल समाप्त



चतुर्थ मण्डल

३ अष्टक । ४ मण्डल । ४ अध्याय । १ अनुवाक ।

१ सूक्त ।

अग्नि देवता २---४ ऋचाके वरुण देवता । वामदेव ऋषि ।* अष्टि, अतिजगती, धृति, त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वां ह्यग्ने सदमित् समन्यत्रो देवासो देवमरति न्येरिरे इतिक्रत्वा न्येरिरे ।

अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वदेवमादेवं जनत प्रचेतसं

विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम् ॥ १ ॥

स आतरं वरुणमग्ने आववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती

यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम् ।

ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥२॥

सखे सखायमभ्याववृत्स्वाशुं न चक्रंरथेव रंह्यास्मभ्यं दस्मरंह्या

१ हे अग्नि, तुम द्योतमान और शीघ्रगामी हो। स्पर्द्धावात् देवगण तुम्हें सर्वदा ही, युद्धके लिये, प्रेरित करते हैं; अतएव यजमान लोग तुम्हें स्तुति द्वारा प्रेरित करें। हे यजनीय अग्नि, तुम अमर, द्युतिमान और उत्कृष्ट ज्ञान-विशिष्ट हो। यज्ञ करनेवाले मनुष्योंके मध्यमें आनेके लिये देवोंने तुम्हें उत्पन्न किया है। तुम कर्माभिन्न हो। समस्त यज्ञोंमें उपस्थित रहनेके लिये देवोंने तुम्हें उत्पन्न किया है।

२ हे अग्नि, तुम्हारे आता वरुण हैं। वे हव्यभाजन, यज्ञभोक्ता, अतिशय प्रशंसनीय, उदकवान्, अदिति-पुत्र, जलदान द्वारा मनुष्योंके धारक, सुबुद्धियुक्त और राजमान हैं। तुम ऐसे वरुण देवको स्तोताओंके अभिमुख करो।

३ हे सखिभूत दर्शनीय अग्नि, तुम अपने सखा वरुणको हमारे अभिमुख करो, जैसे गमनकुशल और रथमें युक्त अश्वद्वय शीघ्रगामी चक्रको, लक्ष्य देशके अभिमुख ले जाते हैं। हे अग्नि, तुम्हारी सहायतासे वरुणने सुखकर हव्य लाभ किया है तथा तेजोविशिष्ट मरुतोंके लिये भी सुखकर हव्य लाभ किया है। हे दीप्तिमान् अग्नि, तुम हमारे पुत्र-पौत्रोंको सुखी करो। हे दर्शनीय अग्नि, हम लोगोंका कल्याण करो।

* चतुर्थ मण्डलके वामदेव अथवा तद्वंशीय ऋषि हैं। द्वितीय मण्डलके प्रथम सूक्तकी प्रथम ऋचाकी टिप्पणी देखिये।

अग्ने मृलीकं वरुणे सचाविदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
 तोकाय तुजे शुशुचान शं क्रुध्यस्मभ्यं दस्म शं क्रुधि ॥३॥
 त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेलोव यासिसीष्टाः ।
 यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रसुमुग्ध्यस्मत् ॥४॥
 स त्वं नो अग्नेवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
 अवयच्च नो वरुणं रणाणो वीहि मृलीकं सुहवो न एधि ॥५॥
 अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य संदक् देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
 शुचिघृतं न तप्तमध्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥६॥
 त्रिरत्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
 अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥७॥

४ हे अग्नि, तुम सम्पूर्ण पुरुषार्थके साधनोपायको जानते हो । हम लोगोंके प्रति द्योत-
 मान वरुणके क्रोधका अपनोदन करो । तुम सबकी अपेक्षा अधिक याज्ञिक, हविर्वाही और
 अतिशय दीप्तिमान् हो । तुम हम लोगोंको सब प्रकारके पापोंसे, विशेष रूपसे, विमुक्त करो ।

५ हे अग्नि, रक्षादान द्वारा तुम हम लोगोंके प्रत्यासन्न होओ । उपाके विनष्ट होनेपर
 प्रातःकालमें, अग्निहोत्रादि कार्यकी सिद्धिके लिये, तुम हम लोगोंके अत्यन्त निकटस्थ होओ । हम
 लोगोंके लिये जो वरुणकृत जलोदरादि रोग और पाप हैं, उनका विनाश करो । तुम यजमानों-
 के लिये अत्यन्त फलप्रद हो । तुम इस सुखकर हविका भक्षण करो । हम तुम्हारा उत्तम रूपसे
 आह्वान करते हैं; हमारे निकट आगमन करो ।

६ उत्तम रूपसे भजनीय अग्निदेवका प्रशंसनीय अनुग्रह, मनुष्योंके लिये, अत्यन्त भजनीय
 तथा स्पृहणीय होता है, जैसे क्षीराभिलाषी देवोंके लिये गौओंका तेजोयुक्त, क्षरणशील और
 उष्ण दुग्ध स्पृहणीय होता है और जैसे मनुष्योंके लिये पयस्विनी गौ भजनीय होती है ।

७ अग्निदेवका प्रसिद्ध, उत्तम और यथार्थभूत अग्नि, वायु तथा सूर्यात्मक तीन जन्म-सबके
 द्वारा स्पृहणीय है । अनन्त, अकाशमें अपने तेज द्वारा परिवेष्टित
 और अत्यन्त दीप्यमान स्वामी अग्नि हमारे यज्ञमें आगमन करें ।

स दूतो विश्वेदभिवष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
 रोहिदस्त्रो वपुष्यो विभावा सदा रावः पितुमतीव संसत् ॥८॥
 स चेतयन्सनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्यारशनया नयन्ति ।
 सक्षेत्यस्य दुर्यासु साधन् देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥९॥
 स तु नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
 धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्धौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥१०॥
 स जायत प्रथमः पस्यासु महो बुध्ने रजसो अरय योनौ ।
 अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायुयुवानो वृषभस्य नीले ॥११॥
 प्रशर्ध आर्तं प्रथमं विपन्याँ ऋतस्य योना वृषभस्य नीले ।
 स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्तप्रियासो जनयन्त वृष्यो ॥१२॥

८ दूत, देवोंके आह्वानकारी, सुवर्णमय रथोपेत, रमणीय उवालाविशिष्ट अग्नि समस्त यज्ञकी कामना करते हैं। रोहिताश्व, रूपवान् और सदा कान्तियुक्त अग्नि, अन्न द्वारा संसृद्ध गुहकी तरह, रमणीय हैं।

९ अग्नि यज्ञमें विनियुक्त होते हैं। वे यज्ञमें प्रवृत्त मनुष्योंको जानते हैं। अध्वर्युगण महती रक्षणा द्वारा, उत्तर वेदिमें, उनका प्रणयन करते हैं। यजमानके गृहोंमें अभीष्ट-साधन करते हुए वे निवास करते हैं। वे द्योतमान अग्नि, धनियोंके साथ, एकत्र वास करते हैं।

१० स्तोताओं द्वारा, भजनीय जो रत्नरूप रत्न अग्निका है, उस रत्नको सर्वज्ञ अग्नि हमारे अग्निमुख प्रेरित करें। मरण-धर्मरहित समस्त देवोंमें, यज्ञके लिये, अग्निका उत्पादन किया है। धुलोक उनके पालक और जनक हैं। अध्वर्युगण घृतादि आहुतियों द्वारा यथार्थभूत अग्निको सिञ्चित करते हैं।

११ अग्नि ही श्रेष्ठ हैं। वे यजमानोंके गृहोंमें और महान् अन्तरिक्षके मूल स्थानमें-उत्पन्न हुए हैं। अग्नि पादरहित और शिरोवर्जित हैं। वे शरीरके अन्तर्भागका गोपन करके, जलवर्षी मेघके निलयमें, अपनेको धूमाकार बनाते हैं।

१२ हे अग्नि, तुम स्तुतियुक्त उदकके उत्पत्तिस्थानमें, मेघके कुलायभूत (घोंसला) अन्तरिक्षमें, वर्तमान हो। तेज तुम्हारे निकट सर्वप्रथम उपस्थित होता है। जो अग्नि स्पृहणीय, नित्य तरुण, कमनीय और दीप्तिमान् हैं, उन्हीं अग्निके उद्देशसे सप्त होता स्तुति करते हैं।

अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभिप्रसेदुऋतमाशुषाणाः ।
 अश्मव्रजाः सुदुषा ववू अन्तरुदुस्त्रा आजन्नुषसो हुवानाः ॥१३॥
 ते मर्मृजत दह्वांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो विवोचन् ।
 पश्वयन्त्रासो अभिकारमर्चन्त्रिदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभिः ॥१४॥
 ते गव्यता मनसा हृद्रमुब्धं गा येमानं परिसन्तमद्रिम् ।
 दृहूलं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥१५॥
 ते मन्वत पृथमं नाम धेनोस्त्रिः सप्तमातुः परमाणि विन्दन् ।
 तज्जानतीरभ्यनूषत वा आविर्भुव दरुणीर्यशसा गोः ॥१६॥
 नेशत्तमो दुधितं रोचत योरुद्वेव्या उषसो भानुरर्त ।
 आसूर्यो बृहतस्तिष्ठदज्रां ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥१७॥

१३ इस लोकमें, हमारे पितृपुरुषों (अङ्गिरा आदि) ने, यज्ञ करनेके लिये, अग्निके अभिमुख गमन किया था । प्रकाशके लिये उषा देवीका आह्वान करते हुए उन लोगोंने, अग्नि-परिचर्याके बलसे, पर्वतविलान्तर्घर्षो अन्धकारके मध्यसे दोहवती धेनुओंको बाहर किया था ।

१४ उन लोगोंने, पर्वतको विदीर्ण करते समय, अग्निकी परिचर्या की थी । अन्य ऋषियोंने उनके कर्मका कीर्तन सर्वत्र किया था । उन्हें पशुओंको वचनेके उपाय ज्ञात थे । अभिमत फलप्रद अग्निका स्तवन करते हुए उन्होंने ज्योति लाभ किया था, और, बुद्धिबलसे यज्ञ किया था ।

१५ अङ्गिरा आदि कर्माके नेता और अग्निकी कामनावाले थे । उन्होंने मनसे गो-लाभकी इच्छा काके द्वारनिरोधक, द्रुहवद्, सुद्रुह, गौओंके अवरोधक एवम् सर्वतः व्याप्त गोपूर्ण गोष्ठ-रूप पर्वतका, अग्निविषयक स्तुति द्वारा, उद्घाटन किया था ।

१६ हे अग्नि, स्तोत्र करनेवाले अङ्गिरा आदिने ही पहले-पहल जतनी वाक्के सम्बन्धी स्तुतिसाधक शब्दोंको जाना, पश्चात् वचन-सम्बन्धी सताईस छन्दोंको प्राप्त किया । अनन्तर इन्हें जाननेवाली उषाका स्तवन किया एवम् सूर्यके तेजके साथ अरुणवर्णा उषा प्रादुर्भूत हुई ।

१७ रात्रिकृत अन्धकार उषा द्वारा प्रेरित होनेपर विनष्ट हुआ । अन्तरीक्ष दीप्त हुआ । उषा देवीकी प्रभा उद्गत हुई । मनुष्योंके सत् और असत् कर्माका अवलोकन करते हुए सूर्यदेव महान् अजर पर्वतके ऊपर आरूढ हुए ।

आदित् पश्चा बुधुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्नं धारयन्त द्यु भक्तम् ।
 विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥१८॥
 अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम् ।
 शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥१९॥
 विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
 अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृलीको भवतु जातवेदाः ॥२०॥

२ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

यो सत्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।
 होता यजिष्ठो महा शुचध्वै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्वै ॥१॥

१८ सूर्योदयके अनन्तर अङ्गिरा आदिने पणियों द्वारा अपहृत गौओंको जानकर, पीछेकी ओरसे, उन गौओंको अच्छी तरहसे देखा एवम् दीप्तियुक्त धन धारण किया । इनके समस्त गृहोंमें यजनीय देवगण आये । वरुण-जनित उपद्रवोंका निवारण करनेवाले हे मित्रभूत अग्नि, जो तुम्हारी उपासना करता है, उसे सत्य फल लाभ हो ।

१९ हे अग्नि, तुम अत्यन्त दीप्तिमान्, देवोंके आह्वाता, विश्वपोषक और सर्वापेक्षा यागशील हो । तुम्हारे उद्देशसे हम स्तुति करते हैं । यजमान लोग, तुम्हें आहुति देनेके लिये, गौओंके ऊधःप्रदेशसे शुद्ध दुग्धका दोहन नहीं करते हैं और न सोमलता-सम्बन्धी शोधित अन्नको ही गृहमें प्रक्षिप्त करते हैं । वे लोग केवल तुम्हारी स्तुति करते हैं ।

२० अग्नि समस्त यज्ञार्ह देवोंके पोषक है । अग्नि सम्पूर्ण मनुष्योंके लिये अतिथिवत् पूज्य है । स्तोताओंके अन्नभोजी अग्नि, स्तोताओंके लिये, सुखकर हो ।

१ जो मरणधर्म-रहित अग्नि, मनुष्योंके मध्यमें, सत्यवान् होकर निहित हैं, जो दीप्तिमान् अग्नि इन्द्रादि, देवताओंके मध्यमें, शत्रुओंके पराभवकर्ता हैं, वे ही अग्नि देवोंके आह्वाता और सबकी अपेक्षा अधिक यज्ञ करनेवाले हैं । वे अपनी महिमासे प्रदीप्त होनेके लिये उत्तर वेदिपर स्थापित हुए हैं एवम् हवि द्वारा यजमानोंको स्वर्ग भेजनेके लिये स्थापित हुए हैं ।

इह त्वं सूनो सहस्रो नो अद्यजातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने ।
 दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान् वृषणः शुक्राँश्च ॥२॥
 अत्या वृधस्त् रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा ।
 अन्तरीयसे अरुपा युजानो युष्माँश्च देवान्विश आ च मर्तान् ॥३॥
 अर्यमणं वरुणं मित्रमेपामिन्द्राविष्णूमरुतो अश्विनोत ।
 स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदुवह सुहविषे जनाय ॥४॥
 गोमाँ अग्नेविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सद्मिदप्रमृष्यः ।
 इलावाँ एपो असुर प्रजावान्दीर्घो रयिः पृथुवृध्नः सभावान् ॥५॥
 यज्ञत इष्मं जभरत् सिष्विदानो मूर्धानं वाततपते त्वाया ।
 भुवस्तस्य स्वतर्वाः आयुरस्रं विश्वस्मात् सीमघायत उरुष्य ॥६॥

२ हे बलपुत्र अग्नि, तुम आज हमारे इस कार्यमें संस्कृत हुए हो। हे दर्शनीय अग्नि, तुम ऋजु, मांसल, दीर्घिमान और बलवान् अश्वोंको रथमें युक्त करके जन्मविशिष्ट देव और मनुष्योंके मध्यमें, हय्य पशुंयानोंके लिये, दूत बनकर जाते हो।

३ हे अग्नि, तुम सत्यभूत हो। मैं तुम्हारे रोहितवर्णवाले अश्वद्वयकी स्तुति करता हूँ। ये अश्व मनकी वर्षेक्षा भी अधिक वेगवान् हैं, ये अन्न और जलका क्षरण करते हैं। तुम दीर्घिमान अश्वद्वयको रथमें युक्त करके देवों और मनुष्योंके मध्यमें प्रवेश करो।

४ हे अग्नि, तुम्हारा अश्व उत्तम है, रथ उत्तम है और धन भी उत्तम है। इन मनुष्योंके मध्यमें शोभन हाथवाले यजमानके लिये अर्यमा, वरुण, मित्र, इन्द्राविष्णु, मरुतृण और अश्विद्वयका आनयन करो।

५ हे बलवान् अग्नि, हमारा यह यज्ञ गोविशिष्ट, मेघविशिष्ट और अश्वविशिष्ट हो। जो यज्ञ अश्वयुं और यजमानविशिष्ट है, वह यज्ञ सर्वदा अप्रमृष्य, हविरन्नसे युक्त तथा पुत्र-पौत्रवान् हो परम अत्रिच्छन्न अनुष्ठानसे संयुक्त, धनसम्पन्न, बहुत धनोंका हेतुभूत और उपदेष्टाओंसे युक्त हो।

६ हे अग्नि, जो मनुष्य तुम्हारे लिये स्वैद (पत्नीसे) युक्त होकर लकड़ियोंको ढोता है, जो तुम्हें प्राप्त करनेकी कामनासे अपने मस्तकको काण्डभारसे उत्तत करता है, उसे तुम धनवान् बनाते हो और उसका गालन करते हो। जो कोई उसको अनिष्ट-कामना करता है, उससे तुम उसकी रक्षा करो।

यस्ते भरादत्रियते चिदन्नं निशिषन्मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।
 आदेवयुरिनधत्ते दुरोणे तस्मिन्नूयिर्ध्रुवो अस्तु दास्वान् ॥७॥
 यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात् प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान् ।
 अश्वो न स्वदम् आहेभ्यावान्तमंहसः पीपरो दाश्वंसम् ॥८॥
 यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद्दुवस्त्वे कृणवते यतस्त्रुक् ।
 न स राया शशमानो वियोषन्नैनमंहः परिवरदघायोः ॥९॥
 यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः ।
 प्रीते दसद्धोत्रा सा यविष्ठासाम यस्य विधतो वृधासः ॥१०॥
 चित्तिमचित्तिं चिन्वद्विविद्वान् पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान् ।
 राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ॥११॥

७ हे अग्नि, अन्नकी इच्छा करनेपर जो कोई तुम्हें देनेके लिये हविरन्न धारण करता है, जो तुम्हें हर्षकर सोम प्रदान करता है, जो अतिथि-रूपसे तुम्हारा उत्तर वेदिपर प्रणयन करता है और जो व्यक्ति देवत्वकी इच्छा करके तुम्हें गृहमें समिद्ध करता है, उसका पुत्र धर्मपथमें निश्चल और औदार्यविशिष्ट हो ।

८ हे अग्नि, जो मनुष्य रात्रिकालमें और जो व्यक्ति उपाकालमें तुम्हारी स्तुति करता है एवम् जो यजमान प्रिय हव्यसे युक्त होकर तुम्हें प्रसन्न करता है, तुम अपने गृहमें सुवर्ण-निर्मित सजा (काठी)-विशिष्ट अश्वकी तरह विचरण करते हुए उस यजमानकी, दरिद्रतासे, रक्षा करो ।

९ अग्नि, तुम अमर हो । जो यजमान तुम्हारे लिये हव्य प्रदान करता है, जो तुम्हारे लिये स्त्रुक्को संयत करता है, जो तुम्हारी परिचर्या करता है, वह स्तोत्र करनेवाला यजमान धन-शून्य नहीं हो, हिंसकोंका आहनन उसका स्पर्श नहीं करे ।

१० हे अग्नि, तुम आनन्दयुक्त और दीप्तिमान् हो । तुम जिस मनुष्यका सुसम्पादित और हिंसा-रहित अन्न भक्षण करते हो, हे युवतम, वह होता निश्चय ही प्रीत होता है । अग्निके परिचर्याकारी जो यजमान यज्ञके वर्द्धयिता हैं, हम उन्हींके होंगे ।

११ अश्वपालक जिस तरहसे अश्वोंके कान्त एवम् दुर्वह पृष्ठोंको पृथक् कर सकते हैं, उसी तरह विद्वान् अग्नि पाप और पुण्यको पृथक् करें । हे अग्निदेव, हम लोगोंको सुन्दर पुत्रसे युक्त धन हो । तुम दाताको धन हो और अदाताके समीपसे उसकी रक्षा करो ।

कविं शशासुः कवयो दध्वानि धारयन्तो दुर्यास्वायोः ।
 अतस्त्वं दृश्यां अग्न एतान् पङ्भिः पश्येरद्भुतां अर्य एवैः ॥१२॥
 त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
 रत्नं भर शशामानाय घृण्वे पृथुश्चन्द्रमवसे चर्पणिप्राः ॥१३॥
 अथा ह यद्वयमग्ने त्वाया पङ्भिर्हस्तेभिश्चक्रमा तनूभिः ।
 रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोऋतं येमुः सुध्य आशुपाणाः ॥१४॥
 अथा मातुरुपसः सप्तविप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नृन् ।
 दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमार्द्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ॥१५॥
 अथा यथा नः पितरः परासः पत्नासो अग्न ऋतमाशुपाणाः ।
 शुचीदयन्दोधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपत्रन् ॥१६॥

१२ हे अग्नि, मनुष्योंके गृहोंमें निवास करनेवाले, अतिरक्षित देवोंने तुम मेधावीको, होता होनेके लिये, कहा है। हे अग्नि, तुम मेधावी हो, यज्ञस्वामी हो; अतएव तुम अपने चञ्चल तेज-सं दर्शनीय और अद्भुत देवोंको देवो।

१३ हे दीप्तिमान् युवतम अग्नि, तुम मनुष्योंकी अभिलाषाके पूरक एवम् उत्तर वेदिपर प्रणयनके योग्य हो। जो यजमान, तुम्हारे लिये, सोमाभिपत्र करता है, तुम्हारी परिचर्या करता है और तुम्हारा स्तवन करता है, उसकी रक्षाके लिये तुम उसे प्रभूत, आह्लादकर तथा उत्तम धन दो।

१४ हे अग्नि, जिस लिये हम लोग तुम्हारी कामनासे हाथ, पैर और शरीर द्वारा कार्य करते हैं, उसी लिये यज्ञरत्न और शोभनकर्मा अङ्गिरा आदिने, बाहु द्वारा काष्ठ-मन्थन करके, तुम सत्यभूतको उत्पन्न किया है, जैसे शिल्पिपण रथ निर्माण करते हैं।

१५ हम सात व्यक्ति (चामदेव और छ अङ्गिरा) प्रथम मेधावी है। हम लोगोंने माता उपाके समीपसे अग्निके परिचरकों या रश्मियोंको उत्पन्न किया है। हम छोटमान् आदित्यके पुत्र अङ्गिरा हैं। हम दीप्तिमान् होकर उदक-विशिष्ट पर्वतका या मेघका भेदन करेंगे।

१६ हे अग्नि, हम लोगोंके श्रेष्ठ, पुरातन और सत्यभूत यज्ञमें रत पितृपुरुषोंने दीप्त स्थान तथा तेज प्राप्त किया था। उन्होंने उपधोंका उच्चारण करके अन्धकारको विनष्ट किया था तथा पणियों द्वारा अपहृत अक्षयवर्णा गौशोंको या उपाको प्रकाशित किया था।

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो यो न देवा जनिमा धमन्तः ।
 शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अम्मन् ॥१७॥
 आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यदेवानां तज्जनिमान्त्युग्र ।
 मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥१८॥
 अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवसन्नूपसो विभातीः ।
 अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य ममृजतश्चारु चक्षुः ॥१९॥
 एता ते अग्न उचथानि वेधो वोचाम कवये ता जुपस्व ।
 उच्छोचश्च कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्रयन्धि ॥२०॥

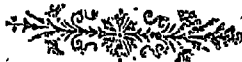


१७ सुन्दर यज्ञादि कार्यमें रत दीप्तियुक्त तथा देवामिलापो स्तोता, धौकनी द्वारा, निर्मल लोहेकी तरह, अपने मनुष्य जन्मको, यागादि कार्य द्वारा, निर्मल करते हैं। वे अश्रिको दीप्त तथा इन्द्रको प्रवृद्ध करते हैं। चारो ओर उपवेशन करके उन्होंने महान् गो-समूहको प्राप्त किया था।

१८ हे तेजस्वी अग्नि, जिस तरह अन्न-विशिष्ट गृहमें पशु-समूह रहता है, वैसे ही अङ्गिरा आदि देवोंके गो-समूहके निकट हैं। उनके द्वारा लायी गयी गौओंसे प्रजा समर्थ हुई थी। आर्य-अपत्य वर्द्धन-समर्थ और मनुष्य पोषण-समर्थ हुए थे।

१९ हे अग्नि, हम तुम्हारी परिचर्या करते हैं, जिससे हम शोभन कर्मवाले होते हैं। तमोनिवारिका उषा सकल तेज धारण करती हैं। वह, पूर्ण रूपसे, आह्लादकर अश्रिको बहुधा धारण करती है। तुम धोतमान हो। हम तुम्हारे मनोहर तेजकी परिचर्या करते हैं।

२० हे विधाता अग्नि, तुम मेधावी हो। हम तुम्हारे उद्देशसे इस सम्पूर्ण उक्थका उच्चारण करते हैं, तुम इसका सेवन करो। तुम उदीप्त होकर हमें विशेष रूपसे धनवान् करो। तुम बहुतों द्वारा वरणीय हो। तुम हम लोगोंको महान् धन प्रदान करो।



३ सूक्त

अग्नि देवता । गामदेव अग्नि । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
 अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥१॥
 अयं योनिश्चक्रमा यं त्रयन्ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
 अर्वाचीनः परिवीतो निपीदेमा उते स्वपाक प्रतीचीः ॥२॥
 आशृण्वते अद्विपाय मन्म नृचक्षसे सुमृलीकाय वेधः ।
 देवाय शस्तिममृताय शंस प्रावेव सोता मधुपुत्रमीले ॥३॥
 त्वं चित्रः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यतचित् स्वाधीः ।
 कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥४॥
 कथा ह तद्गुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कं न आगः ।
 कथा मित्राय मीहूलुपे पृथिव्ये व्रवः कदर्यम्णे कद्गुणाय ॥५॥

१ हे यजमानो, यज्ञके अधिपति, देवोंके आहवाता, धावा-पृथिवीके अन्नदाता, सुवर्णकी तरह प्रभावाले और शशुओंकी रक्तानेवाले रुद्रात्मक अग्निकी, अपनी रक्षाके लिये, चक्ररूप मृत्युके पूर्ण ही, सेवा करो ।

२ हे अग्नि, पतिफामिनी, सुवस्त्राच्छादिता जाया जिस तरह पतिके लिये स्थान प्रस्तुत करती है, उसी तरह हम लोग भी उत्तर-वेदिरूप प्रदेश प्रस्तुत करते हैं, यही तुम्हारा स्थान है । हे सुकर्मा अग्नि, तुम नेत्र द्वारा परिवृत्त होकर हम लोगोंके अभिमुख उपवेशन करो । यह सफल म्नुति तुम्हारे अभिमुख उपवेशन करे ।

३ हे स्तोता, स्तोत्र-श्रवण-परायण, अप्रमत्त, मनुष्योंके व्रथा, सुखकर और अमर अग्निदेवके उद्देशसे स्तोत्र और शस्त्रका पाठ करो । प्रस्तरकी तरह सोमाभिपवकारी यजमान अग्निकी म्नुति करते हैं ।

४ हे अग्नि, हम लोगोंके इत. फर्मके तुम देवता होओ । हे सत्यज्ञ अग्नि, तुम सुकर्मा हो । तुम्हें हमारा स्तोत्र अचगत हो । उन्मादकारक तुम्हारे स्तोत्र कब उच्चारित होंगे ? हमारे गृहमें तुम्हारे साथ कब समाभाव होगा ?

५ हे अग्नि, घरणके निकट तुम हम लोगोंकी पापजन्य निन्दा क्यों करते हो ? अथवा मृत्युके निकट क्यों निन्दा करते हो ? हम लोगोंका क्या अपराध है ? अभिमत फलदाता मित्र और पृथिवीको तुमने क्यों कदा ? अथवा अर्यमा और भग नामक देवोंसे ही तुमने क्यों कहा ?

कद्विष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्राताय प्रतवसे शुभं ये ।
 परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृधने ॥६॥
 कथा महे पुष्टिः सराय पूष्णे कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।
 कद्विष्णवः उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ॥७॥
 कथा शर्धाय सरुतामृताय कथा सूरैः बृहते पृच्छ्यमानः ।
 प्रति ब्रवोदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥८॥
 ऋतेन ऋतं नियतमील आ गोरामा सचा मधुमत् पक्वमग्ने ।
 कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥९॥
 ऋतेन हि सा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्येन ।
 अस्पन्दसानो अचरद्वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूयः ॥१०॥

६ हे अग्नि, जब तुम यज्ञमें वर्द्धमान होते हो, तब उस कथाको क्यों बोलते हो ?
 प्रकृष्ट बलयुक्त, शुभप्रद, सर्वत्रगामी, सत्यके नेता वायुको वह कथा क्यों कहते हो ? पृथिवी
 को क्यों कहते हो ? हे अग्नि, पापी मनुष्योंको मारनेवाले रुद्रदेवको वह कथा क्यों कहते हो ?

७ हे अग्नि, महान्, पुष्टिप्रद पूषाको वह पाप-कथा क्यों कहते हो ? यज्ञभाजन,
 हविःप्रद रुद्रको वह क्यों कहते हो ? बहुस्तुति-भाजन विष्णुको पापकी कथा क्यों कहते हो ?
 बृहत् संवत्सर अथवा निरृत्तिको वह कथा क्यों कहते हो ?

८ हे अग्नि, सत्यभूत मरुद्गणको वह कथा (मेरा अपराध) क्यों कहते हो ? पूछे जानेपर
 महान् सूर्यको वह कथा क्यों कहते हो ? देवी अदितिको और त्वरितगमन वायुको क्यों
 कहते हो ? हे सर्वज्ञ जातवेदा, तुम ध्रुलोकके कार्यका साधन करो ।

९ हे अग्नि, हम सत्यभूत यज्ञके साथ नित्य सम्बद्ध दुग्धकी याचना, गौओंके निकट,
 करते हैं। अपक होकर भी वह गौ मधुर और पक्व दुग्ध धारण करती है। वह कृष्णवर्णा
 होकर भी शुभ्र, पुष्टिकारक और प्राणधारक दुग्ध द्वारा मनुष्योंका पोषण करती है ।

१० अमिमतः फलवर्षक और श्रेष्ठ अग्नि सत्यभूत और पुष्टिकर दुग्ध द्वारा सिक्त होते
 हैं। अन्नद अग्नि एकत्र अवस्थिति करके, सर्वत्र तेज द्वारा, विचरण करते हैं। जलवर्षक
 सूर्य अन्तरिक्ष या मेघसे पयोदोहन करते हैं ।

ऋतेनाद्रिं व्यसन् भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।
 शुनं नरः परिपदन्नुपासमाविः स्वरभवजाते अश्रौ ॥११॥
 ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अणोभिरापो मधुमङ्गिरस्ये ।
 वाजो न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्रसदमित् सवितवे दधन्युः ॥१२॥
 मा कस्य यक्षं सदमिच्छुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।
 मा भ्रातुरस्ये अनृजोऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजैम ॥१३॥
 रक्षाणो अग्ने तव रक्षणेभीरारक्षणः सुमख प्रीणानः ।
 प्रतिष्फुर विरुजं वीड्वंहो जहि रक्षो महिचिद्रा वृथानम् ॥१४॥
 एभिर्भव सुमना अग्ने अर्केरिमान् स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
 उत ब्रह्माप्यङ्गिरो जुपस्व सन्ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥१५॥

११ मेधातिथि आदिने यज्ञ द्वारा गो-निरोधक पर्वतको विदीर्ण करके फेंक दिया था; और, गौशोकें साथ मिले थे । फमोंके नेता उन अङ्गिरोगणने सुखपूर्वक उपाको प्राप्त किया था । तदनन्तर सूर्यदेव, मन्थन द्वारा अग्निके उत्पन्न होनेपर, उदित हुए ।

१२ हे अग्नि, मरण-रहिता, विघ्नशून्या और मधुर जलयुक्ता देवी नदियाँ यज्ञ द्वारा प्रेरित होकर, जानेंक लिये प्रोत्साहित अथर्वकी तरह, सर्वदा प्रवाहित होती हैं ।

१३ हे अग्नि, जो कोई हमारी हिंसा करता है, उसके यज्ञमें तुम कभी भी नहीं जाना । किसी दुष्ट बुद्धिवाले प्रतिवासी (पड़ोसी) के यज्ञमें नहीं जाना । हमें छोड़कर दूसरे बन्धुके यज्ञमें नहीं जाना । तुम कुटिलचित्त भ्राताके ऋण (हवि) की कामना नहीं करना । हम लोग भी मित्र या शत्रु द्वारा प्रदत्त धनका भोग नहीं करेंगे । केवल तुम्हारे ही द्वारा प्रदत्त धनका भोग करेंगे ।

१४ हे सुयज्ञ अग्नि, तुम हम लोगोंके रक्षक हो । तुम हव्य द्वारा प्रीत होकर आश्रय दान द्वारा हमारी रक्षा करो । तुम हम लोगोंको प्रदीप्त करो । हम लोगोंके दूढ़ पापका तुम विनाश करो एवम् महान् और घट्टमान राक्षसका विनाश करो ।

१५ हे अग्नि, हमारे इस अर्चनीय शास्त्र द्वारा तुम प्रीतमना होओ । हे शूर, हमारे इस स्तोत्र-सहित अन्नका ग्रहण करो । हे हविरन्नके गृहीता अग्नि, मन्त्रोंका सेवन करो । देवोंके उद्देशसे प्रयुक्त स्तुति तुम्हें संवर्द्धित करे ।

एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निष्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उवथैः ॥१६॥

४ सूक्त

रक्षोदाग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥१॥
तव ध्रमास आशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूष्यग्ने जुह्वा पतङ्गान सन्दितो विस्त्रज विष्वगुल्काः ॥२॥
प्रतिस्पृशो विस्त्रज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे दघशंसो यो अन्त्यग्ने साकिष्ठे व्यथिरा दधर्षीत् ॥३॥

१६ हे विधाता अग्नि, तुम कर्मविषयको जानेवाले और उत्कृष्ट द्रष्टा हो । हम प्राज्ञ लोग, तुम्हारे उद्देशसे, फलप्रापक, गूढ़, अतिशय वक्तव्य और हम कवियों द्वारा ग्रथित इस समस्त वाक्यका, स्तोत्र और शस्त्रोंके साथ, उच्चारण करते हैं ।

१ हे अग्नि, तुम अपने तेजःपुञ्जको विस्तारित करो, जैसे व्याध अपने जालको विस्तारित करता है । जैसे अमात्यके साथ राजा हाथीके ऊपर गमन करता है, वैसे ही तुम भयशून्य तेजःसमूहके साथ गमन करो । तुम शीघ्रगामिनी सेनाका अनुगमन करके शत्रु-सैन्यको हिंसित करो और शत्रुओंको नष्ट करो । अत्यन्त तीक्ष्ण तेज द्वारा तुम राक्षसोंका भेदन करो ।

२ हे अग्नि, तुम्हारी भ्रमणकारिणी और शीघ्रगामिनी रश्मियाँ सर्वत्र प्रसृत होती हैं । तुम अत्यन्त दीप्तिमान् हो । अभिभवसमर्थ तेजोराशि द्वारा तुम शत्रुओंको दग्ध करो । शत्रु तुम्हें निरुद्ध नहीं कर सकते हैं । तुम जुह्वा द्वारा तापप्रद तथा पतनशील विस्फुलिङ्गको और उल्का (तेजःपुञ्ज) को सर्वत्र विकीर्ण करो ।

३ हे अग्नि, तुम अतिशय वेगवान् हो । शत्रुओंको बाधा देनेवाली रश्मियोंको तुम शत्रुओंके प्रति प्रेरित करो । कोई तुम्हारी हिंसा नहीं कर सकता है । जो कोई दूरसे हम लोगोंकी अनिष्ट-कामना करता है अथवा जो निकटसे अनिष्ट करनेकी इच्छा करता है, तुम उसके निकटसे इस सकल प्रजाकी रक्षा करो । हम लोग तुम्हारे हैं । जिससे कोई शत्रु हम लोगोंको पराभूत नहीं कर सके ।

उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्वन्यमित्राँ ओपतान्निग्महेते ।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचातं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥४॥
उर्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अवस्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिम जामिं प्रमृणीहि शत्रून् ॥५॥
स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्रान्यर्यो विदुरो अभिद्यौत् ॥६॥
सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्रा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिपीपति स्व आयुपि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥७॥
अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक् सन्ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्रा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनुद्यून् ॥८॥

४ है तीक्ष्ण ज्वालाविशिष्ट अग्नि, उठो, राक्षसोंको मारनेके लिये प्रस्तुत होओ । शत्रु-
शोकके ऊपर ज्वालाजालका विस्तार करो । तेजोराशि द्वारा शत्रुओंको भली भाँति दग्ध करो ।
हे समोद् अग्नि, जो व्यक्ति हमारे साथ शत्रुता करता है, उस व्यक्तिको, शुष्क काष्ठकी
तरह, तुम दग्ध कर दो ।

५ हे अग्नि, तुम राक्षसोंको मारनेके लिये उद्यत होओ । हमसे जितने अधिक बलवान्
हैं, उन सबको एक-एक करके मारो । अपने देव-सम्बन्धी तेजको आविष्कृत करो । प्राणियोंको
क्षुश देनेवालोंके दूढ़ धनुषको ज्या-शून्य करो और पूर्वमें पराजित अथवा अपराजित शत्रुओंको
घिनय्त करो ।

६ युवतम अग्नि, तुम गमनशील और प्रधान हो । जो कोई तुम्हारे लिये स्तुति प्रेरित
करता है, वह पुण्य तुम्हारे अनुग्रहको प्राप्त करता है । तुम यज्ञस्वामी हो । तुम उसके लिये
समस्त शोभन दिनोंको, धनोंको और रत्नोंको ग्रहण करो । तुम उसके गृहके अभिसुख द्योतित होओ ।

७ है अग्नि, जो व्यक्ति नित्य सङ्कल्पित हव्य द्वारा अथवा उक्थ मन्त्र द्वारा तुम्हें प्रीत
करनेकी इच्छा करता है, वह पुण्य सौभाग्यवान् और सुदाता हो । वह कठिनातासे लाभ
करनेके योग्य अपनी सौ घर्षोंकी आयुको प्राप्त करे । उस यजमानके लिये सब दिन
शोभन हों । वह यज्ञफल-साधन-सामर्थ्य हो ।

८ है अग्नि, हम तुम्हारी अनुग्रह-बुद्धिकी पूजा करते हैं । तुम्हारे उद्देशसे उच्चारित वाक्य
प्रतिध्वनित होकर तुम्हारी स्तुति करे । हम लोग पुत्र-पौत्रादिके साथ उत्तम रथ और उत्तम
अश्वोंसे युक्त होकर तुम्हारी परिचर्या करेंगे । तुम हम लोगोंके लिये प्रतिदिन धन
धारण करो ।

इह त्वा भूर्याचरेदुपत्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनुधून् ।

क्रोडन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥६॥

यस्त्वास्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।

तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग् जुजोषत् ॥१०॥

महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।

त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥११॥

अस्वप्लजस्तरणयः सुशोवा अतन्द्रासोवृका अश्रमिषाः ।

ते पायवः सधृञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥१२॥

ये पायवो मामतेयन्ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।

ररक्ष तान्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥१३॥

६ हे अग्नि, तुम अहर्निश प्रदीप्त होते हो। इस लोकमें पुरुष, तुम्हारे समीप, तुम्हारी परिचर्या प्रतिदिन करते हैं। हम भी शत्रुओंके धनको आत्मसात् करके, अपने गृहमें पुत्र-पौत्रोंके साथ विहार करते हुए, प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारी परिचर्या करते हैं।

१० हे अग्नि, जो पुरुष सुन्दर अश्वयुक्त होकर, यागयोग्य धनविशिष्ट होकर और ग्रीहि आदि धनसे संयुक्त रथके साथ तुम्हारे समीप गमन करता है, उस पुरुषके तुम रक्षक होओ। जो पुरुष अनुक्रमसे अतिथियोग्य पूजा तुम्हें प्रदान करता है, उसके तुम सखा होओ।

११ हे होता, युवतम और प्रज्ञावान् अग्नि, स्तोत्र द्वारा जो बन्धुता उत्पन्न हुई है, उसके द्वारा हम महान् राक्षसरूप शत्रुओंको भग्न करें। यह स्तोत्रात्मक वचन पिता गोतमके निकटसे हमारे समीप आया है। तुम शत्रुओंके विनाशक हो। तुम हमारे स्तुति-वचनको जानो।

१२ हे सर्वज्ञ अग्नि, तुम्हारी रश्मियाँ सतत जागरूक, सर्वदा गमनशील, सुखान्वित, आलस्य-रहित, अहिसित, अभ्रान्त, परस्पर सङ्गत और रक्षणक्षम हैं। वे इस स्थानपर उपवेशन करके हमारी रक्षा करें।

१३ हे अग्नि, रक्षा करनेवाली तुम्हारी इन रश्मियोंने, कृपा करके, समताके पुत्र चक्षुहीन दीर्घतमाकी, शापसे, रक्षा की थी। तुम सर्वे-प्रज्ञावान् हो। तुम आदरपूर्वक उन रश्मियोंका पालन करते हो। तुम्हारे शत्रु तुम्हें विनष्ट करनेकी इच्छा करके भी तुम्हारा विनाश नहीं कर सकते हैं।*

* उच्यते ऋषिकी पत्नी ममता गर्भिणी थी। उसके देवर बृहस्पतिने एक दिन उसके साथ सम्भोग किया; किन्तु पूर्वसे ही वर्तमान गर्भस्थ रेतने उनसे रेतःसेक-कालमें कहा कि, "मैं यहाँ वर्तमान हूँ, आप रेतःक्षण नहीं करें।" बृहस्पतिने उसे अन्धा होनेका शाप दिया। वही दीर्घतमा हुआ। पीछे अग्निकी स्तुति करके दीर्घतमाने आँखें पायीं।—सायण।

त्वया वयं सथन्यस्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।

उभा शंसा सूदय सत्यतातेनुष्टुयो कृणुह्यहयाण ॥१४॥

अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं शुभाय ।

दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान् द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥१५॥

१४ हे अग्नि, तुम्हारा गमन लज्जाशून्य है । हम स्तोता, तुम्हारे अनुग्रहसे, समान धन-वाले होकर तुम्हारे द्वारा रक्षित हों । तुम्हारी प्रेरणासे अन्न काम करें । हे सत्यविस्तारक और पाप-नाशक, निकटस्थ या दूरस्थ शत्रुओंको विनष्ट करो तथा अनुक्रमसे समस्त कार्य (इस सूक्तमें प्रतिपादित) करो ।

१५ हे अग्नि, इस प्रदीत स्तुति द्वारा हम तुम्हारी परिचर्या करें । हमारे इस स्तोत्रको प्रतिगृहीत करो । स्तुतिविहीन राक्षसोंको भस्मसात् करो । हे मित्रोंके पूजनीय अग्नि, शत्रु और निन्दकोंके परिचादसे हमारी रक्षा करो ।

चतुर्थ अध्याय समाप्त



पञ्चम अध्याय

५ सूक्त

वैश्वानर अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप छन्द ।

वैश्वानराय मीह्लुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद्भाः ।
अनूनेन बृहता वक्षथेनोपस्तभायदुपमिन्न रोधः ॥१॥
मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान् ।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यद्वो अग्निः ॥२॥
साम द्विर्वा महि तिग्मभृष्टिः सहसूरेता वृषभस्तुविष्मान् ।
पदं न गोरपगूहलं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु व्रोचन्मनीषाम् ॥३॥
प्रतां अग्निर्वभसत्तिग्मजंभस्तपिष्ठेन शोचिषायः सुराधाः ।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥४॥

१ समान रूपसे प्रीतियुक्त होकर हम यजमान वैश्वानर नामक अभीष्टवर्षी, महान् दीप्ति-युक्त अग्निको किस प्रकारसे हव्य प्रदान करें? स्तम्भ जिस तरहसे छादन (छप्पर) को धारण करता है, उसी तरहसे वे सम्पूर्ण अतएव बृहत् शरीर द्वारा द्युलोकका धारण करते हैं।

२ हे होताओ, जो अग्निदेव हव्ययुक्त होकर मरणशील और परिपक्व बुद्धिविशिष्ट हम यजमानोंको धन दान करते हैं, उनकी निन्दा मत करो। वे मेधावी, अमर और प्रज्ञावान् हैं। वे वैश्वानर, नेतृश्रेष्ठ एवम् महान् हैं।

३ मध्यम और उत्तम रूप स्थानद्वयको परिव्याप्त करनेवाले, तीक्ष्ण तेजोविशिष्ट, प्रभूत सारवान्, अभीष्टवर्षी और धनवान् अग्नि अत्यन्त गुप्त गोपदकी तरह रहस्य हैं। वे ज्ञातव्य हैं। महान् स्तोत्रको विशेष रूपसे जानकर विद्वान् हमें कहें।

४ विद्वान् मित्र और वरुणके प्रिय एवम् रिथर तेजको जो द्वेषी हिंसित करता है, उसे सुन्दर धनविशिष्ट और तीक्ष्णदन्त अग्नि अत्यन्त सन्तापकर तेज द्वारा, दग्ध करें।

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।

पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पद्मजनता गभीरम् ॥५॥

इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।

वृहद्वाथ घृपता गभीरं यद्दं पृष्टं पूयसा सप्तधातु ॥६॥

तमिन्वेद्वासमना समानमभिक्रत्वा पुनती धीतिरश्याः ।

ससस्य चर्मन्नधिचारुपृश्नेरग्रे रूप आरुपितं जवारु ॥७॥

पूवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहाहितमुप निणिग्वदन्ति ।

यदुस्त्रियाणामप वारिव व्रन् पाति प्रियं रूपो अग्रं पदं वेः ॥८॥

इदमुत्यन्महि महामनीकं यदुस्त्रिया सचत पूव्यं गोः ।

ऋतस्य पदे अधिदीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघुयद्विवेद ॥९॥

५ भ्रातृरहिता, विपथगाग्निनी योषित्की तरह तथा पतिविद्वेषिणी दुष्टाचारिणी स्त्रीकी तरह यज्ञविहीन, अग्निविद्वेषी, सत्यरहित तथा सत्यवचनशून्य पापी नरकस्थानको उत्पन्न करता है ।

६ हे शोधक अग्नि, हम तुम्हारे कर्मका परित्याग नहीं करते हैं। श्रद्धा व्यक्तिको जैसे गुरु भार दिया जाता है, उसी तरह तुम हमें प्रभूत धन दान करो। वह धन शत्रुधर्पक, अन्नयुक्त, दूसरों-के द्वारा अनवगाहनीय महान् स्पर्शनयोग्य एवम् सात प्रकार (सात ग्राम्य पशु और सात वन्य पशु) का है ।

७ यह सुयोग्य एवम् सबके प्रति समान शोधयित्रो स्तुति, उपयुक्त पूजाविधिके साथ वैश्वानरके निकट शीघ्र गमन करे। वह वैश्वानरके आरोहणकारी दीप्त मण्डल पृथ्वीके निकटसे अचल घुलोकके ऊपर चित्रण करनेके लिये, पूर्ण दिशामें आरोपित हुई है ।

८ लोग कहते हैं कि, दोग्धागण जलकी तरह जिस दुग्धका दोहन करते हैं, उस दुग्ध को वैश्वानर गुहामें छिपा रखते हैं। वे विस्तीर्ण पृथ्वीका प्रिय एवम् श्रेष्ठ स्थानकी रक्षा करते हैं। मेरे इस वाक्यके अतिरिक्त और क्या वक्तव्य हो सकता है ?

९ क्षीरप्रसविणी गौ अग्नि होत्रादि कर्ममें जिनकी सेवा करती है, जो अन्तरिक्षमें अत्यन्त दीप्तिमान् हैं, जो गुहामें निहित हैं, जो शीघ्र स्पन्दमान हैं और जो शीघ्र गमनकारी हैं, वे महान् और पूज्य हैं। सूर्य मण्डलात्मक वैश्वानरको हम जानते हैं ।

अधद्यु तानः पित्रोः सचासामनुत गृह्यं चारु पृथ्नेः ।
 मातुष्पदे परमे अन्तिषद्गोवृष्णः शोचिषः पूयतस्य जिह्वा ॥१०॥
 ऋतं वोचे नमसा पृच्छमानस्तवाशसा जातवेदो यदीदम् ।
 त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदुद्रविणं यत् पृथिव्याम् ॥११॥
 किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदाश्चकित्वान् ।
 गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म ॥१२॥
 का मर्यादा वायुना कद्ध गोममच्छा गमेम रघवो न वजम् ।
 कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरौ वर्णेन ततनन्नुपासः ॥१३॥
 अनिरेण वचसा फल्ग्वेन पूतीत्येन कृधुना तृपासः ।
 अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥ १४ ॥

१० इसके अनन्तर पिता-मातास्वरूप धावापृथिवीके मध्यमें व्याप्त होकर दीप्तिमान् वैश्वानर गौके ऊध्रःप्रदेशमें निगूढ रमणीय दुग्धको मुख द्वारा पान करनेके लिये प्रबोधित हों । अमी-ष्टवर्षी, दीप्त और प्रयत्न वैश्वानरकी जिह्वा माता गौके ऊध्रःप्रदेशरूप उत्कृष्ट स्थानमें, पान करनेकी इच्छासे, वर्तमान है ।

११ हम यजमान पूछे जानेपर नमस्कारपूर्वक, सत्य बोलते हैं । हे जातवेदा, तुम्हारी स्तुति द्वारा यदि हम इस धनको प्राप्त करें, तो तुम्हीं इस धनके स्वामी होओ । तुम सम्पूर्ण धनके स्वामी होओ । पृथ्वीमें जितने धन हैं और द्युलोकमें जितने धन हैं, उन सब धनोंके तुम स्वामी हो ।

१२ इस धनका साधनभूत धन क्या है ? इसका हितकर धन क्या है ? हे जातवेदा, तुम जानते हो, हमें कहो । इस धनकी प्राप्तिके लिये जो मार्ग है, उसका गूढ और उत्कृष्ट उपाय हमसे कहो ? हम जिससे गन्तव्य स्थानको निन्दित होकर नहीं प्राप्त करें ।

१३ पूर्व आदि सीमा क्या है ? पदार्थ ज्ञान क्या है ? और रमणीय पदार्थसमूह क्या है ? शीघ्रगामी अश्व जिस तरहसे संग्रामके अभिमुख गमन करता है, उसी तरह हम इन्हें अधिगत करेंगे । द्युतिमती, मरणरहिता और आदित्यकी पत्नी प्रसवित्री उषा किस समय हम लोगोंके लिये प्रकाशित होकर व्याप्त होंगी ?

१४ हे अग्नि, अन्नरहित, उक्थ मन्त्र और आरोपणीय अल्पाक्षर वचन द्वारा अतृप्त मनुष्य अभी इस लोकमें तुम्हें क्या कहता है ? अर्थात् हविर्विहीन वाक्य द्वारा कुछ लाभ नहीं हो सकता है । हविरादि साधनसे हीन जन दुःख प्राप्त करते हैं ।

अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं नम आस्रोच ।
रुद्राद्वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ॥१५॥

६ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

ऊर्ध्व ऊपुणो अध्वरस्य होतरग्नो तिष्ठ देवताता यजीयान् ।
त्वं हि विद्वमभ्यसि मन्म प्रवेधसश्चित्तरसि मनीषाम् ॥१॥
अमूरो होता न्यसादि विद्वश्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः ।
ऊर्ध्व भानुं सवितेवाश्रन्मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ॥२॥
यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः ।
उदुस्वर्स्नवजा नाक्त्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः ॥३॥

१५ समिद्ध, अभीष्टवर्षों और निवासप्रद अग्निका तेजःसमूह, यज्ञगृहमें, दीप्त होता है । यजमानके मद्गलके लिये वे दीप्त तेजका परिधान करते हैं; इसलिये उनका रूप रमणीय है । वे अनेक यजमानों द्वारा स्तुत होकर द्योतित होते हैं, जैसे अश्व आदि धनसे राजा द्योतित होता है ।

१ हे यजमानता अग्नि, तुम श्रेष्ठ याज्ञिक हो । तुम हम लोगोंसे ऊर्ध्व स्थानमें अवस्थिति करो । तुम सम्पूर्ण शत्रुओंके धनको जीतो । तुम स्तोताओंकी स्तुतिको प्रवर्द्धित करो ।

२ प्रगल्भ, होमनिष्पादक, हर्षयिता और प्रकृष्ट ज्ञानविशिष्ट अग्निदेव यज्ञमें, प्रजाओंके मध्यमें, स्थापित होते हैं । वे उदित सूर्यकी तरह ऊर्ध्वमुख होते हैं; और, स्तम्भकी तरह, धुलोकके ऊपर, धूमका धारण करते हैं ।

३ संयत और पुरातन ज्ञान घृतपूर्ण हुआ है । यज्ञको दीर्घ करनेवाले अध्वर्युगण प्रदक्षिण करते हैं । नवजात यूप उन्नत होता है । आक्रमणकारी और सुदीप्त कुठार पशुओंके निकट गमन करता है ।

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुषाणो अस्थात् ।

पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्येति प्रदिव उराणः ॥४॥

परि त्मना मितद्रुरेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।

द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वाभुवना यदभ्राट् ॥५॥

भद्रा ते अग्ने स्वनीक सन्दृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।

न यत्ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वीरेप आयुः ॥६॥

न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।

अधा मित्रो न सुधितः पावकोऽग्निर्दीदाय मानषीषु विक्षु ॥७॥

द्विर्यं पञ्च जीजनन्त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु ।

उषर्बुधमथर्यो नदन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ॥८॥

४ कुशके विस्तृत होनेपर और अग्नि समिद्ध होनेपर अध्वर्यु, देनोंको प्रीत करनेके लिये, उत्थित होते हैं । होमनिष्पादक और पुरातन अग्नि अल्प हव्यको भी बहुत कर देते हैं तथा पशुपालकोंकी तरह पशुओंके चारो तरफ तीन बार गमन करते हैं ।

५ होता, हर्षदाता, मिष्टभाषी और यज्ञवान् अग्नि परिमितगति होकर पशुओंके चारो तरफ गमन करते हैं । अग्निका दीप्तिसमूह, अश्वकी तरह, चारो तरफ धावित होता है । अग्नि जब प्रदीप्त होते हैं, तब समस्त भूतजात भीत होते हैं ।

६ हे सुन्दर ज्वालाविशिष्ट अग्नि, तुम भीतिजनक हो और सर्वत्र व्याप्त हो । तुम्हारी मनोहर और कल्याणी मूर्ति अच्छी तरहसे द्रष्ट होती है । रात्रि अन्धकार द्वारा तुम्हारी दीप्तिको निवारित नहीं कर सकती है । राक्षस आदि तुम्हारे शरीरमें पापको नहीं रख सकते हैं ।

७ हे वृष्टिको उत्पन्न करनेवाले वैश्वानर, तुम्हारा दान (या दीप्ति) किसीके द्वारा निवारित नहीं हो सकता । मातापिता-स्वरूप धावापृथिवी जिसे प्रपित करनेमें शीघ्र समर्थ नहीं होती है, वह सुतृप्त और शोधक अग्नि मनुष्योंके मध्यमें, सखाकी तरह, दीप्तिमान् होते हैं ।

८ मनुष्योंकी दसो अँगुलियाँ, स्त्रीकी तरह, जिस अग्निको उत्पन्न करती हैं, वह अग्नि उषाकालमें बुध्यमान, हव्यभाजी, दीप्तिमान्, सुन्दर-वदन और तीक्ष्ण कुठारकी तरह शत्रुक्षपी राक्षसोंके हन्ता हैं ।

तव त्वे अग्ने हरितो वृतम्ना रोहितास ऋञ्चश्चः स्वश्चः ।
 अरुपासो वृषण ऋजुमुष्का आदेवतातिमहन्त दस्माः ॥६॥
 ये हृत्ये ते सहमाना अयासस्त्वेपासो अग्ने अर्चयश्चरन्ति ।
 श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्णवसो मारुतं न शर्धः ॥१०॥
 अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यूधाः ।
 होतारमग्निं मनुषो निपेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥११॥

७ सूक्त

यसि देवता । यामेभ श्रियि । जगती, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
 यमत्तवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशंविशं ॥१॥

१ हे अग्नि, तुम्हारे धे अथ हमारे यत्के अभिमुख आहत होते हैं । उनकी नासिकासे फेन निर्गत होता है । धे लोहितवर्ण, अक्षुद्रिल तथा सुन्दरगामो, दीप्तिमान्, युवा, सुगठित और दर्शनीय है ।

१० हे अग्नि, तुम्हारी यह शत्रुघोकां अभिभूत करनेवाली, गमनशील, दीप्त और पूजनीय रश्मियां, मन्त्रोकां तरह, अत्यन्त ध्यनि करती हैं, जब धे अथर्वकी तरह गन्तव्य स्थानों जाती हैं ।

११ हे समिद्ध अग्नि, तुम्हारे लिये हम लोगोंने स्तोत्र किया है । होता उक्थ (शस्त्र रूप स्तोत्र) का उच्चारण करते हैं । यजमान तुम्हारा यजन करते हैं । अतएव तुम हम लोगोंके भय दो । मनुष्योंके प्रद्वलनीय होता, अग्निकी पूजा करनेके लिये, ऋत्विक् आदि पशु आदि धनकी कामनेसे, उर्पाविष्ट हुए हैं ।

१ अत्रवान् आदि भृगुवंशीयानि, जन्के मध्यमे, दावादि-रूपसे दर्शनीय एवम् समस्त लोक-
 ईश्वर अग्निको प्रदीप्त किया था । ये होता, याजिकश्रेष्ठ, स्तुतिभाजन और देवश्रेष्ठ अग्नि य-
 कारियों द्वारा संस्थापित हुए हैं ।

अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम् ।
 अधा हि त्वा जग्ध्रिरे मर्तासो विद्वीड्यम् ॥२॥
 ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो धामिव स्तुभिः ।
 विश्वेषामध्वराणां हस्कतारं दमेदमे ॥३॥
 आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
 आ जध्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥४॥
 तमीं होतारमानुषक् चिकित्वांसं निषेदिरे ।
 रण्वं पावकशोचिवं यजिष्ठं सप्तधामभिः ॥५॥
 तं शश्वतीषु मातृषु वन आवीतमश्रितम् ।
 चित्रं सन्तं गुहाहितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ॥६॥
 ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य सामनूणयन्त देवाः ।
 महां अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ॥७॥

२ हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् और मनुष्यों द्वारा स्तुतियोग्य हो। तुम्हारी दीप्ति कब प्रसृत होगी? मर्त्य लोग तुरहें ग्रहण करते हैं।

३ मायारहित, विज्ञ, नक्षत्र-परिवृत ध्रुलोककी तरह और समस्त यज्ञके वृद्धिकारक अग्निके दर्शन करके ऋत्विक् आदि प्रत्येक यज्ञगृहमें उनका ग्रहण करते हैं।

४ जो अग्नि प्रजाओंको अभिभूत करते हैं, उन्हीं शीघ्रगामी, यजमानके दूत, केतु-स्वरूप और दीप्तिमान् अग्निका आनयन, समस्त प्रजाओंके लिये, मनुष्यगण करते हैं।

५ उस होता और विद्वान् अग्निका अध्वर्यु आदि मनुष्योंने यथास्थानपर उपविष्ट कराया है। वे रमणीय, पवित्र दीप्तिविशिष्ट, याज्ञिकश्रेष्ठ और सप्त-तेजोयुक्त हैं।

६ मातृ-स्वरूप जलसमूहमें और वृक्षसमूहमें विद्यमान, कमनीय, दाह-भयसे प्राणियों द्वारा असेवित, विचित्र, गुहामें निहित, सुचिन्न और सर्वत्र हव्यग्राही उस अग्निको अध्वर्यु आदि मनुष्योंने उपविष्ट कराया है।

७ देवगण निद्रासे विमुक्त होकर अर्थात् उपाकालमें, जलके स्थानस्वरूप सम्पूर्ण यज्ञमें, जिस अग्निको स्तोत्र आदिके द्वारा प्रसन्न करते हैं, वह महान्, सत्यवान् अग्नि नमस्कारपूर्वक दत्त हव्यको ग्रहण करके, सदा यजमानकृत यज्ञको अवगत करें—जानें।

वेरध्वरस्य दूस्यानि विद्वानुभे अन्तारोदसी सञ्चिकित्वान् ।
 दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ॥८॥
 कृष्णं त एम रुशतः पुरोभाश्चरिष्णवर्चिर्वपुषामिदेकम् ।
 यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥९॥
 सद्योजातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।
 वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्नादयते विजम्भैः ॥१०॥
 तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषु दूतं कृणुते यद्वो अग्निः ।
 वातस्य मेडिं सचते निजूर्वनाशुः नः वाजयते हिन्वे अर्वा ॥११॥



८ हे अग्नि तुम विद्वान् हो । तुम यज्ञके दूत-कार्यको जानते हो । इन दोनों धावापृथिवीके मध्यमें अवस्थित अन्तरिक्षको तुम भली भाँतिसे जानते हो । तुम पुरातन हो । तुम अल्प हृद्यको बहुत कर देते हो । तुम विद्वान्, श्रेष्ठ और देवोंके दूत हो । तुम देवताओंको हवि देनेके लिये स्वर्गके आरोहणयोग्य स्थानमें जाते हो ।

९ हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् हो । तुम्हारा गमनमार्ग कृष्णवर्ण है । तुम्हारी दीप्ति पुरोवतिनी है । तुम्हारा सञ्चरणशील तेज सम्पूर्ण तेजस पदार्थके मध्यमें श्रेष्ठ है । तुम्हें नहीं पाकर यजमान लोग तुम्हारी उत्पत्तिके कारण-स्वरूप काष्ठको धारण करते हैं । उत्पन्न होकर तुम तुरत ही यजमानके दूत होते हो ।

१० अरणिमन्थनके अनन्तर उत्पन्न अग्निका तेज, ऋत्विक् आदिके द्वारा, दृष्ट होता है । जब अग्नि-शिखाको लक्ष्य करके वायु बहती है, तब अग्नि वृक्ष-सङ्घमें तीक्ष्ण ज्वालाको संयुक्त कर देते हैं । और, स्थिर अन्नरूप काष्ठ आदिको, तेजके द्वारा, विखण्डित करते हैं अर्थात् भक्षण करते हैं ।

११ अग्नि क्षिप्रगामी रश्मिसमूह द्वारा अन्नरूप काष्ठ आदिको शीघ्र दग्ध करते हैं । महान् अग्नि अपनेको क्षिप्रगामी दूत बनाते हैं । वे काष्ठसमूहको विशेषरूपसे दग्ध करके वायुके बलके साथ सङ्गत होते हैं । घुड़सवार जैसे अश्वको बलवान् करता है, वैसे ही गमनशील अग्नि अपनी रश्मिको बलवान् करते हैं और प्रेरित करते हैं ।

८. शुकृत्

अग्नि देवता । चामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृजसे गिरा ॥१॥
 स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः । स देवाँ एह वक्षति ॥२॥
 स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे । दाति प्रियाणि चिद्वसु ॥३॥
 स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते । विद्राँ आरोधनं दिवः ॥४॥
 ते स्याम अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः । य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥५॥
 ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो विशृण्विरे । ये अग्ना दधिरे दुवः ॥६॥
 अस्मे रायो दिवेदिवे सञ्चरन्तु पुरुस्पृहः । अस्मे वाजास ईरताम् ॥७॥
 स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम् । अति क्षिप्रेव विध्यति ॥८॥

१ हे अग्नि, तুম सब धनके स्वामी अथवा सर्वविद्, देवताओंको हव्य पहुँचानेवाले, मरणधर्म-रहित, अतिशय यजनशील और देवदूत हो । हम स्तुति द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते हैं ।

२ अग्नि यजमानोंके अभीष्टफल-साधक धनके दानको जानते हैं । वे महान् हैं । वे देव-लोकके आरोहण-स्थानको जानते हैं । वे इन्द्रादि देवताओंको यज्ञमें बुलावें ।

३ वे द्युतिमान् हैं । इन्द्रादि देवताओंको यजमानों द्वारा क्रमपूर्वक नमस्कार करना जानते हैं । वे यज्ञगृहमें यज्ञामिलाषी यजमानको अभीष्ट धन दान करते हैं ।

४ अग्नि होता है । वे दूत-कर्मको जान करके और स्वर्गके आरोहण-योग्य स्थानको जान करके, द्यावापृथिवीके मध्यमें, गमन करते हैं ।

५ जो हव्य दान देकर अग्निको प्रीत करता है, जो उन्हें वर्द्धित करता है और जो यजमान उन्हें काष्ठ द्वारा प्रदीप्त करता है, उसी यजमानकी तरह हम हों ।

६ जो यजमान अग्निकी परिचर्या करते हैं, वे अग्निका सम्भजन करके धन द्वारा विख्यात होते हैं और पुत्र-पौत्र आदिके द्वारा भी विख्यात होते हैं ।

७ ऋत्विक् आदिके द्वारा अभिलपित धन हम यजमानोंके निकट प्रति-दिन आगमन करे । अन्न हम लोगोंको (यज्ञकार्यमें) प्रेरित करें ।

८ अग्नि मेधावी है । वे बल द्वारा मनुष्योंके विनाशयोग्य दुरितको, विशेष रूपसे, विनष्ट करे ।

८ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

अग्ने मृड महँ असिय ईमा देवयुं जनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ॥१॥
 स मानुषीषु दूडभो विश्वु प्राचीरमर्त्यः । दूतो विश्वेषां भुवत् ॥२॥
 स सन्न परिणीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु । उत पोता निषीदति ॥३॥
 उतग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे । उत ब्रह्मा निषीदति ॥४॥
 वेपिह्यञ्चारीयतामुपवक्ता जनानाम् । हव्या च मानुषाणाम् ॥५॥
 वेपीद्वस्य दूत्यम् यस्य जुजोषो अध्वरम् । हव्यं मर्तस्य वोह्वे ॥६॥
 अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः । अस्माकं शृणुधी हवम् ॥७॥
 परि ते दूडभो रथोस्माँ अङ्गनोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥८॥



१ हे अग्नि, तुम हम लोगोंको सुखी करो। तुम महान् हो। तुम देवोंकी कामना करने-वाले हो। तुम यजमानके निकट कुशपर बैठनेके लिये आगमन करते हो।

२ राक्षसों आदि द्वाग अर्हिसनीय अग्नि मनुष्यलोकमें, प्रकर्ष रूपसे, गमन करते हैं। वे मृत्युचिचर्जित हैं। वे समस्त देवोंके दूत हैं।

३ यज्ञगृहमें ऋत्विक् आदिके द्वारा नीयमान होकर अग्नि यज्ञोंमें स्तुतियोग्य होता है। अथवा पोता होकर यज्ञ-गृहमें प्रवेश करते हैं।

४ अथवा यज्ञमें अग्नि देवपत्नी या अध्वर्यु होते हैं अथवा यज्ञगृहमें वे गृहपति होते हैं अथवा ब्रह्मा नामक ऋत्विक् होकर उपवेशन करते हैं।

५ हे अग्नि, तुम यज्ञाभिलाषी मनुष्योंके हव्यकी कामना करते हो। तुम अध्वर्यु आदिके सय कर्मोंको जाननेवाले ब्रह्मा हो। तुम यज्ञकर्मोंके अविफल उपद्रष्टा या सदस्य हो।

६ हे अग्नि, तुम हव्य वहन करनेके लिये जिस यजमानके यज्ञकी सेवा करते हो, उसके दौत्य कार्यकी भी तुम कामना करते हो।

७ हे अङ्गिरा अग्नि, तुम हमारे यज्ञकी सेवा करो, हमारे हव्यका सेवन करो और हमारे आह्वान-कारक स्तोत्रका श्रवण करो।

८ हे अग्नि, तुम जिस रथ द्वारा समस्त दिशामें गमन करके हवि देने वाले यजमानकी रक्षा करते हो, तुम्हारा वही अर्हिसनीय रथ हम यजमानके चारो तरफ व्याप्त हो।

१० सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । पदपङ्क्ति, उष्णिक् आदि छन्द ।

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामात ओहैः ॥१॥

अधाह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो वभूथ ॥२॥

एभिर्नो अकैर्भवानो अर्वाङ्स्वर्णज्योतिः ।

अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥३॥

आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोग्ने दाशेम ।

प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥४॥

तव स्वादिष्ठाग्ने संदष्टिरिदा चिदह इदा चिदक्तोः ।

श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ॥५॥

घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् ।

तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥६॥

१ हे अग्नि, आज हम ऋत्विग्गण, इन्द्रादि-प्रापक स्तुति द्वारा, तुम्हें वर्द्धित करते हैं। अश्व जैसे सवारका वहन करता है, उसी तरह तुम हव्यवाहक हो। तुम यज्ञकर्ताकी तरह उपकारक हो। तुम भजनीय हो और अतिशय प्रिय हो।

२ हे अग्नि, तुम इसी समय हमारे भजनीय, प्रवृद्ध, अभीष्टफल-साधक, सत्यभूत और महान् यज्ञके नेता होते हो।

३ हे अग्नि, तुम ज्योतिर्मान् सूर्यकी तरह समस्त तेजसे युक्त और शोभन अन्तःकरणवाले हो। तुम हम लोगोंके अर्चनीय स्तोत्र द्वारा नीत होओ; और, हम लोगोंके अभिमुख आगमन करो।

४ हे अग्नि, आज हम ऋत्विक् वचनों द्वारा स्तुति करके तुम्हें हव्य दान करेंगे। सूर्यकी रश्मिकी तरह तुम्हारी शोधक ज्वाला शब्द करती है। अथवा मेघकी तरह तुम्हारी ज्वाला शब्द करती है।

५ हे अग्नि, तुम्हारी प्रियतम दीप्ति अहर्निश अलङ्कारकी तरह, पदार्थोंको आश्रयित करनेके लिये, उनके समीप शोभा पाती है।

६ हे अन्नवान् अग्नि, तुम्हारी मूर्ति शोधित घृतकी तरह, पापरहित है। तुम्हारा शुद्ध, रमणीय तेज अलङ्कारकी तरह दीप्त होता है।

कृतं चिद्धिम्ना सनेमि द्वेषोश्च इनोपि मर्तात् ।

इत्या यजमानाद्वावः ॥७॥

शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवेषु युष्मे ।

सा नो नाभिः सदने यस्मिन्नूधन् ॥८॥



११ सूक्त

२ अनुवाक । अग्नि देवता । वाग्देव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आरोचते सूर्यस्य ।

ऋद्दृशे दृद्दृशे नक्तया चिदरुक्षितं दृश आरूपे अन्नम् ॥१॥

विपाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः ।

विश्वेभिर्यद्वावनः शुक्रदेवैस्तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ॥२॥

० हे सत्यवान् अग्नि, तुम यजमानों द्वारा कृत हो; तथापि चिरन्तन हो। तुम यजमानोंके पापको निश्चय ही दूर कर देते हो।

८ हे अग्नि, तुम घृतिमान् हो। तुम्हारे प्रति जो हम लोगोंका सख्य और भ्रातृभाव है, यह मङ्गलजनक हो। यह सखित्व और भ्रातृकार्य, देवोंके स्थानमें और सम्पूर्ण यज्ञमें हम लोगों का, नामियन्धन हो।

१ हे कल्पवान् अग्नि, तुम्हारा भजनीय तेज सूर्यके समीपभूत दिवसमें चारों तरफ दीप्तिमान् होता है। तुम्हारा रोचमान और दर्शनीय तेज रात्रिमें भी दृश्यमान होता है। तुम दृषयान् हो। तुम्हारे उद्देशसे स्निग्ध और दर्शनीय अन्न द्रुत होता है।

२ हे बहुजन्मा अग्नि, तुम यज्ञकारियों द्वारा स्तुत होकर स्तुतिकारी यजमानके लिये पुण्य लोकके द्वारको विमुक्त करो। हे सुन्दर तेजोविशिष्ट अग्नि, देवोंके साथ यजमानको तुम जो धन देते हो, हमें भी वही प्रभूत और अमिलपित धन दो।

त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
 त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्याधिये दाशुषे मर्त्याय ॥३॥
 त्वद्वाजी वाजम्भरो विहाया अभिष्टिकृञ्जायते सत्यशुष्मः ।
 त्वद्रयिर्देवजूतो मयोभुस्त्वदाशुर्जुबा अग्ने अर्वा ॥४॥
 त्वामग्ने पृथमं देव यन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।
 द्वेषो युतमाविवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥५॥
 आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विद्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
 दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित् सचसे स्वस्ति ॥६॥

३ हे अग्नि, हविर्वहन और देवतानयन आदि अग्नि-सम्वन्धी कार्य तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं, स्तुतिरूप वचन तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं और अराधनयोग्य उक्थ तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं। सत्यकर्मा और हव्यदाता यजमानके लिये वीर्ययुक्त रूप और धन भी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं।

४ हे अग्नि, बलवान्, हव्यवाहक, महान्, यज्ञकारी और सत्ययल-विशिष्ट पुत्र तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं। देवों द्वारा प्रेरित सुखप्रद धन तुमसे ही उत्पन्न होता है और शीघ्रगामी, मतिविशिष्ट तथा वेगवान् अश्व तुमसे ही उत्पन्न हुआ है।

५ हे अमर अग्नि, देवाभिलाषी मनुष्य स्तुति द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं। तुम देवोंमें आदि देव हो। तुम द्योतमान हो। तुम्हारी जिह्वा देवोंको हृष्ट करनेवाली है। तुम पापोंको पृथक् करनेवाले हो और राक्षसोंको दमन करनेकी इच्छावाले हो। तुम गृहपति और प्रगल्भ हो।

६ हे बलपुत्र अग्नि, तुम रात्रि कालमें मङ्गलजनक और द्योतिमान् होकर हमारे कल्याण-के लिये सेवा करते हो। जिस कारण तुम यजमानोंको विशेष रूपसे पालन करते हो, उसीसे तुम हम लोगोंके निकटसे अमतिको दूर करो। हम लोगोंके निकटसे पापको दूर करो और हमारे निकटसे समस्त दुर्मतिको दूर करो।

१३ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् बन्ध ।

यस्त्वामग्ने इन्धते यतस्तु क् त्रिस्ते अन्नं कृणवत् सस्मिन्नहन् ।

स सु द्युन्मैरभ्यस्तु प्रसक्षन्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥१॥

इध्मं यस्तो जभरच्छ्रमाणो महो अग्ने अनीकमासपर्यन् ।

स इधानः प्रति दोषामुपासं पुष्यनूयि सचते घ्नन्नमित्रान् ॥२॥

अग्निरीशं बृहतः क्षत्रियस्याग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।

दधाति रत्नं विधते यविष्ठो व्यानुपङ्मस्याय स्वधावान् ॥३॥

यच्चिद्धि ते पुरुपत्रा यविष्ठाचित्तिभिश्चक्रुमा कच्चिदागः ।

कृधीष्वस्मां अदितेरनागान् व्येनांसि शिश्रथो विष्वगश्ने ॥४॥

महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाहं वानामुत् मर्त्यानाम् ।

मा ते सखायः सदमिद्रिपाम यच्छा तोकाय तनयाय शंयोः ॥५॥

१ हे अग्नि, जो यजमान स्रक्को संयत करके तुम्हें प्रदीप्त करता है, जो व्यक्ति तुम्हें प्रतिदिन तीनों सघनोंमें हविरन्न देता है, हे जातवेदा, वह व्यक्ति तुम्हारे तृप्तिकर (इन्धन-दान आदि) कार्य द्वारा तुम्हारे प्रसङ्गमान तेजको जानकर धन द्वारा शत्रुओंको पराभूत करता है ।

२ हे अग्नि, जो तुम्हारे लिये होमसाधन काष्ठका आहरण करता है, हे महान् अग्नि, जो व्यक्ति काष्ठके अन्वेषणमें श्रान्त होकर तुम्हारे तेजकी परिचर्या करता है और रात्रिकाल तथा दिवाकालमें जो तुम्हें प्रदीप्त करता है, वह यजमान प्रजा और पशुओं द्वारा पुष्ट होकर शत्रुओंको विनष्ट करता है और धन लाभ करता है ।

३ अग्नि महान् बलके ईश्वर तथा उत्कृष्ट अन्न और पशु-स्वरूप धनके स्वामी हैं । युधत्तम और अन्नवान् अग्नि परिचर्या करनेवाले यजमानको रमणीय धनसे संयुक्त करें ।

४ हे युधत्तम अग्नि, यद्यपि तुम्हारे परिवारकोंके मध्यमें हम अज्ञानवश कुछ पाप करते हैं; तथापि तुम पृथ्वीके निकट हमें सम्पूर्ण रूपसे निष्पाप कर दो । हे अग्नि, सर्वत्र विद्यमान हमारे पापोंको तुम मिथिल करो ।

५ हे अग्नि, हम तुम्हारे सखा हैं । हमने इन्द्रादि देवोंके निकट अथवा मनुष्योंके निकट जो पाप किया है, उस महान् और विस्तृत पापसे हम कभी भी विघ्न नहीं पावें । तुम हमारे पुत्र और पौत्रको पाप-रूप उपद्रवोंसे शान्ति और सुकृतजनित सुख दो ।

यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित् पदिषिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवोष्वस्मन् मुञ्चताव्यंहः प्रतार्यन्ते प्रतरं न आयुः ॥६॥

१३ सूक्त

अग्नि देवता अथवा जिस मन्त्रमें जिस देवताका नामोल्लेख है, वही देवता ।

वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रत्यशिरुषसामग्रमख्यद्विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
यातमश्विना सुकृतो दुरोणमुत् सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥१॥
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्दृष्ट्सं दविध्वद्भविषो न सत्वा ।
अनुव्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत् सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥२॥
यं सोमकृण्वन्तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवश्यन्तो अर्थम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्तयद्हीः स्पर्शं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥३॥

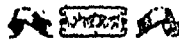
६ हे पूजार्ह और निवासयिता अग्नि, तुमने जिस तरह पदबद्ध गौरी गौको विमुक्त किया था, उसी तरह हम लोगोंको पापसे विमुक्त करो । हे अग्नि, हमारी आयु तुम्हारे द्वारा प्रवृद्ध है, तुम इसे और प्रवृद्ध करो ।

१ शोभन मनवाले अग्नि तमोनिवारिणी उपाके, धनप्रकाशकालके, पुर्य ही प्रवृद्ध होते हैं । हे अश्विद्वय, तुम यजमानके गृहमें गमन करो । ऋत्विक् आदिके प्रेरक सूर्यदेव अपने तंजके साथ उपाकालमें प्रादुर्भूत होते हैं ।

२ सवितादेव उन्मुख किरणको विकासित करते हैं । रश्मियाँ जब सूर्यको घुलोकमें आरूढ़ कराती हैं, तब वरुण, मित्र और अन्यान्य देवगण अपने-अपने कर्मोंका अनुगमन करते हैं, जैसे बलवान् वृषभ गौओंकी कामना करके, धूलि विकीर्ण करता हुआ, गौओंका अनुगमन करता है ।

३ सृष्टि करनेवाले देवोंने संसारके कार्यका परित्याग नहीं करके, सर्वतोभावेसे अन्धकारको दूर करनेके लिये, जिस सूर्यको सृष्ट किया था, उस समस्त प्राणिसमूहके विज्ञाता सूर्यका ध्यान महान् हरिनामक सप्ताश्व करते हैं ।

वर्हिण्टेभिर्विहरन्यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म ।
 दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥४॥
 अनायतो अनिवद्धः कथायं न्यड्डुत्तानोव पद्यते न ।
 कया याति स्वधया को ददर्श दिवःस्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥



१४ सूक्त

श्विन् देवता श्रधया जित मन्त्रं जित देवताका नामोत्तेस हे, वही देवता । वामदेव श्रुपे । त्रिष्टुप् वन्द ।

प्रत्यग्निरुपसो जातवेदा अख्यद्देवो रोचमाना महोभिः ।
 आ नासत्योरुगाया रथेनेमं यज्ञमुय नो यातमच्छ ॥१॥
 ऊध्व केतुं सविता देवो अश्रंज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् ।
 आप्रा द्वावापृथिवी अन्तरिक्षं त्रि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥२॥

१ हे द्युतिमान् सूर्य, तुम जगन्निर्वाहक रसको ग्रहण करनेके लिये तन्तुस्वरूप रश्मि-समूहको विस्तारित करते हो, कृष्णवर्णा रात्रिको तिरोहित करते हो और अत्यन्त बहनसमर्थ शश्वों द्वारा गमन करते हो । कम्पनयुक्त सूर्यकी रश्मियाँ अन्तरिक्षके मध्यमें स्थित चर्मसदृश अन्धकारको दूर करें ।

५ अद्वावर्ती अर्थात् प्रत्यक्ष उपलभ्यमान सूर्यको कोई भी बांध नहीं सकता है । अधो-मुय सूर्य किसी प्रकार भी हिसित नहीं होते हैं । ये किस बलसे ऊर्ध्वमुख भ्रमण करते हैं ? गुल्फोर्ध्वमं सागंधन मन्त्रस्वरूप सूर्य स्वर्गका पालन करते हैं । इसे किसने देखा है ? अर्थात् इस तन्त्रको कोई भी नहीं जानता है ।

१ जातवेदा अग्निके तेजसे दीप्यमाना उपा प्रवृद्ध हुई है । हे प्रभुत गमनशाली अश्विद्वय, तूम दोनों, श्रध द्वारा, हमारे यज्ञके अभिमुख आगमन करो ।

२ सविता देवता समस्त भुवनको आलोकयुक्त करके उन्मुख किरणका आश्रय लेते हैं । सयको विशेष रूपसे देखनेवाले सूर्यने अपनी किरणोंसे द्वावापृथिवी और अन्तरिक्षको परिपूर्ण किया है ।

आवहन्यरुणीज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।

प्रबोधयन्ती सुविताय देव्युषा ईयते सुयुजा रथेन ॥३॥

आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।

इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥४॥

अनायतो अनिवद्धः कथायं न्यङ्कुत्तानोव पद्यते न ।

कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥

१५ सूक्त

१-६ के अग्नि देवता, ७ और ८ के सोमक राजा देवता, ९ और १० के अश्विद्वय देवता ।
वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

अग्निर्होता नो अध्वरं वाजी सन् परिणीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ॥१॥

परि त्रिविष्टचध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ॥२॥

३ धनधारिणी, अरुणचर्णा, ज्योतिःशालिनी, महती, रश्मिविचित्रिता और विदुषी उषा आयी है। प्राणियोंको जागरित करके उषा देवी सुयोजित रथ द्वारा, सुख-प्राप्तिके लिये गमन करती है।

४ हे अश्विद्वय, उपाके प्रकाशित होनेपर अत्यन्त वहनक्षम और गमनशील अश्व तुम्हें इस यज्ञमें ले आवें। हे अभीष्टवर्षिद्वय, यह सोम तुम्हारे लिये है। इस यज्ञमें सोम पान करके हृष्ट होओ।

५ अदूरचर्ची अर्थात् प्रत्यक्ष उपलभ्यमान सूर्यको कोई भी बाँध नहीं सकता है। अधोमुख सूर्य किसी प्रकार भी हिंसित नहीं होते हैं। ये किस बलसे ऊर्ध्वमुख भूमण करते हैं? ध्रुवोत्तम समवेत सतम्भस्वरूप सूर्य स्वर्गका पालन करते हैं। इसे किसने देखा है? अर्थात् इस तत्त्वको कोई भी नहीं जानता है।

१ होम-निष्पादक, देवोंके मध्यमें दीप्यमान और यज्ञार्ह अग्नि हमारे यज्ञमें शीघ्रगामी अश्वकी तरह परिणीत होते हैं।

२ अग्नि देवोंके लिये अन्न धारण करके, प्रतिदिन तीन बार, रथीकी तरह, यज्ञमें परिगमन करते हैं।

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥३॥
 अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते । द्युमाँ अमित्रदम्भनः ॥४॥
 अश्य घा वीर ईव तोग्नेरीशीत मर्त्यः । तिग्मजम्भस्य मीहू षः ॥५॥
 तमर्वन्तं न सानसिमरूपं न दिवः शिशुम् । मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ॥६॥
 बोधग्रन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः । अब्ळा न हूत उदरम् ॥७॥
 उतत्या यजता हरी कुमारात् साहदेव्यात् । प्रयता सद्य आददे ॥८॥
 एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥९॥
 तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् । दीर्घायुषं कृणोतन ॥१०॥



३ अन्नके पालक, मेधावी अग्नि हवि देनेवाले यजमानको समणोय धन देकर हविको चारो तरफसे व्याप्त करते हैं।

४ जो अग्नि देवताके पुत्र सृञ्जयके लिये पूर्व दिशामें स्थित होते हैं और उत्तर वेदी-पर समिद्ध होते हैं, वे शत्रु-नाशकारी अग्नि दीप्तियुक्त हों।

५ स्तुति करनेवाले वीर मनुष्य तीक्ष्ण तेजवाले, अभीष्टवर्षी और गमनशील अग्निके रूपर आधिपत्यका विस्तार करें।

६ यजमान लोग अश्वकी तरह हव्यवाही, द्युलोकके पुत्रमूत सूर्यकी तरह दीप्तिमान और सम्मजनीय अग्निकी प्रतिदिन बारम्बार परिचर्या करें।

७ सहदेवके पुत्र सोमक नामवाले राजाने जब हमें इन दोनों अश्वोंको देनेकी बात कही थी, तब हम उनके निकट आहत होकर अश्वोंको नहीं लाभ करके नहीं निर्गत हुए हैं।

८ सहदेवके पुत्र सोमक राजाके निकटसे, उसी दिन उन पूजनीय और प्रयत्न अश्वोंको हमने ग्रहण किया था।

९ हे द्योतमान अश्विनीकुमारो, तुम दोनोंके तृप्तिकारक सहदेवके पुत्र सोमक राजा सौ वर्षकी आयुवाले हों।

१० हे द्योतमान अश्विनीकुमारो, तुम दोनों सहदेवके पुत्र सोमक राजाको दीर्घायु करो।

१६ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

आसत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
 तस्माँ इन्द्रधः सुषुमासुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥१॥
 अवस्य शूराध्वनो नान्तेस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्वै ।
 शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असूर्याय मन्म ॥२॥
 कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात् ।
 दिव इत्या जीजनत् सप्तकारू नहाच्चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥३॥
 स्वर्यद्वेदि सुदृशीकमकैर्महि ज्योतीरुरुचुर्यद्भ वस्तोः ।
 अन्धातमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४॥

१ ऋजाषी अर्थात् सोमवान् और सत्यवान् इन्द्र हमारे निकट आगमन करें। इनके अश्व हमारे निकट आगमन करें। हम यजमान इन्द्रके उद्देशसे सारविशिष्ट अन्नरूप सोमका अभिषेक करगे। वे स्तुत होकर हम लोगोंके अभीष्टको सिद्ध करें।

२ हे शत्रुओंको अभिमत करनेवाले इन्द्र, इस माध्यन्दिनके सवनमें तुम हम लोगोंको विमुक्त करो, जैसे गन्तव्य मार्गके अन्तमें मनुष्य थोड़ोंको छोड़ देता है। जिससे इस सवनमें हम तुम्हें हृष्ट करें। हे इन्द्र, तुम सर्वविद् हो और असुरोंके हिंसक हो। यजमान लोग, उशनाकी तरह, तुम्हारे लिये मनोहर उक्थका उच्चारण करते हैं।

३ कवि जिस प्रकारसे गूढ़ अर्थका सम्पादन करते हैं, उसी प्रकार अभीष्टवर्षी इन्द्र कार्योका सम्पादन करते हैं। जब सेवनयोग्य सोमका, अधिक परिमाणमें, पान करके इन्द्र हृष्ट होते हैं, तब छुलोकसे सप्त-संख्यक रश्मियोंको सचमुच उत्पन्न कर देते हैं। स्तूयमान रश्मियाँ दिनमें भी मनुष्योंके ज्ञानका सम्पादन करती हैं।

४ जब प्रभूत, ज्योतिःस्वरूप छुलोक रश्मियों द्वारा अच्छी तरहसे दर्शनीय होता है, तब देवगण उस स्वर्गमें निवास करनेके लिये दीप्तियुक्त होते हैं। नेत्रश्रृष्ट सूर्यने आगमन करके, मनुष्योंको अच्छी तरहसे देखनेके लिये, निविड़ अन्धकारको नष्ट कर दिया है।

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
 अतश्चिदस्य महिमा विरेच्यभि यो विश्वाभुवना वभूव ॥५॥
 विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
 अश्मानं चिद्ये विभिदुर्वाचोभिर्ब्रजं गोमन्तमुशिजो विवब्रुः ॥६॥
 अपो वृत्रं वत्रिवांसं पराहन् प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
 प्राणांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥७॥
 अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूव्यं ते ।
 स नो नेता वाजमादर्पि भूरिं गोत्रारुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८॥
 अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।
 उतिभिस्तमिपणो द्यु म्रहूतौ निमायावानब्रह्मा दस्युरत् ॥९॥

५ ऋषीजी अर्थात् सोमविशिष्ट इन्द्र, अमित महिमा धारण करते हैं। वे अपनी महिमाके बलसे धावा और पृथिवी दोनोंको परिपूर्ण करते हैं। इन्द्रने समस्त भुवनोंको अभिभूत किया है। इन्द्रकी महिमा समस्त भुवनोंसे अधिक हुई है।

६ इन्द्र, सम्पूर्ण मनुष्योंके हितकर वृष्टि अदि कार्यको जानते हैं। उन्होंने अभिलाषकारी और मित्रभूत मरुतोंके लिये जलवर्षण किया था। जिन मरुतोंने वचनरूप ध्वनिसे पर्वतोंको विदीर्ण किया था, उन मरुतोंने इन्द्रकी अभिलाषा करके, गौपूर्ण गोशालाका आच्छादन किया है।

७ हे इन्द्र, तुम्हारे लोकपालक वज्रने जलावरक मेघको प्रेरित किया था। चेतनावती भूमि तुमसे सङ्गत हुई थी। हे शूर और वर्षणशील इन्द्र, तुम अपने बलसे लोकपालक होकर समुद्रसम्बन्धी और आकाशस्थित जलको प्रेरित करो।

८ हे बहुजनाहृत इन्द्र, जब तुमने वृष्टिजलको लक्ष करके मेघको विदीर्ण किया था, तब तुम्हारे लिये पहले ही सरमा (देवोंकी कुतिया)ने पणियों द्वारा अपहृत गौओंको प्रकाशित किया था। अङ्गिराओं द्वारा स्तूयमान होकर तुम हम लोगोंको प्रभूत अन्न प्रदान करते हो और हम लोगोंका आदर करते हो।

९ हे धनवान् इन्द्र, मनुष्य तुम्हें सम्मानित करते हैं। तुमने धन प्रदान करनेके लिये कुत्सके अभिसुप्त गमन किया था। याचना करनेपर शत्रुओंके उपद्रवोंसे आश्रय दान द्वारा तुमने उनकी रक्षा की थी। कपटी ऋत्विकोंके कार्योंको अपनी अनुज्ञासे जानकर तुमने कुत्सके धन-लोभी शत्रुको युद्धमें विनष्ट किया था।

आ दस्युन्ना मनसा ग्राह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
 स्वे योनौ निषदत्तं सरूपा वि वां चिकित्सदत्तचिद्ध नारी ॥१०॥
 यामि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदोवातस्य हर्योरोशानः ।
 ऋज्जा वाजं नगर्ध्वं युयूषन् कविर्यदहन् पार्याय भूपात् ॥११॥
 कुत्साय शुष्णमशुषं निबर्हीः प्रापित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।
 सद्यो दस्यून् प्रमृण कुत्स्येन प्रसूरश्चक्रं बृहतादभीके ॥१२॥
 त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुत्रांसमृजिष्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
 पञ्चाशत् कृष्णा निवपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा विदर्दः ॥१३॥

१० हे इन्द्र, तुमने मनमें शत्रुओंको मारनेका संकल्प करके कुत्सके गृहमें आगमन किया था। कुत्स भी तुम्हारे साथ मैत्री करनेके लिये अतिशय आग्रहवान् हुआ था। तब तुम दोनों अपने स्थानमें उपविष्ट हुए थे। तुम्हारी सत्यदर्शिनी भार्या शची तुम दोनोंका समान रूप देख कर संशयान्विता हुई थी।*

११ जिस दिन प्राज्ञ कुत्स ग्रहणीय अन्नका तरह ऋजुगामी अश्वद्वयको अपने रथमें युक्त करके आपत्तिसे निस्तीर्ण होनेमें समर्थ हुए थे, उस दिन हे इन्द्र, तुमने कुत्सकी रक्षा करनेकी इच्छासे उसके साथ एक रथपर गमन किया था। तुम शत्रुनाशक और वायुके सदृश घोड़ोंके अधिपति हो।

१२ हे इन्द्र, तुमने कुत्सके लिये सुखरहित शुष्णका वध किया था। दिवसके पूर्व भागमें तुमने कुयव नामवाले असुरको मारा था। बहुत परिजनोंसे आवृत होकर तुमने उसी समय वज्र द्वारा शत्रुओंको भी विनष्ट किया था। तुमने संग्राममें सूर्यके चक्रको छिन्न कर दिया था।

१३ हे इन्द्र, तुमने पिप्रु नामक असुरको तथा प्रमृद सृगय नामक असुरको विनष्ट किया था। तुमने विदथिके पुत्र ऋजिष्वाको बन्दी बनाया था। तुमने पचास हजार कृष्णवर्ण राक्षसोंको मारा था। जरा जिस तरहसे रूपको विनष्ट करती है, उसी तरहसे तुमने शम्बरके नगरोंको विनष्ट किया था।

* रुह नामके किसी राजर्षिके पुत्रका नाम कुत्स था। ये भी राजर्षि थे। शत्रुओंको हरानेमें असमर्थ होकर, इन्होंने कभी इन्द्रसे सहायता मांगी थी। इन्द्र कुत्सके घर आये थे और उसके शत्रुओंको मार भगाया था। मैत्री हो जानेपर कुत्स भी इन्द्रके घर गये थे। दोनोंके रूपमें इतनी समानता थी कि, इन्द्राणी अपने पति इन्द्रको नहीं पहचान सकी थी।—सायण।

सूर उपाके तन्वं दधानो वियन्ते चेल्यमृतस्य वर्षः ।
 मृगो न हस्ती तविपीमुपाणः सिंहो न भीम आयुधानि विश्रत् ॥१४॥
 इन्द्रं कामा वसूयन्तो अगमन्त्स्वर्मीह्ले न सवने चकानाः ।
 श्रवास्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥१५॥
 तमिद्र इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरुणि ।
 यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षु वाजं भरति स्पाह्वराधा ॥१६॥
 तिग्मा यदरतरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्चूरसुहुके जनानाम् ।
 घोरा यदर्यं समृतिर्भवात्यधस्मानस्तन्वो बोधि गोपाः ॥१७॥
 भुवोविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातो ।
 त्वामनु प्रमतिमाजगन्मोरुशंसो जरित्रे विश्वधस्याः ॥१८॥

१४ हे इन्द्र, तुम मरण-रहित हो । जब तुम सूर्यके निकट अपना शरीर धारण करते हो, तब तुम्हारा रूप प्रकाशित होता है सूर्यके समीप सवका रूप मलिन हो जाता है; किन्तु इन्द्रका रूप और भासमान होता है । हे इन्द्र, तुम गजविशेष मृगकी तरह शत्रुओंको दग्ध करके आयुध धारण करते हो और सिंहकी तरह भयङ्कर होते हो ।

१५ राक्षस-जनित भयको निवारित करनेके लिये इन्द्रकी कामना करनेवाले और धनकी इच्छा करनेवाले स्तोता लोग युद्धसदृश यज्ञमें इन्द्रसे अन्नकी याचना करते हैं, उक्थों द्वारा उनकी स्तुति करते हैं और उनके निकट गमन करते हैं । इन्द्र उस समय स्तोताओंके लिये आवास-स्थानकी तरह होते हैं और रमणीय तथा दर्शनीय लक्ष्मीकी तरह होते हैं ।

१६ जिन इन्द्रने मनुष्योंके हितकर बहुतेरे प्रसिद्ध कार्य किये हैं, जो स्पृहणीय धनविशिष्ट हैं, जो हमारे सदृश स्तोताके लिये प्रहणीय अन्नको शीघ्र लाते हैं, हे यजमानो, हम स्तोता लोग उन इन्द्रका शोभन आह्वान, तुम्हारे लिये करते हैं ।

१७ हे शूरा इन्द्र, मनुष्योंके किसी भी युद्धमें अगर हम लोगोंके मध्यमें तीक्ष्ण अशनि-पात हो अथवा शत्रुओंके साथ अगर हम लोगोंका घोरतर युद्ध हो, तब हे स्वाभिन्, तुम हम लोगोंके शरीरकी रक्षा करना । ऐसा जानो ।

१८ हे इन्द्र, तुम वामदेवके यज्ञकार्यके रक्षक होओ । तुम हिसार-रहित हो । तुम युद्धमें हम लोगोंके सुहृद् होओ । तुम मतिमान हो । हम लोग तुम्हारे निकट गमन करें । तुम सर्वदा स्तोत्रकारियोंके प्रशंसक होओ ।

एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ ।
 द्यावो न द्युन्नरभिसन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वाः ॥१६॥
 एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
 नूचिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोविता तनूपाः ॥२०॥
 नूष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
 अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१॥



१७ सूक्त

इन्द्र देवता । वायदेव ऋषि । त्रिष्टुप् ऋत् ।

त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनुक्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
 त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्तस्त्वजः सिन्धुरंहिना जग्रसानान् ॥१॥

१६ हे धनवान् इन्द्र, हम शत्रुओंको जीतनेके लिये समस्त युद्धमें तुम्हारी अभिलाषा करते हैं। धनी जिस तरह धन द्वारा दीप्तिमान् होता है, हम भी उसी तरह हव्ययुक्त होकर पुत्र-पौत्रादि परिजनोंके साथ दीप्तिमान् हों और शत्रुओंको अभिभूत करके रात्रि तथा सम्पूर्ण संवत्सरोमें तुम्हारी स्तुति करें।

२० इन्द्रके साथ हम लोगोंकी मैत्री जिस कार्यसे वियुक्त नहीं हो, तेजस्वी और शरीर-पालक इन्द्र जिससे हम लोगोंके रक्षक हों, हम लोग उसी प्रकारका आचरण करेंगे। दीप्त रथनिर्माता जिस तरह रथका निर्माण करते हैं, उसी तरह हम लोग भी अभीष्टवर्षी तथा नित्य तरुण इन्द्रके लिये स्तोत्रकी रचना करते हैं।

२१ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगों द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोत्रांशोंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरिचिशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं। जिससे हम लोग रथवान् होकर, स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

१ हे इन्द्र, तुम महान् हो। महत्त्वसे युक्त होकर पृथ्वीने तुम्हारे बलका अनुमोदन किया था पश्चम् द्युलोकने भी तुम्हारे बलका अनुमोदन किया था। लोकोंको आवृत करनेवाले वृत्र नामक असुरको तुमने बल द्वारा मारा था। वृत्रने जिन नदियोंको ग्रस्त किया था, तुमने उन नदियोंको कर दिया था।

तव त्विपो जनिमत्रेजत धौरैजङ्गू मिर्भियसा स्वस्य मन्योः ।
 ऋघायन्त सुभ्रवः पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आपः ॥२॥
 भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः ।
 वधीद्दृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ॥३॥
 सुवीरस्ते जनिता मन्यत धौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत् ।
 य इं जजान स्वयं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम ॥४॥
 य एक इच्छ्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
 सत्यमेनमनु विश्वे मन्दति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥५॥
 सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्टाः ।
 सत्रा भवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥६॥

२ हे इन्द्र, तुम दीप्तिमान् हो । तुम्हारे जन्म होनेपर द्युलोक तुम्हारे कोप-भयसे कम्पित हुआ था, पृथ्वी कम्पित हुई थी और वृद्धि प्रदानके लिये बृहत् मेघसमूह तुम्हारे द्वारा आवद्ध हुआ था । इन मेघोंने प्राणियोंकी पिपासाको विनष्ट करके मरुभूमिमें जल-प्रेरण किया था ।

३ शत्रुओंके अभिभवकर्ता इन्द्रने तेजःप्रकाशन करके और बलपूर्वक वज्रका प्रेरण करके पर्यंतोको विदीर्ण किया था । सोमपानसे हृष्ट होकर इन्द्रने वज्र द्वारा वृत्रको विनष्ट किया था । वृत्रके विनष्ट होनेपर जल आवरणरहित होकर वेगसे आने लगा था ।

४ हे इन्द्र, तुम अतिशय स्तुत्य, उत्तम वज्रविशिष्ट, स्वर्गस्थानसे अनपच्युत अर्थात् विना-शरहित और महिमावान् हो । तुम्हें जिस द्योतमान प्रजापतिने उत्पन्न किया था, वे अपनेको सुन्दर पुत्रवान् मानते थे । इन्द्रके जनयिता प्रजापतिका कर्म अत्यन्त शोभन हुआ था ।

५ सम्पूर्ण प्रजाओंके राजा, बहुजनाहूत और देवोंके मध्यमें एक मात्र प्रधान इन्द्र शत्रु-जनित भयको विनष्ट करते हैं । द्योतमान और धनवान् बन्धु इन्द्रके उद्देशसे सचमुच समस्त यजमान स्तुति करते हैं ।

६ सम्पूर्ण सोम सचमुच इन्द्रके ही हैं । ये मदकारक सोम महान् इन्द्रके लिये सचमुच हर्षकारक हैं । हे इन्द्र, तुम धनपति हो, केवल धनपति ही नहीं; बल्कि सम्पूर्ण पशुओंके भी पति हो । हे इन्द्र, धनके लिये तुम सचमुच समस्त प्रजाओंको धारण करते हो ।

त्वमथ प्रथमं जायमानोमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
 त्वं प्रतिप्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्विवृश्रः ॥७॥
 सत्राहणं दाधृषिं तुघ्नमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
 हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥८॥
 अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
 अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥९॥
 अयं शृण्वे अध जयन्नुतघ्नन्नयमुत प्रकृणुते युधा गाः ।
 यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृहं भयत एजदस्मात् ॥१०॥
 समिन्द्रो गा अजयत्सं हिरण्या समश्विया मघवायो ह पूर्वीः ।
 एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकैरायो विभक्ता संभरश्च वस्वः ॥११॥

७ हे धनवान् इन्द्र, पहले ही उत्पन्न होकर तुमने वृत्रभीत सम्पूर्ण प्रजाओंको धारण किया था । तुमने उदकवान् देशके उद्देशसे जलनिरोधक वृत्रासुरको छिन्न किया था ।

८ अनेक शत्रुओंके हन्ता, अत्यन्त दुर्द्धर्ष शत्रुओंके प्रेरक, महान्, विनाशरहित, अभीष्ट-वर्षी और शोभन वज्रविशिष्ट इन्द्रकी स्तुति हम लोग करते हैं । जिन इन्द्रने वृत्र नामक असुरको मारा था, जो अन्नदाता और शोभन धनसे युक्त हैं तथा जो धन दान करते हैं, हम उनकी स्तुति करते हैं ।

९ जो धनवान् इन्द्र संश्राममें अद्वितीय सुने जाते हैं, वे मिलित और विस्तृत शत्रु-सेनाको विनष्ट करते हैं । वे जो अन्न यजमानको देते हैं, उसी अन्नको धारण भी करते हैं । इन्द्रके साथ हम लोगोंकी मैत्री प्रिय हो ।

१० शत्रुविजयी और शत्रुहिंसक होकर इन्द्र सर्वत्र प्रख्यात हैं । इन्द्र शत्रुओंके समीपसे पशुओंको छीन लाते हैं । इन्द्र जब सचमुच कोप करते हैं, तब स्थावर और जड़मरूप समस्त जगत् इन्द्रसे डरने लगता है ।

११ जिस धनवान् इन्द्रने असुरोंको जीता था, शत्रुओंके रमणीय धनको जीता था, अश्व-समूहको जीता था तथा अनेक शत्रुसेनाको जीता था, वह सामर्थ्यवान् नेतृश्रेष्ठ स्तोताओं द्वारा स्तुत होकर पशुओंका विभाजक तथा धनका धारक हो ।

कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत् पितुर्जनितुर्यो जजान ।

यो अस्य शुष्मं मुहुर्कैरियति वातो न जूतः स्तनयद्भिरभ्रैः ॥१२॥

क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीर्यति रेणुं मघवा समोहम् ।

विभञ्जनुरशनिमाँड्व धौरुतस्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥१३॥

अयं चक्रमिपणत्सूर्यस्य न्येतशं रीरमत् ससृमाणम् ।

आकृष्ण इं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्रे रजसो अस्य योनौ ॥१४॥

असिक्न्यां यजमानो न होता ॥१५॥

गव्यन्त इन्द्रं सग्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ।

जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्यावयामोवते न कोशम् ॥१६॥

१२ इन्द्र अपने जननीके समीप कितना बल प्राप्त करते हैं और पिताके समीप कितना बल प्राप्त करते हैं । जिन इन्द्रने अपने पिता प्रजापतिके समीपसे इस दृश्यमान जगत्को उत्पन्न किया था तथा उन्हीं प्रजापतिके समीपसे जगत्को मुहुर्मुहुः बल प्रदान किया था, वे इन्द्र गर्जन-श्रील मेघ द्वारा प्रेरित वायुकी तरह आहत होते हैं ।

१३ धनवान् इन्द्र किसी एक धनशून्य व्यक्तिको धनपूर्ण करते हैं अर्थात् कोई पुरुष इन्द्रकी स्तुति करके धनसमृद्ध हुआ है । वज्रयुक्त अन्तरिक्षकी तरह शत्रुविनाशक इन्द्र समूह पापको विनष्ट करते हैं और स्तोताको धन प्रदान करते हैं ।

१४ इस इन्द्रने सूर्यके आयुधको प्रेरित किया था और युद्धके लिये जानेवाले पतशको नियारित किया था ।* कुटिल-गति और कृष्णवर्ण मेघने, तेजके मूलभूत और जलके स्थान-स्वरूप अन्तर्िक्षमें स्थित इन्द्रको अभिषिक्त किया था ।

१५ जैसे रात्रिकालमें यजमान सोम द्वारा अग्निको अभिषिक्त करते हैं । †

१६ हम मेघाकी स्तोता गौश्रोको अभिलाषा करते हैं, अश्वोंकी अभिलाषा करते हैं, अन्नकी अभिलाषा करते हैं और स्त्रीकी अभिलाषा करते हैं । हम सखिताके लिये कामना-पूरक, भार्याप्रद और सर्वदा रक्षक इन्द्रको, लोग जैसे कूपमें जलपात्रको अवनमित करते हैं, उसी तरह अवनमित करेंगे ।

* स्वयं राजाने पुत्रकामनासे सूर्यको उपासना की । सूर्य उनके पुत्र होकर प्रकट हुए । उन्होंने पतश ऋषिके साथ युद्ध किया । ऋषिने विजय पानेके लिये इन्द्रकी स्तुति की । इन्द्रने प्रसन्न होकर पतशकी रक्षा की । उस युद्धमें इन्द्रने सूर्यके चक्रको तोड़ दिया था ।—सायण ।

† यह एक पदकी ही ऋचा है, दृष्टान्तकी तरह पूर्व ऋचाके साथ सम्यद्ध है ।

ज्ञाता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्दिता सोम्यानाम् ।
 सखा पिता पितृतमः पितृणां कर्तेमुलोकमुशते वयोधाः ॥१७॥
 सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्रस्तुवते वयोधाः ।
 वयं ह्याते चक्रुमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥१८॥
 स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरिण्येको अप्रतीनि हन्ति ।
 अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥१९॥
 एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत् सत्या चर्षणीधृदनर्वा ।
 त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधिश्रवो माहिनं यजरित्रे ॥२०॥
 नूष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नयो न पीपेः ।
 अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१॥

१७ हे इन्द्र, तुम आप्त हो । रक्षक रूपसे सबको देखते हुए तुम हमारे रक्षक होओ । तुम सोमयोग्य यजमानोंके अभिद्रष्टा और सुखयिता हो । प्रजापतिके समान तुम्हारी ख्याति है । तुम पालक हो और पालकोंके मध्यमें श्रेष्ठ हो । तुम पितरोंके ज्ञाता हो । तुम स्वर्ग-भिलाषी स्तोताओंके लिये अन्नप्रद होओ ।

१८ हे इन्द्र, हम तुम्हारी मेत्रीकी अभिलाषा करते हैं । तुम हमारे रक्षक होओ । तुम स्तुत होते हो, तुम हमारे सखा होओ । तुम स्तोताओंको अन्न दान करो । हे इन्द्र, हम वाधायुक्त हो कर भी, स्तुतिरूप कर्म द्वारा, पूजा करके, तुम्हारा आह्वान करते हैं ।

१९ जब इन्द्र हम लोगोंके द्वारा स्तुत होते हैं, तब वे अकेले ही अनेक अभिगन्ता शत्रुओंको मार डालते हैं । जिस इन्द्रको शरणमें वर्तमान स्तोताका निवारण न देवगण करते हैं, और न मनुष्यगण करते हैं, उस इन्द्रका स्तोता प्रिय होता है ।

२० विविध शब्दवान्, समस्त प्रजाओंके धारक, शत्रु रहित और धनवान् इन्द्र इस प्रकार स्तुत होकर हम लोगोंके सत्य रूप अभिलषितको सम्पादित करे । हे इन्द्र, तुम समस्त जन्मधारियोंके राजा हो । स्तोता जिस महिमायुक्त यशको प्राप्त करता है, वह यश तुम अधिक परिमाणमें हम लोगोंको दे ।

२१ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियोंद्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तुयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो । हे हरिषिशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें ।

१८ सूक्त

इस सूक्तमें इन्द्र, अदिति और वामदेवका कथोपकथन है; अतएव ये ही तीनों

देवता और ऋषि हैं।* त्रिष्टुप् छन्द ।

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे ।

अतश्चिदाजनिपीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवेकः ॥ १ ॥

नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्रता पार्श्वान्निर्गमाणि ।

वहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सन्त्वेन पृच्छै ॥ २ ॥

परायतीं मातरमन्वचष्ट ननानुगान्यनुनूगमानि ।

त्वष्टुगृहे अपि वत्सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्बोः सुतस्य ॥ ३ ॥

किं स ऋधक्कृणवन्न सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।

नहीन्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेपूतये जनित्वाः ॥ ४ ॥

१ इन्द्र कहते हैं—“यह योनिनिर्गमणरूप मार्ग अनादि और पूर्वापर लब्ध है। इसी योनि-मार्गसे सम्पूर्ण देव और मनुष्य उत्पन्न हुए हैं; अतएव तुम गर्भमें प्रवृद्ध होकर इसी मार्ग द्वारा उत्पन्न होओ। माताकी मृत्युके लिये मत कार्य करो।”

२ वामदेव कहते हैं—“हम इस योनिमार्ग द्वारा नहीं निर्गत होंगे। यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। हम पार्श्वभेद करके निर्गत होंगे। दूसरोंके द्वारा अकरणीय बहुतेरे कार्य हमें करने हैं। हमें एकके साथ युद्ध करना है। हमें एकके साथ वाद-विवाद करना है।

३ इन्द्र कहते हैं कि, ‘हमारी माता मर जायगी; तथापि हम पुरातन मार्गका अनु-धावन नहीं करेंगे, शीघ्र वृद्धिर्गत होंगे। (इन्द्रने जो यथेच्छाचरण किया था, उसीको वामदेव कहते हैं) इन्द्रने अभिषेचकारी त्वष्टाके गृहमें सोमाभिषेच-फलक द्वारा अभिषुत सोमका पान; यत्पूर्वक, किया था, वह सोम बहुत धन द्वारा क्रीत था।

४ “अदितिने इन्द्रको अनेक मासों और अनेक संवत्सरोंतक धारण किया था। इन्द्रने यह विरुद्ध कार्य क्यों किया था। अर्थात् गर्भमें बहुत दिनोंतक रहकर इन्द्रने अदितिको वलेश दिया था।”

इन्द्रके ऊपर किये गये आक्षेपको सुनकर अदिति कहती है—“हे वामदेव, जो उत्पन्न हुए हैं और जो देवादि उत्पन्न होंगे, उनके साथ इन्द्रकी तुलना नहीं हो सकती है।

* गर्भस्थ वामदेव माताके योनिदेशसे वृद्धिर्गत होना नहीं चाहते हैं। वे माताके पार्श्व देशको भिन्न करके उत्पन्न होना चाहते हैं। उनके इस दृढ़ सङ्कल्पको जानकर उनकी माताने उन्हें समझानेके लिये इन्द्र और अदितिको बुलाया है।—सायण ।

अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणान्यूष्टम् ।

अथोदस्थात् स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥ ५ ॥

एता अर्षन्त्यललाभवन्तीऋतावरीरिव संक्रोशमानाः ।

एता विपृच्छ किमिदं भनन्ति क्रमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥ ६ ॥

किमुष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिपन्त आपः ।

ममैतान् पुत्रो सहता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ॥ ७ ॥

ममञ्चन त्वा युवतिः परास ममञ्चन त्वा कुपवा जगार ।

ममञ्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममञ्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥ ८ ॥

ममञ्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान ।

अथा निविद्ध उत्तरो वभूवाञ्छिरो दासस्य सम्पिणग्वधेन ॥ ९ ॥

५ “गहरूप सूतिका-गृहमें उत्पन्न इन्द्रको निन्दनीय मानकर माताने उन्हें अतिशय सामर्थ्यवान् किया था । अनन्तर, उत्पन्न होते ही इन्द्र अपने तेजको धारण करके उत्थित हुए थे और द्यावापृथिवीको परिपूर्ण किया था ।

६ “अल-ला शब्द करती हुई ये जलवती नदियाँ इन्द्रके महत्त्वको प्रकट करनेके लिये, हर्षपूर्वक, बहुविध शब्द करती हुई बहती हैं । हे ऋषि, तुम इन नदियोंको पूछो कि, वे क्या बोलती हैं ? यह शब्द इन्द्रके माहात्म्यका सूचक है । मेरे पुत्र इन्द्रने ही उदकके आवरण मेषको विदीर्ण करके जलको प्रवर्तित किया था ।

७ “वृत्रवधसे ब्रह्महत्या रूप पापको प्राप्त करनेवाले इन्द्रको निवित् क्या कहती है ? जल फेन रूपसे इन्द्रके पापको धारण करता है । + मेरे पुत्र इन्द्रने महान् वज्रसे वृत्रका वध किया था । अनन्तर, इन नदियोंको विसृष्ट किया था ।”

८ वामदेव कहते हैं—“तुम्हारी युवती माता अदितिने प्रमत्त होकर तुम्हारा प्रसव किया था । कुपवा नामकी राक्षसीने प्रमत्त होकर तुम्हें प्राप्त बनाया था । हे इन्द्र, उत्पन्न होनेपर तुम्हें जलसमूहने प्रमत्त होकर सुखी किया था । इन्द्र प्रमत्त होकर, अपने वीर्यके प्रभावसे, सूतिका-गृहमें, राक्षसीको मारनेके लिये, उत्थित हुए थे ।

९ “हे धनवान् इन्द्र, व्यंस नामक राक्षसने प्रमत्त होकर तुम्हारे हनुद्वय (चिबुकके अधोभाग) को विद्ध करके अपहृत किया था । हे इन्द्र, इसके अनन्तर अधिक बलवान् होकर तुमने व्यंस राक्षसके सिरको वज्र द्वारा पीस डाला था ।

+ ब्राह्मण वृत्रको मारनेसे इन्द्र ब्रह्महत्या पापसे आक्रान्त हुए थे । उनके पापोंको जल-समूहने फेनरूपसे ग्रहण किया था । इस तरह इन्द्र पापग्रहित हुए थे ।—सायण ।

गृष्टिः समूव स्थविरं तवागामनाधृष्यं वृषभं तुभ्रमिन्द्रम् ।
 अरीहूलं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥ १० ॥
 उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
 अथाव्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं विक्रमस्व ॥ ११ ॥
 कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छ्युं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
 कस्ते देवो अधिमार्दिक आसीद्यत् प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥ १२ ॥
 अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्दितारम् ।
 अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे ज्येनो मध्वा जभार ॥ १३ ॥



१० "सङ्घटप्रसूता (एक बार व्यायी हुई) गौ जैसे वत्स प्रसव करती है, उसी तरह इन्द्रकी माता अदिति अपनी इच्छासे सञ्चरण करनेके लिये इन्द्रको प्रसव करती है। इन्द्र अवस्थामें वृद्ध, प्रभूत बलशाली, अनभिभवनीय, अमीष्टवर्षी, प्रेरक, अनभिभूत, स्वयं गमनक्षम और शरीर-भिलापी हैं ।

११ "इन्द्रकी माता अदितिने महान् इन्द्रसे पूछा, 'हे मेरे पुत्र इन्द्र, अग्नि आदि देव तुम्हें त्याग रहे हैं।' इन्द्रने विष्णुको कहा, 'हे सखा विष्णु, तुम यदि वृत्रको मारनेकी इच्छा करते हो, तो अत्यन्त पराक्रमशाली होओ ।'

१२ "हे इन्द्र, तुम्हारे अतिरिक्त किस देवने माताको विधवा किया था ! तुम जिस समय सो रहे थे अथवा जाग रहे थे, उस समय किसने तुम्हें मारनेको चाहा था ? कौन देवता सुख देनेमें तुम्हारी अपेक्षा अधिक है ? जिस कारण तुमने पिताके दोनों चरणोंको पकड़कर उनका वध किया था ?"

१३ "हमने जीवोपायके अभावमें कुत्तेकी अंतड़ीको पकाकर खाया था। हमने देवोंके मध्यमें इन्द्रके अतिरिक्त अन्य देवको सुखदायक नहीं पाया। हमने अपनी भार्याको अश्लाघनीय (अस्मानित) होते देखा। इसके अनन्तर इन्द्र हमारे लिये मधुर जल लाये।"

पञ्चम अध्याय समाप्त

षष्ठ अध्याय

१६ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास उमाः ।
महामुभे रोदसी वृद्धभृष्वं निरेकमिद्वृणते वृत्रहत्ये ॥ १ ॥
अवासृजन्त जित्रयो न देवा भुवः सम्राडिन्द्र सत्ययोनिः ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्रवर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥ २ ॥
अतृण्णुवन्तं वियतमब्रुध्यमबुध्यमानं सुपुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण विरिणा अपर्वन् ॥ ३ ॥
अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्णं वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।
दृहान्यौभ्नादुशमान ओजोवाभिनत् ककुभः पर्वतानाम् ॥ ४ ॥

१ हे वज्रवान् इन्द्र, इस यज्ञमें शोभन आह्वानसे युक्त तथा रक्षक निखिल देवगण और दोनों यावापृथिवी, वृत्रवधके लिये, एक मात्र तुम्हारा ही सम्भजन करती है । तुम स्तूयमान, महान्, गुणोत्कर्षसे प्रवृद्ध और दर्शनीय हो ।

२ हे इन्द्र, वृद्ध पिता जैसे युवा पुत्रको प्रेरित करते हैं, उसी तरह देवगण तुम्हें अतुर-वधके लिये प्रेरित करते हैं । हे इन्द्र, तुम सत्यविकाश-स्वरूप हो । तबसे तुम समस्त लोकोंके अधीश्वर हुए हो । जलको लक्ष्य करके परिशयन करनेवाले वृत्रासुरका तुमने वध किया था । सबको प्रसन्न करनेवाली नदियोंका तुमने खनन किया था ।

३ हे इन्द्र, तुमने भोगमें अतृप्त, शिथिलाङ्ग, दुर्विज्ञान, अज्ञानभावापन्न, सुप्त और सपण-शील जलको आच्छादित करके सोनेवाले वृत्रको, पौर्णमासीमें, वज्र द्वारा, मारा था ।

४ वायु जैसे बल द्वारा जलको क्षोभित करती है, उसी तरह परमैश्वर्यवान् इन्द्र बल द्वारा अन्तरिक्षको, क्षीणजल करके, पांस डालते हैं । बलामिलायी इन्द्र दृढ़ मेघको भग्न करते हैं और पर्वतोंके पक्षोंको छिन्न करते हैं ।

अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्रययुः साकमद्रयः ।
 अतर्पयो विसृत उब्ज उर्मीन्त्वं वृतां अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ५ ॥
 त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् ।
 अरमयो नमसैजदर्णाः सुतरणां अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥ ६ ॥
 प्राग्रुवो नभन्वो न वक्त्रा ध्वस्त्रा अपिन्वद्युवतीर्हृतज्ञाः ।
 धन्वान्यज्रां अपृणक्तृपाणां अधोगिन्द्रः स्तयो दंसुपत्नीः ॥ ७ ॥
 पूर्वोरुपसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वां असृजद्वि सिन्धून् ।
 परिष्ठिता अतृणद्वद्रधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥ ८ ॥
 वस्त्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आजभर्थ ।
 व्यन्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखविक्रित् समरन्त पर्व ॥ ९ ॥

१ हे इन्द्र, मातापं जिस तरह पुत्रके निकट गमन करती हैं, उसी तरह मरुतोंने तुम्हारे निकट गमन किया था; जंसे वृत्रको मारनेके लिये तुम्हारे साथ वेगवान् रथ गया था। तुमने विशरणशील नदियोंको वारिपूर्ण किया था; मेघको भन्न किया था और वृत्र द्वारा आवृत जलको प्रेरित किया था।

२ हे इन्द्र, तुमने मरुतो तथा सवको प्रीति देनेवाली और तुर्वीति तथा वय्य राजाके लिये असीष्ट फल देनेवाली भूमिको अन्नसे अचल किया था तथा जलसे रमणीय किया था अर्थात् पृथ्वीको नमन अन्न-जलसे समृद्ध किया था। हे इन्द्र, तुमने जलको सुतरणीय (सुगमतासे तैरनेके योग्य) बना दिया था।

३ इन्द्रने शत्रु हिंसक सेनाकी तरह तटध्वंसिनी, जलयुक्ता तथा अन्नजनयित्री नदियोंको भली भाँति पूर्ण किया है। इन्द्रने जलशून्य देशोंको वृष्टि द्वारा पूर्ण किया है तथा पिपासित पथिकोंको पूर्ण किया है। इन्द्रने दस्युओंकी अधिष्ठता, प्रसव-निवृत्ता गौओंको दूहा था।

४ वृत्रासुरको मारकर इन्द्रने तमिस्रा द्वारा आच्छादित अनेक उपाको तथा संवत्सरोंको विमुक्त किया था। एवं वृत्र द्वारा निरुद्ध जलको भी विमुक्त किया था। इन्द्रने मेघके चारो तरफ वतमान तथा वृत्र द्वारा बध्प्रमान नदियोंको पृथ्वीके ऊपर बहनेके लिये विमुक्त किया था।

५ हे इन्द्र नामक चाड़ावाले इन्द्र, तुमने उपजिहिका (कीटविशेष) द्वारा भक्ष्यमान अग्रू-पुत्रको वल्मीक (ईसा)के स्थानसे बाहर किया था; बाहर किये जाते समय वह अग्रू-पुत्र यद्यपि अन्धा था; तथा पि उमने सर्पको अच्छी तरहसे देखा था। उसके, उपजिहिका द्वारा छिन्न, अङ्ग इन्द्र द्वारा संयुक्त हुए थे।

प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्राँ आह विदुषे करांसि ।
 यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्तापांसि राजन्नर्याविवेषीः ॥१०॥
 नूष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
 अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥



३० सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ न इन्द्रो दूरादान आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
 ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥१॥
 आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छर्वाचीनोवसे राधसे च ।
 तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥२॥

१० हे राजमन प्राज्ञ इन्द्र, तुम सर्ववेत्ता हो। वर्षणयोग्य और स्वर्ग सम्पन्न मनुष्योंके वृष्टि-सम्बन्धी कर्मोंको तुमने जिस प्रकारसे किया था, वामदेव उन सकल पुरातन कर्मोंको जानकर कहते हैं।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र काते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

१ अभीष्टप्रद और तेजस्वी इन्द्र, हम लोगोंको आश्रय प्रदान करनेके लिये दूरसे आवें; हम लोगोंको आश्रय प्रदान करनेके लिये निकटसे आगमन करें। वे संग्राममें संगत होनेपर शत्रुओंको वध करते हैं। वे वज्रबाहु, मनुष्योंके पालक और तेजस्वी मस्तोंसे युक्त हैं।

२ हम लोगोंके अभिमुखवर्ती इन्द्र आश्रय और धन प्रदान करनेके लिये, हम लोगोंके निकट अश्वोंके साथ आवें। वज्रवान्, धनशाली और महान् इन्द्र युद्धमें उपस्थित होनेपर हमारे इस यज्ञमें उपस्थित हों।

इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरोदधत् सनिष्यसि क्रतुं नः ।
 इवन्नीव वृज्जिन्त्सनये धनानां त्वया वयस्य आजिं जयेम ॥३॥
 उशन्नुषुणः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः ।
 पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा समदः पृष्ठयेत् ॥४॥
 वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्कः सृण्यो न जेता ।
 सर्थो न योपामभिमन्यमानोच्छ विवक्त्रि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥५॥
 गिरिर्न यः स्वतवां ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।
 आदर्ता वज्रं स्यविरं न भीम उद्वेव क्रोशं वसुना न्यूष्टम् ॥ ६ ॥
 न यस्य वर्ता जनुपान्वस्तिन राधस आमरीता मघस्य ।
 उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥ ७ ॥

३ हे इन्द्र, तुम हम लोगोंको पुरःसर करके, हमारे इस क्रियमान यज्ञका सम्भजन करो । हे वज्रधर, हम तुम्हारे स्तोता हैं । व्याधा जिस ताहसे मृगोंका शिकार करता है, उसी तरहसे हम तुम्हारे द्वारा, धन लाभके लिये युद्धमें जय लाभ करें ।

४ हे अन्नवान् इन्द्र, तुम प्रसन्न मनसे हम लोगोंके समीप आगमन करो और हमारी कामना करके उत्तम रूपसे अभिषुत, सम्भृत और मादक सोमरसका पान करो एवम् माध्यन्दिन सेवनमें उदीयमान स्तोत्रके साथ सोम पान करके हृष्ट होओ ।

५ जो पके फलवाले वृक्षकी तरह एवम् आयुधकुशल विजयी व्यक्तिकी तरह हैं और जो नूतन ऋषियों द्वारा विविध प्रकारसे स्तूयमान होते हैं, उन पुरुहूत इन्द्रके उद्देशसे हम स्तुति करते हैं । जैसे श्री-भूमिमानी मनुष्य ज्ञीक्री प्रशंसा करता है ।

६ जो पर्वतकी तरह प्रवृद्ध और महान् हैं, जो तेजस्वी हैं और जो शत्रुओंको अभिमूत करनेके लिये सनातन कालमें उत्पन्न हुए हैं, वे इन्द्र जल द्वारा पूर्ण जलपात्रकी तरह, तेजःपूर्ण वृहत् वज्रका आदर करते हैं ।

७ हे इन्द्र, तुम्हारे जन्मसे [उत्पन्न मात्रसे] ही कोई निवारक नहीं रहा, यज्ञादि कर्मके लिये तुम्हारे द्वारा प्रदत्त धनका नाशक कोई नहीं रहा । हे बलशाली, तेजस्वी, पुरुहूत, तुम अभीष्टवर्षी हो । तुम हम लोगोंको धन दो ।

ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम् ।

शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥ ८ ॥

कयातच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु काचिदृष्वः ।

पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहोथा दधाति द्रूविणं जरित्रे ॥ ९ ॥

मा नो मर्धीराभरा दद्धितन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते ।

नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्रव्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥ १० ॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।

अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासः ॥११॥



८ हे इन्द्र, तुम पूजाओंके धन और गृहका पर्यवेक्षण करते हो और निरोधक अतुरोंसे गौओंके समूहको उन्मुक्त करते हो । हे इन्द्र, तुम शिक्षाके विषयमें प्रजाओंके नेता या शासक हो और युद्धमें प्रहार करनेवाले हो । तुम प्रभूत धनराशिके प्रापक होओ ।

९ अतिशय प्राज्ञ इन्द्र किस प्रजावलसे विश्रुत होते हैं ? महान् इन्द्र जिस प्रजावलसे मुद्गर्महः कर्मसमूहका सम्पादन करते हैं (उसीके द्वारा विश्रुत हैं) । वे यजमानोंके बहुल पापको चिन्ष्ट करते हैं और स्तोताओंको धन दान करते हैं ।

१० हे इन्द्र, तुम हम लोगोंकी हिंसा मत करो, बल्कि हम लोगोंके पोषक होओ । हे इन्द्र, तुम्हारा जो प्रभूत धन हव्यदाताको दान देनेके लिये है, वह धन लाकर हमें दो । हम तुम्हारा स्तव करते हैं । इस नूतन दानयोग्य और प्रशस्त उक्थमें हम तुम्हारा शिरोरूपसे कीर्तन करते हैं ।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो । हे हरि-विशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिन्न स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें ।

२१ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । लिप्युप छन्द ।

आयात्विन्द्रोवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
 वावृधानस्तविपीर्यस्य पूर्वोद्योर्निक्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ १ ॥
 तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविश्रुन्नस्य तुविराधसो नृन् ।
 यस्य क्रतुर्विद्वथ्यो न सम्राट् साह्वान्तरुत्रो अभ्यस्ति कृषीः ॥ २ ॥
 आयात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षु समुद्रादुत वा पुरीयात् ।
 स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादतस्य ॥ ३ ॥
 स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशो तमुष्ट्रवाम विदथेध्विन्द्रम् ।
 यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ॥ ४ ॥
 उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियति वाचं जनयन्यजध्वै ।
 ऋञ्जसानः पुस्वार उक्थैरेन्द्रं कृष्णीत सदनेषु होता ॥ ५ ॥

१ जिनका बल प्रभूत है । जो सूर्यकी तरह अभिभवसमर्थ बलका पोषण करते हैं, वे हम लोगोंके समीप रक्षाके लिये आवें । पराक्रमवान् और प्रबुद्ध इन्द्र हमारे साथ हृष्ट हों ।

२ हे स्तोताओ, यद्यार्ह सम्राटकी तरह, जिनका अभिभवकारक तथा प्राणकारक कर्म शत्रुसम्यन्धिनो प्रजाओंको अभिभूत करता है, उन प्रभूतयशा तथा अतिशय धनशाली इन्द्रके बलभूत नेता मरुतोंको, तुम लोग इस यज्ञमें, स्तुति करो ।

३ इन्द्र हम लोगोंको आश्रय देनेके लिये मरुतोंके साथ स्वर्गलोकसे, भूलोकसे, अन्तरिक्ष-लोकसे, जलसे, आदित्यलोकसे, दूर देशसे और जलके स्थानभूत मेघलोकसे यहाँ आवें ।

४ जो भूल पवम् महान धनके अधिपति हैं, जो प्राणरूप बल द्वारा शत्रुसेनाको जीतते हैं, जो प्रगल्भ हैं और जो स्तोताओंको श्रेष्ठ धन दान करते हैं, यज्ञस्थलमें हम उन इन्द्रके उद्देशसे स्तुति करने हैं ।

५ जो निम्निल लोकोंका स्तम्भन करके यद्यार्थ गर्जनशील वचनको उत्पन्न करते हैं और हव्य प्राप्त करके वृष्टि द्वारा अन्न दान करते हैं, जो प्रसाधनयोग्य तथा उक्थ द्वारा स्तुति-योग्य हैं, यज्ञ-गृहमें होता उन इन्द्रका आवाहन करने हैं ।

धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे ।

आ दुरोषाः पास्यस्य होता योनो महान्त्संवरणेषु वह्निः ॥ ६ ॥

सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।

गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय ॥७॥

वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृषवे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।

विदद्वौरस्य गवयस्य गोहे यदीवाजाय सुध्यो वहन्ति ॥८॥

भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।

का ते निषक्तिः किमु नो ममत्सि किं नो दुदु हर्षसे दातवाउ ॥९॥

एवा तस्व इन्द्रः सत्यः सप्रङ्कन्ता वृत्रं वारिवः पूरवेकः ।

पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय ते वसो दैव्यस्य ॥१०॥

६ जब इन्द्रकी स्तुतिके अभिलाषी, यजमानके गृहमें निवासकारी, स्तोता, स्तुतिके सहित, इन्द्रके निकट, उपगत होते हैं, तब वे इन्द्र आवें । वे युद्धमें हम लोगोंकी सहायता करें । वे यजमानोंके होता हैं । उनका क्रोध दुस्तर है ।

७ जगद्धर्ता, प्रजापतिके पुत्र, अभीष्टवर्षी इन्द्रका बल स्तोत्रकारी यजमानकी सेवा करता है । वह बल सचमुच यजमानोंके भरणके लिये गुहारूप हृदयमें उत्पन्न होता है, यजमानोंके गृह और कर्ममें सचमुच अवस्थान करता है तथा यजमानोंकी अभीष्टप्राप्ति और हर्षके लिये सचमुच वह बल उत्पन्न होता है । इन्द्रका बल यजमानोंका सदा पालन करता है ।

८ इन्द्रने भेधके द्वारको अपावृत किया था और जलके वेगको जलसमूह द्वारा परिपूर्ण किया था; अतएव जब सुकर्मा यजमान इन्द्रको अन्न दान करते हैं, तब वे गौर मृग और गवयमृग प्राप्त करते हैं ।

९ हे इन्द्र, तुम्हारा कल्याणकारक हस्तद्वय सत्कर्मका अनुष्ठान करता है एवम् तुम्हारा हस्तद्वय यजमानको धन दान करता है । हे इन्द्र, तुम्हारी स्थिति क्या है ? क्यों तुम हम लोगोंको हृष्ट नहीं करते हो ? क्यों तुम हम लोगोंको धन देनेके लिये हृष्ट नहीं होते हो ?

१० इस प्रकार स्तुत होकर सत्यवान, धनेश्वर और वृत्रहन्ता इन्द्र यजमानोंको धन देते हैं । हे बहुस्तुत, हम लोगोंकी स्तुतिके लिये तुम हमें धन दो । जिससे हम दिव्य अन्नका भक्षण कर सकें ।

नू ष्टुत इन्द्र नू शृणान इपं जरित्रे नद्यो न पीपे : ।

अकारि ते हरित्रो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥



२२ सूक्त

३ अनुवाक । इन्द्र देवता । वामदेय ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

यन्न इन्द्रो जुजुपे यच्च वष्टि तन्नो महान् करति शुष्ण्याचित् ।

ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्थायो अश्मानं शवसा विश्रदेति ॥१॥

वृषा वृषन्धिश्चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो वाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।

श्रिये परुष्णीमुपमाण उर्गां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥

यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।

दधानो वज्रं वाह्नोरुशन्तं याममेन रेजयत् प्रभूम ॥ ३ ॥

११ हे इन्द्र, तूम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो । हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अमिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर मूर्ति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें ।

१ महान् बलयान् इन्द्र हम लोगोंके हविरन्नका संग्रह करते हैं । वे धनवान् हैं । वे वज्र धारण करके यत्ने युक्त होकर आगमन करते हैं । इन्द्र हव्य, स्तोम, सोम और उक्थको स्वीकार करने हैं ।

२ अमीष्टघर्षो इन्द्र दोनों वाहुओंसे वृष्टिकारी चतुर्धाराविशिष्ट वज्रको शत्रुओंके ऊपर फेंकने हे । ये उग्र, नेत्रश्रेष्ठ और कर्मेवान् होकर आच्छादनकारिणी परुष्णी नदीकी, आश्रयके लिये, सेवा करते हैं । इन्द्रने परुष्णीके भिन्न-भिन्न प्रदेशको सखिकर्मके लिये संवृत किया था ।

३ जो दीप्तिमान्, जो दातृश्रेष्ठ और जो उत्पन्न होते ही प्रभूत अन्न तथा महाबलसे युक्त हुए थे, वे दोनों वाहुओंमें कामयमान वज्र धारण करके बल द्वारा ध्रुलोक और भूलोकको प्रकम्पित करते थे ।

विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीद्यौर्नृष्वज्जनिमत्रेजत क्षा : ।
 आमातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत् परिज्मन्नौनुवन्त वाता : ॥ ४ ॥
 ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित् सवनेषु प्रवाच्या ।
 यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रोण शवसा विवेषी : ॥ ५ ॥
 ता तू ते सत्या तुविनृष्ण विश्वा प्र धेनव : सिस्रूते वृष्ण ऊध्र ।
 अथाह त्वद्वृषमणोभियाना : प्रसिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥ ६ ॥
 अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्रस्तवन्त स्वसार : ।
 यत् सीमनु प्रमुचो वद्वधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥ ७ ॥
 पिपीले अंशुर्मद्यो न सिन्धुरात्वा शमी शशमानस्य शक्ति ।
 अस्मद्रथक् शुशुचानस्य यस्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ॥ ८ ॥

४ महान् इन्द्रके जन्म होनेपर समस्त पर्वत, अनेक समुद्र, द्युलोक और पृथिवी उनके भयसे कम्पित हुई थी। बलवान् इन्द्र गतिशील सूर्यके माता-पिता द्यावापृथ्वीको धारण करते हैं। इन्द्र द्वारा प्रेरित होकर वायु मनुष्यकी तरह शब्द करती है।

५ हे इन्द्र, तुम महान् हो, तुम्हारा कर्म महान् है और तुम समस्त सवनमें स्तुतियोग्य हो। हे प्रगल्भ, शूर, इन्द्र, तुमने सम्पूर्ण लोकको धारण करके, धर्षणशील वज्र द्वारा, बलपूर्वक, अहिको बिनष्ट किया था।

६ हे अधिकबलशाली इन्द्र, तुम्हारे वे सकल कर्म निश्चय ही सत्य हैं। हे इन्द्र, तुम अभीष्टवर्षी हो। तुम्हारे भयसे गौएँ अपने ऊग्रप्रदेशोंमें क्षीरकी रक्षा करती हैं। हे हर्षणशील, नदियाँ तुम्हारे भयसे वेगपूर्वक प्रवाहित होती हैं।

७ हे हरिवान् इन्द्र, जब तुमने वृत्र द्वारा बद्ध इन नदियोंको, दीर्घकालिक बन्धनके अनन्तर, प्रवाहित होनेके लिये मुक्त किया था, तब उसी समय वे प्रसिद्ध, द्युतिमती नदियाँ, तुम्हारे द्वारा रक्षित होनेके लिये, तुम्हारा स्तवन करती थीं।

८ हर्षजनक सोम निष्पीडित हुआ है, स्यन्दमान होकर यह तुम्हारे निकट आगमन करे। शीघ्रगामी, आरोही गमनशील अश्वकी दृढ़ बला (लगाम) धारण करके जैसे अश्वको प्रेरित करता है, उसी तरह तुम दीतिमा स्तोताकी स्तुतिको हमारे निकट प्रेरित करो।

अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।
 अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वर्ध्वनुषो मर्त्यस्य ॥ ९ ॥
 अस्माकमित् सुशृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यश्चित्रां उपमाहि वाजान् ।
 अस्मभ्यं विद्वा इषणः पुरन्धीरस्माकं सुमघवन् बोधि गोदाः ॥ १० ॥
 नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
 अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥



३३ सूक्त

इन्द्र देवता । अथवा ८, ९, १०के ऋत देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

कथा महामवृधत् कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभिसोममूधः ।
 पिबन्तुशानो जुपमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥ १ ॥

९ हे सहनशील इन्द्र, तुम सर्वदा शत्रुओंको अभिनव करनेवाला, प्रवृद्ध और प्रशस्त बल हम लोगोंको दो । वध्ययोग्य शत्रुओंको हमारे वशीभूत करो । हिंसक मनुष्योंके अस्त्रोंको नष्ट करो ।

१० हे इन्द्र, तुम हम लोगोंकी स्तुति श्रवण करो । हम लोगोंको विविध प्रकारका अन्न दो । हमारे लिये समस्त बुद्धि प्रेरित करो । हमारे लिये तुम गौदाता होओ ।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो । हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें ।

१ हम लोगोंकी स्तुति महान् इन्द्रको किस प्रकारसे वद्धित करेगी ? वे किस होताके यज्ञमें प्रीत होकर आगमन करते हैं ? महान् इन्द्र सोमरसका आस्वादन करते हुए तथा अन्नकी कामना और सेवा करते हुए किस यजमानको देनेके लिये प्रदीप्त धनको धारण करते हैं ।

को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य ।
 कदस्य चित्रं चिकितेकदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः ॥ २ ॥
 कथा शृणोति ह्यमानमिन्द्रः कथा शृणवन्नवसामस्य वेद ।
 का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे ॥३॥
 कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभिदूविणं दीध्यानः ।
 देवो भुवन्नवेदाम ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोपत् ॥४॥
 कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं युजोप ।
 कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन् कामं सुयुजं ततस्त्रे ॥५॥
 किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्रववाम ।
 श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्वर्णं चित्रतममिव आगोः ॥६॥

२ कौन वीर इन्द्रके साथ सोमपान करने पाता है? कौन व्यक्ति इन्द्रके अनुग्रहको प्राप्त करता है? कब इनके विचित्र धन वितरित होंगे? कब ये स्तोता यजमानको वर्द्धित करनेके लिये रक्षायुक्त होंगे?

३ हे इन्द्र, परमैश्वर्यसे युक्त होकर तुम होताकी कथाको क्योंकर श्रवण करते हो? स्तोत्रोंको सुनकर स्तुति करनेवाले होताकी रक्षण-कथाको क्योंकर जानते हो? इन्द्रके पुरातन दान कौन हैं? वे दान इन्द्रको स्तोताओंकी अभिलाषाके पूरक क्यों कहते हैं?

४ जो यजमान पीड़ायुक्त होकर इन्द्रकी स्तुति करते हैं और यज्ञ दुवारा दीतियुक्त होते हैं, वे किस प्रकारसे इन्द्रसम्बन्धी धन प्राप्त करते हैं? जब द्युतिमान् इन्द्र हव्य ग्रहण करके हमारे ऊपर प्रसन्न होते हैं, तब वे हमारी स्तुतिको विशेष रूपसे ज्ञात करते हैं।

५ द्योतमान इन्द्र, उपाके प्रारम्भमें (प्रभातमें) किस प्रकार और कब मनुष्योंके बन्धुत्वकी सेवा करते हैं? जो होता इन्द्रके उद्देशसे सुयोग तथा कमनीय हव्यको विस्तारित करते हैं, उन बन्धुओंके प्रति कब और किस प्रकारसे, अपने बन्धुत्वको इन्द्र प्रकाशित करते हैं?

६ हे इन्द्र, हम यजमान तुम्हारे शत्रुपराभवकारी सख्यको, स्तोताओंके निकट, किस प्रकारसे, भली भाँति, कहेंगे? कब हम तुम्हारे भ्रातृत्वका प्रचार करेंगे? सुदर्शन इन्द्रका उद्योग स्तोताओंके कल्याणके लिये होता है। सूर्यकी तरह गतिशील इन्द्रका अतिशय दर्शनीय शरीर सबके द्वारा अभिलपित है।

द्रुहं जिघांसन् ध्वरसमनिन्द्रान्तेतिके तिग्मा तुजसे अनीका ।
 ऋणाचिद्यत्र ऋणयान उग्रो दूरे अज्ञाता उपसो ववाधे ॥७॥
 ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
 ऋतस्य श्लोको वधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥८॥
 ऋतस्य दृष्ट्वा धरुणानि सन्ति पुरुणि चन्द्रा वपुषे वपुषि ।
 ऋतेन दीर्घमिपणन्त प्रक्ष ऋतेन गाव ऋतमाविवेशुः ॥९॥
 ऋतं येमान ऋतमिद्वनोत्पृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
 ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते ॥१०॥
 नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इपं जरित्रोः नद्यो न पीपेः ।
 अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥



७ द्रोह करनेवाली, हिंसा करनेवाली तथा इन्द्रको नहीं जाननेवाली राक्षसीको मारनेके लिये गहलेसे ही तीक्ष्ण श्वाशुओंको अत्यन्त तीक्ष्ण करते हैं । ऋण भी हम लोगोंको उपाकालमें बाधित करना है, ऋणविनाशक बलवान् इन्द्र उन उपाशुओंको दूरसे ही, अज्ञातभावसे पीड़ित करते हैं ।

८ ऋत (सत्य, वादित्य अथवा यज्ञ) देवको बहुत जल है । ऋतदेवकी स्तुति पापको नष्ट करती है । प्रवृत्तदेवका योषयोभय तथा दीप्तिमान् स्तुतिवाक्य मनुष्योंके वधिर कर्णमें भी प्रवेश पाना है ।

९ यपुमान् प्रवृत्तदेवके वृद्ध, भारक, आहूलादक आदि अनेक रूप हैं । लोग ऋतदेवके निकट प्रभूत अन्नको इच्छा करते हैं । ऋतदेव द्वारा गौण, दक्षिणारूपसे, यज्ञमें प्रवेश करती हैं ।

१० स्तोता लोग ऋतदेवको वशीभूत करनेके लिये सम्मज्जन करते हैं । ऋतदेवका बल शीघ्र ही जलकामना करता है । विस्तीर्णा तथा दुरवगाहा धावापृथिवी ऋतदेवकी है । प्रीति-दायिका तथा उत्कृष्टा धावापृथिवी ऋतदेवके लिये दुग्ध दोहन करती है ।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर, तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो । हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें ।

२४ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आववर्तत् ।
 ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्विधान्नो जनासः ॥१॥
 स वृत्र हत्ये हव्यः स ईड्यः ससुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।
 स यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥२॥
 तमिन्नरो विह्वयन्ते समीके रिरिक्रांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
 मिथो यत्यागमुभयासो अगमन्नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥३॥
 क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्राशुषाणासो मिथो अर्णसातौ ।
 संयद्विशोववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥ ४ ॥

१ हम लोगोंको धन देनेके लिये, हम लोगोंके अभिमुख, किस प्रकारसे सुन्दर स्तुति बलके पुत्र इन्द्रको आवर्तित करे । हे यजमानो, वीर तथा पशुपालक इन्द्र हम लोगोंको, शत्रुओंका धन दे । हम लोग उनकी स्तुति करते हैं ।

२ वृत्रको मारनेके लिये इन्द्र संग्राममें आहत होते हैं । वे स्तुतियोग्य हैं । वे सुन्दर रूपसे स्तुत होनेपर यजमानोंको धन देनेके लिये, सत्यधन होते हैं । धनवान् इन्द्र स्तोत्रामिलायी तथा सोमामिलायी यजमानको धन दान करते हैं ।

३ मनुष्यगण युद्धमें इन्द्रका ही आह्वान करते हैं । यजमान लोग शरीरको तपस्या द्वारा क्षीण करके उन्हींको त्राणकर्ता करते हैं । यजमान तथा स्तोता दोनों ही परस्पर संगत होकर पुत्र पौत्र लाभके लिये इन्द्रके निकट गमन करते हैं ।

४ हे बलवान् इन्द्र, चतुर्दिक्में व्याप्त मनुष्य जल लाभके लिये एकत्र होकर यज्ञ करते हैं ! जब युद्धकारी लोग युद्धमें एकत्र होते हैं, तब कौन इन्द्रको अभिलाषा करता है ।

आदिद्धनेम इन्द्रियं यजन्त आदित्यक्तिः पुरोडाशं रिरिच्यात् ।
 आदित् सोमो विपपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोप वृषभं यजध्वै ॥ ५ ॥
 कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति ।
 सधीचीनेन मनसा विवेनन्तमित् सखायं कृणुते समत्सु ॥ ६ ॥
 य इन्द्राय सुनवत् सोममद्य पचात् पक्तोरुत भृज्जाति धानाः ।
 प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥७॥
 यदा समयं व्यचेदघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
 अचिक्रदद्वृषणं पत्यञ्छा दुरोण आनिशितं सोमसुद्धिः ॥८॥
 भूयसा वस्नमचरत् कनीयोविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
 स भूयसा कनीयो नारिरेचीदीना दक्षा विदुहन्ति प्रवाणम् ॥९॥

५ उस समय युद्धमें कोई योद्धा यलवान् इन्द्रकी पूजा करते हैं । अनन्तर कोई पुरोडाश प्रस्तुत करके इन्द्रको देते हैं । उस समय सोमाभिषेक करनेवाले यजमान अनभिषुत सोमवाले यजमानको धनसे पृथक् कर देते हैं । उस समय कोई अभीष्टवर्षी इन्द्रके उद्देशसे यज्ञ करनेकी अभिलाषा करते हैं ।

६ जो सोमाभिलाषी स्वर्गलोकस्थित इन्द्रके उद्देशसे अभिषेक करते है, उन्हें इन्द्र धन दान परते है । एकान्त चित्तसे इन्द्रकी अभिलाषा करनेवाले तथा सोमाभिषेक करनेवाले यजमानके साथ संग्राममें इन्द्र सज्जिता करते हैं ।

७ जो आज इन्द्रके लिये सोमाभिषेक करते है, जो पुरोडाश प्रस्तुत करते हैं और जो भर्जन योग्य जोको भूजते हैं, उसी स्तोत्रकारीके स्तोत्रको स्वीकार करके इन्द्र, यजमानकी अभिलाषाके पूरक, यलको धारण करते है ।

८ जब शत्रुओंके हिंसक स्वामी इन्द्र शत्रुओंको जानते हैं, जब वे दीर्घ संग्राममें व्याप्त रहते हैं, तब उनकी पत्नी, सोमाभिषेककारी व्रतविक्र द्वारा तीक्ष्णीकृत अर्थात् सोमपान करनेसे उत्साहवान् तथा अभीष्टवर्षी इन्द्रका, यज्ञगृहमें, आह्वान करती है ।

९ कोई बहुत पण्य द्वारा अल्प धन प्राप्त करता है, फिर कौताके निकट गमन करके 'हमने विक्रय नहीं किया है' कहकर अवशिष्ट मूल्यकी प्रार्थना करता है । विक्रीता 'बहुत दिया है' कहकर अल्प मूल्यका अतिक्रम नहीं करता है । 'समर्थ या असमर्थ होओ विक्रय कालमें जो वचन हुआ है, वही रहेगा ।'

क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।

यदा वृत्राणि जङ्घनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥१०॥

नू ष्टुत इन्द्र नू शृणान इषं जरित्रो नद्यो न पीपेः ।

अकारि ते हरिवो नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥



२५ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

को अद्य नर्यो देवकाम उशन्नन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।

को वा महेवसे पार्याय समिद्धे अशौ सुतसोम ईट्ठे ॥१॥

को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उसाः ।

क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥२॥

१० कौन हमारे इन्द्रको प्रीणयित्री दस धेनुओं द्वारा, खरीदेगा ? जब इन्द्र शत्रुओंका वध करेंगे, तब इन्द्रको फिर मुझे देना ।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो । हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर सदा तुम्हारी सेवा करते रहें ।

१ आज कौन मनुष्य हितकर, देवताभिलाषी, कामयमान व्यक्ति इन्द्रके साथ मैत्री चाहता है ? सोमाभिषवकारी कौन व्यक्ति, अग्निके प्रज्वलित होनेपर, महान् तथा पारगामी आश्रय लाभके लिये, इन्द्रका स्तव करता है ?

२ कौन यजमान स्तुतिवाक्य द्वारा सोमार्ह इन्द्रके निकट अवनत होता है ? कौन इन्द्रकी स्तुतिकामना करता है ? कौन इन्द्र द्वारा प्रदत्त गौओंको धारण करता है ? कौन इन्द्रके साहाय्यकी इच्छा करता है ? कौन इन्द्रके साथ मैत्रीकी इच्छा करता है ? कौन इन्द्रके भ्रातृत्वकी इच्छा करता है ? कौन क्रान्तदर्शी इन्द्रसे आश्रय-प्रार्थना करता है ?

को देवानाम वो अद्या वृणीते कः आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीदृष्टे ।
 कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥३॥
 तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसञ्ज्योक् पश्यात् सूर्यमुच्चरन्तम् ।
 य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ॥४॥
 न तं जिनन्ति बहवोन दग्भा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
 प्रियः सुकृत् प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥५॥
 सुप्राव्यः प्राशुपालेप वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
 नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्यो बहन्तेदवाचः ॥ ६
 न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः संशृणीते ।
 आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत ॥७॥

३ आज कौन यजमान इन्द्र आदि देवताओंकी, रक्षाके लिये, प्रार्थना करता है? कौन आदित्य, अदिति तथा उदककी प्रार्थना करता है? अश्विद्वय, इन्द्र और अग्नि स्तुतिसे प्रसन्न हो कर, किस यजमानके अभिपुत्र सोमका यथेच्छ पान करते हैं?

४ जो यजमान कहते हैं कि, नेता, मनुष्योंके वन्द्य एवम् नेताओंके मध्यमें श्रेष्ठ नेता इन्द्रके लिये सोमाभिषव करेंगे, उन यजमानोंको हविर्भर्ता अग्नि सुख प्रदान करें तथा चिर कालसे उदित सूर्यको देखे।

५ अल्प अथवा अधिक शशु उन यजमानोंको हिसित नहीं करें। जो यजमान इन्द्रके लिये सोमाभिषव करते हैं। इन्द्र-माता अदिति उन यजमानोंको अधिक सुख प्रदान करें। शोभन यज्ञ-याग करनेवाले यजमान इन्द्रके प्रिय हों। जो इन्द्रकी स्तुति-कामना करते हैं, वे इन्द्रके प्रिय हों। जो इन्द्रके निकट साधुभावसे गमन करते हैं, वे इन्द्रके प्रिय हों। सोमवान् यजमान इन्द्रके प्रिय हों।

६ जो व्यक्ति इन्द्रके निकट गमन करता है और सोमाभिषव करता है, उसके पाक-कार्यको, शीघ्र अमिनवकारी तथा विक्रान्त इन्द्र स्वीकार करते हैं। जो यजमान सोमाभिषव नहीं करता है, उसके लिये इन्द्र व्यास नहीं होते हैं, सखा नहीं होते हैं और वन्द्य भी नहीं होते हैं। जो व्यक्ति इन्द्रके निकट गमन नहीं करता है और उनकी स्तुति नहीं करता है, इन्द्र उसकी हिसा करते हैं।

७ अभिपुत्रसोमपायी इन्द्र सोमाभिषव-कर्मरहित, धनवान्, लोभी वनियोंके साथ मैत्री संस्थापित नहीं करते हैं। वे उनके निरर्थक धनको उद्धरित करते हैं और नष्ट करते हैं। वे सोमाभिषवकारी तथा हव्यपाककारी यजमानके असाधारण वन्द्य होते हैं।

इन्द्रं परेवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥ ८ ॥

२६ सूक्त

प्रथम तीन मन्त्रों द्वारा वामदेवने इन्द्ररूपसे आत्माकी स्तुति की है अथवा इन्द्रने ही आत्माकी स्तुति की है; अतएव वामदेवके वाक्यके पक्षमें वामदेव ऋषि, इन्द्र देवता अथवा इन्द्रके वाक्यके पक्षमें इन्द्र ऋषि परमात्मा देवता । अवशिष्ट ऋचाओंके वामदेव ऋषि । सुपर्यात्मक परब्रह्म देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।

अहं कुत्समार्जुनेयन्यृञ्जेहं कविरुशाना पश्यता मा ॥ १ ॥

अहं भूमिमदक्षभार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।

अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥ २ ॥

अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकन्नवतीः शम्बरस्य ।

शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिवं यदावम् ॥ ३ ॥

८ उत्कृष्ट तथा निकृष्ट व्यक्ति इन्द्रका आह्वान करते हैं एवम् मध्यम व्यक्ति भी इन्द्रका ही आह्वान करते हैं । चलनेवाले लोग इन्द्रका आह्वान करते हैं तथा उपविष्ट लोग भी इन्द्रका ही आह्वान करते हैं । गृहवासी लोग इन्द्रका आह्वान करते हैं तथा युद्ध करनेवाले भी इन्द्रका ही आह्वान करते हैं । अन्नकी इच्छा करनेवाले लोग भी इन्द्रका ही आह्वान करते हैं ।

१ हम प्रजापति हैं, हम सबके प्रेरक सचिता हैं, हम ही दीर्घतमाके पुत्र मेधावी कक्षीवान् ऋषि हैं, हमने ही अर्जुनीपुत्र कुत्सको भली भाँति अलङ्कृत किया था, हम ही उशाना नामक कवि हैं । हे मनुष्यो, हमें अच्छी तरहसे देखो ।

२ हमने आर्यको पृथिवी दान किया था । हमने हव्यदाता मनुष्यको शस्यकी अभिवृद्धिके लिये वृष्टि दान किया था । हमने शब्दायमान जलका आनयन किया था । देवगण हमारे सङ्करूपका अनुगमन करते हैं ।

३ हमने सोमपानसे मत्त होकर शम्बरके ६६ नगरोंको एक कालमें ही ध्वस्त किया था । जिस समय हम यज्ञमें अतिथियोंके अभिगन्ता राजर्षि दिवोदासका पालन कर रहे थे, उस समय हमने दिवोदासको सौ नगर, निवास करनेके लिये, दिये थे ।

प्र सुपविभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा ।
 अचक्रया यत् स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥ ४ ॥
 भरद्यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि ।
 तूयं ययौ मधुना सोम्येनोतश्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥ ५ ॥
 ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम् ।
 सोमं भरद्वादृहाणो देवान्दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥ ६ ॥
 आदाय श्येनो अभरत् सोमं सहस्रं सर्वां अयुतं च साकम् ।
 अत्रा पुरन्धिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥७॥

२७ सूक्त

श्येन देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

गर्भं नु सन्नन्वेपामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।

शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥१॥

४ हे मरुद्गण, श्येन पक्षी पक्षियोंके मध्यमें प्रधान हो । अन्य श्येनोंकी अपेक्षा शाश्वरगामी श्येन प्रधान हो । जिस लिये कि, देवों द्वारा सेवित सोमरूप हव्यको, मनुष्योंके लिये, स्वर्ग-लोकसे चक्ररहित रथ द्वारा, सुपर्ण लाया था ।

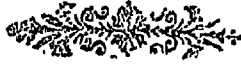
५ जब भयभीत होकर श्येन पक्षी ध्रुलोकसे सोम लाया था, तब वह विस्तीर्ण अन्त-रिक्ष मार्गमें मनकी तरह वेगयुक्त होकर उड़ा था एवम् सोममय मधुर अन्नके साथ वह शाश्व गया था; और, सोम लानेके कारण सुपर्णने इस लोकमें यशोलाभ किया था ।

६ देवोंके साथ होकर ऋजुगामी और प्रशंसित-गमन श्येन पक्षीने दूरसे सोमको धारण करके एवम् स्तुतियोग्य तथा मदकर सोमको, उन्नत ध्रुलोकसे, ग्रहण करके दृढ़भावसे उसका आनयन किया था ।

७ श्येन पक्षीने सहस्र और अयुत संख्यक यज्ञके साथ सोमको ग्रहण करके उस अन्नका आनयन किया था । उस सोमके लाये जानेपर बहुकर्मविशिष्ट प्राज्ञ इन्दने, सोम-सम्बन्धी हर्षके उत्पन्न होनेपर, मूढ़ शत्रुओंका वध किया था ।

१ गर्भमें विद्यमान होकर ही हम (वामदेव) ने इन्द्र आदि समस्त देवोंके जन्मको यथा-क्रमसे जाना था । अर्थात् परमात्माके समीपसे सब देव उत्पन्न हुए हैं । बहुतेरे लौहमय शरीरोंने हमारा पालन किया था । अर्थात् हम श्येनकी तरह स्थित होकर आवरणरहित आत्माको जानते हुए, शरीरसे निर्गत होते हैं ।

न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
 ईर्मा पुरन्धिरजहादरातीरुत वातां अतरच्छूशुवानः ॥२॥
 अव यच्छथेनो अस्वनीदध द्योर्वियद्यदिवात ऊहुः पुरन्धिम् ।
 सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥३॥
 ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार वृहतो अधिष्णोः ।
 अन्तः पतत् पतत्रथस्य पर्णमथ यामनि प्रसितस्य तद्वेः ॥४॥
 अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मधवा शुक्रमन्थः ।
 अध्वर्युभिः प्रयतं मच्चो अप्रमिन्द्रो मदाय प्रतिधत् पिबध्यै
 शूरो मदाय प्रतिधत् पिबध्यै ॥५॥



२ उस गर्भमें हमारा पर्याप्तरूपसे अपहरण नहीं किया था अर्थात् गर्भमें निवास करते समय हमें मोह नहीं हुआ था । हमने गर्भस्थ दुःखको तीक्ष्ण वीर्य द्वारा अर्थात् ज्ञानसामर्थ्यसे पराभूत किया था । सबके प्रेरक परमात्माने गर्भस्थित शत्रुओंका वध किया था और वर्द्धमान होकर गर्भमें क्लेशकारक वायुको अतिक्रान्त किया था ।

३ सोमाहरणकालमें जब श्येनने द्युलोकसे अधोमुख होकर शब्द किया था, जब सोमपालोंने श्येनके निकटसे सोम छोन लिया था, जब शरक्षेपक सोमपाल कृशानुने मनोवेगसे जानेकी इच्छा करके धनुषकी केटिपर प्रत्याञ्जा चढ़ायी थी और श्येनके प्रति शरक्षेपण किया था, तब श्येनने सोमका आनयन किया था ।

४ अश्विद्वयने जिस प्रकार सामर्थ्यवान् इन्द्रविशिष्ट देशसे भुज्युनामक राजाका आहरण किया था, उसी प्रकार ऋजुगामी श्येनने इन्द्ररक्षित महान् द्युलोकसे सोमका आहरण किया था । उस समय युद्धमें कृशानुके अस्त्रोंसे विद्ध होनेपर उस गमनशील पक्षीका एक मध्यस्थित तथा पतनशील पक्ष गिर पड़ा था ।

५ इस समय विक्रमवान् इन्द्र शुभ, पात्रस्थित गव्यमिश्रित, तृप्तिकर, सारसमन्वित एवम् अध्वर्युओं द्वारा प्रदत्त सोम लक्षण अन्नका और मधुर सोमरसका, हर्षके लिये पहले ही, पान करें ।



३६ सूक्त

इन्द्र और सोम देवता । वाग्देव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वा युजा तव तत् सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सख्यु तस्कः ।

अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥१॥

त्वा युजा नि खिदत् सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्द्रो ।

अधिष्णुना बृहता वर्तमानं महोद्रुहो अप विश्वायु धायि ॥२॥

अहन्निन्द्रो अदहद्ग्निरन्दो पुरा दस्यून्मध्यन्दिनादभीके ।

दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरु सहस्रा शर्वा नि वर्हीत ॥३॥

विश्वस्मात् सीमधमां इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।

अवाधेथाममृणतं नि शत्रू नविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥४॥

एवासत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्वयं गोः ।

आददृ तमपिहितान्यङ्ना रिरिचिथुः क्षाश्चित्तृदाना ॥५॥

१ हे सोम, इन्द्रके साथ तुम्हारी मंत्रो होनेपर इन्द्रने तुम्हारी सहायतासे मनुष्योंके लिये सरणशील जलको प्रवाहित किया था, वृत्रका यध किया था, सर्पणशील जलको प्रेरित किया था और वृत्र द्वारा तिरंगित जल-द्वारको उद्घाटित किया था ।

२ हे सोम, इन्द्रने तुम्हारी सहायतासे, क्षण-भस्में, प्रेरक सूर्यके रथके ऊपर स्थित बृहत् श्रन्तर्क्षिमें वर्तमान द्वित्रका रथके एक चक्रको बलपूर्वक तोड़ डाला था । प्रभूत द्रोहकारी सूर्यके सर्वतोगामी चक्रको इन्द्रने अपहृत किया था ।

३ हे सोम, तुम्हारे पानसे यलयान् इन्द्रने, मध्याह्नकालके पहले ही, संग्राममें शत्रुओंको मार डाला था और अग्निने भी कितने शत्रुओंको जला डाला था । किसी कार्यसे रक्षाशून्य दुर्गम स्थानसे जानेवाले व्यक्तिः जैसे चोर मार डालता है, उसी तरह इन्द्रने बहु सहस्र सेनाओंका यध किया है ।

४ हे इन्द्र, तुम इन दस्यूओंको सफल सद्गुणोंसे रक्षित करते हो । तुम कर्महीन मनुष्यों (दासों) को गदित (निन्दित) बनाते हो । हे इन्द्र और सोम, तुम दोनों शत्रुओंको बाधा दान करो और उनका यध करो । उन्हें मारनेके लिये लोगोंसे पूजा ग्रहण करो ।

५ हे सोम, तुम और इन्द्रने महान् अश्वसमूह और गौसमूहको दान किया था एवम् पणियों द्वारा आच्छादित गोचन्द्र और भूमिको बल द्वारा विमुक्त किया था । हे धनयुक्त इन्द्र और सोम, तुम दोनों शत्रुओंके दिसक हो । तुम दोनोंने इस प्रकारसे जो कुछ किया है, वह सत्य है ।

३६ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
 तिरश्चिदर्यः सवना पुरुण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥१॥
 आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान् हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
 स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुध्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥२॥
 श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै ।
 उद्रावृषाणो राधसे तुविष्मान् करन्नइन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥३॥
 अच्छायो गन्ता नाधमानमूती इत्या विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।
 उपत्मनि दधानो धुर्यां श्रून्तसहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥४॥

१ हे इन्द्र, तुम स्तुत होकर हम लोगोंको रक्षित करनेके लिये, हम लोगोंके अन्नयुक्त अनेक यज्ञोंमें, अश्वोंके साथ, आगमन करो । तुम मोदमान, स्वामी, स्तोत्रों द्वारा स्तूयमान और सत्यधन हो ।

२ मनुष्योंके हितकारी, सर्ववेत्ता इन्द्र सोमाभिपवकारियों द्वारा आहूत होकर यज्ञके उद्देशसे आगमन करें । वे सुन्दर अश्वोंसे युक्त हैं, वे निर्भय हैं, वे सोमाभिपवकारियों द्वारा स्तुत होते हैं एवम् वीर मस्तोंके साथ दृष्ट होते हैं ।

३ हे स्तोता, तुम इन्द्रके कर्णद्वयमें, इन्द्रको बली करनेके लिये और सब दिशाओंमें अतिशय दृष्ट करनेके लिये, स्तोत्रोंको सुनाओ । सोमरससे सिक्त बलवान् इन्द्र हम लोगोंके धनके लिये शोभन तीर्थोंको भयरहित करें ।

४ वज्रबाहु इन्द्र अपने वशीभूत सहस्रसंख्यक तथा शतसंख्यक शीघ्रगामी अश्वोंको, रथचहन प्रदेशमें संस्थापित करते हैं एवम् रक्षा करनेके लिये याचक, मेधावी ब्राह्मणादिकारी और स्तवकारी यज्ञमानके निकट गमन करते हैं ।

त्वोतासो मधवन्निन्द्र विप्रा वयन्ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।

भेजानासो बृहद्विवस्य राय आकाशस्य दावने पुरुक्षोः ॥५॥



३० सूक्त

इन्द्र देवता । नवमके उपा और इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री और अनुष्टुप् छन्द ।

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् । नकिरंवा यथा त्वम् ॥१॥

सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः । सत्रामहाँ असिश्रुतः ॥२॥

विश्वेचनेदनात्वा देवास इन्द्र युयुधुः । यद्वा नक्तमातिरः ॥३॥

यत्रोत वाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥४॥

यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् । त्वमिन्द्र वनूँ रहन् ॥५॥

५ हे धनवान् इन्द्र, हम लोग तुम्हारे स्तोता हैं । हम लोग तुम्हारे द्वारा रक्षित हैं, मेघावी और स्तुतिकारी हैं । तुम दीतिविशिष्ट, स्तुतियोग्य और अन्नविशिष्ट हो । धनदान-कालमें हम लोग तुम्हारा सम्भजन कर सकें ।

१ हे वृत्रनाशक इन्द्र, लोकमें तुम्हारी अपेक्षा कोई भी उत्कृष्टतर नहीं है, तुम्हारी अपेक्षा कोई भी प्रशस्ततर नहीं है । हे इन्द्र, तुम जिस तरह लोकमें प्रसिद्ध हो, उस तरह कोई भी नहीं है ।

२ सर्वत्र ज्यात चक्र जिस तरह शकटका अनुवर्तन करता है, उसी तरह प्रजागण तुम्हारा अनुवर्तन करते हैं । हे इन्द्र, तुम सचमुच महान् और गुण द्वारा प्रख्यात हो ।

३ ज्यामिलापी सब देवोंने यलरूपसे तुम्हारी सहायता प्राप्त करके, असुरोंके साथ युद्ध किया था । जिस लिये कि, तुमने अहानिंश शत्रुओंका वध किया था ।

४ हे इन्द्र, जिस युद्धमें तुमने युद्धकारी कुत्स प्रवम् उसके सहायकोंके लिये सूर्यके रथचक्रको अपहृत किया था ।

५ हे इन्द्र, जिस युद्धमें तुमने पकाफी होकर देवोंके वाधक सकल राक्षसोंके साथ युद्ध किया था तथा उन हिंसकोंका वध किया था ।

यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् । प्रावः शचीभिरेतशम् ॥६॥

किमादुतासि वृत्रहन् मघवन् मन्युमत्तमः । अत्राहदानुमातिरः ॥७॥

एतद्दधेदुतवीर्यमिन्द्र चकर्थं पौंस्यम् ।

स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥८॥

दिवश्चिद्दुघा दुहितरं महान् महीयमानाम् । उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥९॥

अपोषा अनसः सरत् सम्पिष्टादह विभ्युषी ।

नि यत् सीं शिक्षथद्रूषा ॥१०॥

एतदस्या अनः शये सुसम्पिष्टं विपाश्या । ससार सीं परावतः ॥११॥

उत सिन्धुं विवाल्यं वितस्थानामधिक्षमि । परिष्ठां इन्द्र मायया ॥१२॥

उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र सृक्षो अभि वेदनम् ।

पुरो यदस्य सम्पिणक् ॥१३॥

६ हे इन्द्र, जिस संग्राममें तुमने एतश ऋषिके लिये सूर्यकी हिंसा की थी, उस समय युद्धकर्म द्वारा तुमने एतशकी रक्षा की थी ।

७ हे आचरक अन्धकारके हननकर्ता धनवान् इन्द्र, उसके वाद क्या तुम अत्यन्त क्रोधवान् हुए थे ? इस अन्तरिक्षमें और दिवसमें तुमने दानुपुत्र वृत्रका वध किया था ।

८ हे इन्द्र, तुमने बलको इस प्रकारसे सामर्थ्ययुक्त किया था । तुमने हननामिलापिणी तथा ध्रुलोककी दुहिता उषाका वध किया ।

९ हे महान् इन्द्र, तुमने ध्रुलोककी दुहिता तथा पूजनीया उषाको सम्पिष्ट किया था ।

१० अभीष्टवर्षी इन्द्रने जब उषाके शकटको भग्न किया था, तब उषा भीत होकरके इन्द्र द्वारा भग्न शकटके ऊपरसे अवतीर्ण हुई थी ।

११ इन्द्र द्वारा विचूर्णित उषा देवीका शकट विपाशा नदीके तीरपर गिर पड़ा । शकटके टूट जानेपर उषादेवी दूर देशमें अपस्त हो गयीं ।

१२ हे इन्द्र, तुमने सम्पूर्णजला तथा तिष्ठमाना नदीको पृथ्वीके ऊपर, बुद्धिबलसे, सर्वत्र संस्थापित किया था ।

१३ हे इन्द्र, तुम वर्षणकारी हो । जिस समय तुमने शुष्णके नगरोंको सम्पिष्ट किया था, उस समय तुमने उसके धनको लूटा था ।

उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि । अवाहन्निन्द्र शाम्बरम् ॥१४॥
 उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः । अधि पञ्च प्रधीँरिव ॥१५॥
 उत त्वं पुत्रमग्रुवः परावृत्तं शतक्रतुः । उक्थेष्विन्द्र आमजत् ॥१६॥
 उत त्या तुर्वशायदू अस्त्रातारा शचीपतिः । इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥१७॥
 उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाच्चित्ररथावधीः ॥ १८ ॥
 अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन् । न तत्ते सुस्रमष्टवे ॥१९॥
 शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ॥२०॥
 अस्वापयद्भीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः । दासानामिन्द्रो मायया ॥२१॥

सघेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः ।

यस्ता विद्वानि चिच्युपे ॥२२॥

१४ हे इन्द्र, तुमने कुलितरके पुत्र दास शम्बरको, बृहत् पर्वतके ऊपर निम्न सुख करके मारा था ।

१५ हे इन्द्र, चक्रके चतुर्दिक् स्थित शङ्कु (हिंसक) की तरह वर्चि नामक दासके चतुर्दिक् स्थित पञ्चशत-संख्यक और सहस्र-संख्यक अनुचरोंको तुमने विशेष रूपसे मारा था ।

१६ शतकर्म इन्द्रने वग्रुके पुत्र परावृत्तको स्तोत्र-भागी किया था ।

१७ ययानिके शापसे अतभिपिक्त प्रसिद्ध राजा यदु और तुर्वशको शचीपति विद्वान् इन्द्रने अभिषेक-योग्य बनाया था ।

१८ हे इन्द्र, तुमने तत्क्षण सरयू नदीके पारमें रहनेवाले आर्यत्वामिमानो अर्ण और चित्ररथ नामक राजाका वध किया था ।

१९ हे वृत्रहन्ता, तुमने बन्धुओं द्वारा त्यक्त अन्ध और पङ्गुको अनुनीत किया था अर्थात् उनके अन्धत्व और पङ्गुत्वको व्रित्त किया था । तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुखको अतिक्रमण करनेमें कोई भी समर्थ नहीं हो सकता है ।

२० इन्द्रने हव्यदाता यजमान दिवोदासको, शम्बरके पापाणनिर्मित शतसंख्यक नगर दिये ।

२१ इन्द्रने दम्भतिके लिये अपनी शक्तिसे त्रिंशत्-सहस्र-संख्यक राक्षसोंको हनन-साधन आयु-धोंके द्वारा मुदा दिया था ।

२२ हे इन्द्र, तुमने इन समस्त शत्रुओंको प्रच्युत किया है । हे शत्रुओंके हिंसक इन्द्र, तुम नौधोंके पालक हो । तुम सम्पूर्ण यजमानोंके लिये समान रूपसे प्रख्यात हो ।

उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् ।

अद्या नकिष्टदामिन्त् ॥२३॥

वामं वामं त आदुरे देवो ददात्वयमा ।

वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूलती ॥२४॥

|||||||

३१ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

कयानश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥१॥

कस्त्वा सत्यो सदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृह्वाचिदारुजेवसु ॥२॥

अभीषुणः सखीनामविता जरितृणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥३॥

अभीन आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः । नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥४॥

प्रवता हि क्रतूनामाहा पदेव गच्छसि । अभक्षि सूर्ये सचा ॥५॥

२३ हे इन्द्र, जिस लिये तुमने अपने बलकां सामर्थ्योपेत किया है; उसी लिये आज भी कोई व्यक्ति उसकी हिंसा नहीं कर सकता है ।

२४ हे शशुचिनाशक इन्द्र, अर्थमादेव तुम्हें वह मनोहर धन दान करें, दन्तहीन पूषा वह मनोहर धन दान करें औः भग वह मनोहर धन दान करें ।

१ सर्वदा वर्द्धमान, पूजनीय और मित्रभूत इन्द्र किस तर्पण द्वारा हमारे अभिमुख आगमन करेंगे ? किस प्रज्ञायुक्त श्रेष्ठ कर्म द्वारा हम लोगोंके अभिमुख आगमन करेंगे ।

२ हे इन्द्र, पूजनीय, सत्यभूत और हर्षकर सोमरसोंके मध्यमें कौन सोमरस शशुओंके धनको विनष्ट करनेके लिये तुम्हें दृष्ट करेगा ?

३ हे इन्द्र, तुम सखा-स्वरूप स्तोताओंके रक्षक हो । तुम बहुत प्रकारकी रक्षाके साथ हमारे अभिमुख आगमन करो ।

४ हे इन्द्र, हम लोग तुम्हारे उपगन्ता हैं । तुम हम मनुष्योंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर हमारे निकट वृत्ताकार चक्रकी तरह प्रत्यागत होओ ।

५ हे इन्द्र, तुम यज्ञके प्रवण-प्रदेशमें अपने स्थानको जानकर आगमन करते हो । हे इन्द्र, हम सूर्यके साथ तुम्हारा सम्भजन करते हैं ।

सं यत्त इन्द्रमन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे । अध त्वे अध सूर्ये ॥६॥
 उत स्मा हि त्वामाहुर्निम्घवानं शचीपते । दातारमविदीधयुम् ॥७॥
 उत स्मा सद्य इत् परि शशमानाय सुन्वते । पुरुचिन्मंहसे वसु ॥८॥
 नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः । न च्यौत्वानि करिष्यतः ॥९॥
 अस्मां अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः ।

अस्मान्विद्वा अभिष्टयः ॥१०॥

अस्मां इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये । महो राये दिवित्मते ॥११॥

अस्मां अविड्ढि विद्वाहेन्द्र राया परीणसा ।

अस्मान्विद्वाभिरूतिभिः ॥१२॥

अस्मभ्यं तां अपावृधि व्रजां अस्तेव गोमतः ।

नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥१३॥

६ हे इन्द्र, तुम्हारे लिये सम्पादित स्तुति और कर्म जब हम लोगोंके द्वारा अनुमन्यमान होते हैं, तब वे पहले तुम्हारे होते हैं और उसके बाद सूर्यके होते हैं ।

७ हे कर्मपालक इन्द्र, तुम्हें लोग धनवान्, स्तोताओंके अभीष्टप्रद और दीप्तिमान् कहते हैं ।

८ हे इन्द्र, तुम क्षणभरमें ही स्तुतिकारी तथा सोमाभिषेककारी यजमानको बहुत धन प्रदान करते हो ।

९ हे इन्द्र, बाधक राक्षस आदि तुम्हारे शतपरिमित धनका निवारण नहीं कर सकते हैं । शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले तुम्हारे बलका निवारण, वे नहीं कर सकते हैं ।

१० हे इन्द्र, तुम्हारी शतसंख्यक रक्षा हम लोगोंकी रक्षा करे । तुम्हारी सहस्रसंख्यक रक्षा हम लोगोंकी रक्षा करे । तुम्हारा समस्त अभिगमन हम लोगोंकी रक्षा करे ।

११ हे इन्द्र, इस यज्ञमें तुम हम यजमानोंको सखा, अधिनाशों तथा दीप्तियुक्त धनका भागी बनाओ ।

१२ हे इन्द्र, तुम प्रतिदिन हम लोगोंकी, महान् धन द्वारा, रक्षा करो और समस्त रक्षा द्वारा रक्षा करो ।

१३ हे इन्द्र, तुम शूराकी तरह, नूतन रक्षा द्वारा, हम लोगोंके लिये गोविशिष्ट गोव्रज (गौश्रोकें निवासस्थान) का उद्धार करो ।

अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमां इन्द्रानपच्युतः । गव्युरश्वयुरीयते ॥१४॥

अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य । वर्षिष्ठन्यामिवोपरि ॥१५॥

—ॐॐॐॐॐॐॐ—

ॐ ॐ ऋक्त्तः

इन्द्र देवता । वायुदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमागहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥१॥

भूमिश्चिद्वधासि तूतुजिरा चित्र चित्रिणीष्वा । चित् कृणोष्युतये ॥२॥

दध्रोभिश्चिच्छशीयांसं हंसि ब्राधन्तमोजसा ।

सखिभिर्ये त्वे सचा ॥३॥

वयमिन्द्र त्वे सचा वयन्त्याभि नोनुमः । अस्माँ अस्माँ इदुद्व ॥४॥

स नश्चित्ताभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः । अनाधृष्टाभिरागहि ॥५॥

१४ हे इन्द्र, हम लोगोंका शत्रुधर्षक, दीप्तिमान्, विनाशरहित, गोकुल और अश्वयुक्त रथ सर्वत्र गमन करे । उस रथके साथ हम लोगोंकी रक्षा करो ।

१५ हे सवके प्रेरक आदित्य, तुमने जिस प्रकारसे सेत्वन-समर्थ छ लोकको ऊपरमें स्थापित किया है, उसी प्रकारसे देवोंके मध्यमें हम लोगोंके यशको उत्कृष्ट करो ।

१ हे शत्रुहिसक इन्द्र, तुम शीघ्र ही हम लोगोंके निकट आगमन करो । तुम महान् हो । महान् रक्षाके साथ तुम हमारे निकट आगमन करो ।

२ हे पूजनीय इन्द्र, तुम भ्रमणशील और हम लोगोंके अभीष्ट-दाता हो । चित्रकर्मयुक्त प्रजाको-तुम रक्षाके लिये, धन दान करते हो ।

३ हे इन्द्र, जो यजमान तुम्हारे साथ सङ्गत होते हैं, उन थोड़ेसे भी यजमानोंके साथ तुम उत्प्लवमान तथा वर्द्धमान शत्रुओंको अपने बलसे विनष्ट करते हो ।

४ हे इन्द्र, हम यजमान तुमसे सङ्गत हुए हैं । हम अधिक परिमाणमें तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम हम सवकी विशेष रूपसे रक्षा करो ।

५ हे वज्रधर, तुम मनोहर, अनिन्दित और शत्रुओंके द्वारा अप्रहर्षित अर्थात् अनाक्यमणी रक्षाओंके साथ हमारे निकट आगमन करो ।

भूर्यामोषु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः । युजो वाजाय घृष्वये ॥६॥

त्वं ह्येक ईशिप इन्द्र वाजस्य गोमतः । सनो यन्धि महीमिषम् ॥७॥

न त्वा वरन्ते अन्यथा यदित्ससि स्तुतो मघम् ।

स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥८॥

अभि त्वा गोतमा गिरानूपत प्रदावने ।

इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥९॥

प्र ते वोचाम वीर्या या मन्दसान आरुजः ।

पुरोदासीरभीत्य ॥१०॥

ता ते शृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या ।

सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥११॥

अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः ।

एषु धा वीरव्यशः ॥१२॥

६ हे इन्द्र, हम तुम्हारे सट्टश गोयुक्त देवताके सखा हैं । प्रभूत अन्नके लिये तुम्हारे साथ संयुक्त होते हैं ।

७ हे इन्द्र, जिस कारण तुम ही एक गोयुक्त अन्नके स्वामी हो, इसलिये तुम हमें प्रभूत अन्न दान करो ।

८ हे स्तुतियोग्य इन्द्र, जब तुम स्तुत होकर स्तोताओंको धन दान करनेकी इच्छा करते हो, तब कोई भी उसे अन्यथा नहीं कर सकता है ।

९ हे इन्द्र, तुम्हें लक्ष्य करके गोतम नामवाले ऋषि धन और प्रभूत अन्नके लिये, स्तुति वाक्य द्वारा, तुम्हागी स्तुति करने हैं ।

१० हे इन्द्र, सोमपानसे हृष्ट होकरके तुम क्षेपक असुरोंके सम्पूर्ण नगरोंमें अभिगमन करके उन्हें भय कर देते हो । हे इन्द्र, हम स्तोता तुम्हारे उसी वीर्यका कीर्तन करते हैं ।

११ हे इन्द्र, तुम स्तुतियोग्य हो । तुमने जिन बलोंको प्रदर्शित किया है, हे इन्द्र, प्राज्ञगण सोमामिषव होनेपर तुम्हारे उन्हीं बलका संकीर्तन करते हैं ।

१२ हे इन्द्र, स्तोत्रवाहक गोतमगण तुम्हें स्तोत्र द्वारा वर्द्धित करते हैं । तुम इन्हे पुत्र पीत्रयुक्त अन्न दान करो ।

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधरणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥१३॥

अर्वाचीनो वसो भवास्मे सु मत्स्वान्धसः । सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥१४॥

अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु । अर्वागा वर्तया हरी ॥१५॥

पुरोलाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्चनः । बधूयुरिव योषणाम् ॥१६॥

सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे । शतं सोमस्य खार्यः ॥१७॥

सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि । अस्मत्रा राध एतु ते ॥१८॥

दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि । भूरिदा असि वृत्रहन् ॥१९॥

भूरिदा भूरि देहि नो मा दध्रं भूर्या भर । भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥२०॥

भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन् । आ नो भजस्व राधसि ॥२१॥

१३ हे इन्द्र, यद्यपि तुम सब यजमानोंके साधारण देवता हो; तथापि हम स्तोता तुम्हारा आह्वान करते हैं ।

१४ हे निवासप्रद इन्द्र, तुम हम यजमानोंके अभिमुख आगमन करो । हे सोमपा, तुम सोमरूप अन्न द्वारा दृष्ट होओ ।

१५ हे इन्द्र, हम तुम्हारे स्तोता हैं । हमारा स्तोत्र तुम्हें हमारे निकट ले आवे । तुम अश्वद्वयको हमारे अभिमुख परिवर्तित करो ।

१६ हे इन्द्र, तुम हमारे पुरोडाश रूपा अन्नका भक्षण करो । स्त्रीकामी पुरुष जैसे स्त्रियोंके वचनकी सेवा करता है, उसी तरह तुम हमारे स्तुतिवाक्यका सेवन करो ।

१७ हम स्तोता इन्द्रके निकट शिक्षित, शीघ्रगामी, सहस्रसंख्यक अश्वोंकी याचना करते हैं एवम् शतसंख्यक सोम-कलशकी याचना करते हैं अर्थात् अपरिमित कलशवाले यज्ञकी याचना करते हैं ।

१८ हे इन्द्र, हम तुम्हारी शतसंख्यक और सहस्रसंख्यक गौओंको अपने अभिमुख करते हैं । हम लोगोंका धन तुम्हारे निकटसे आवे ।

१९ हे इन्द्र, हम तुम्हारे समीपसे दश कुम्भ-परिमित सुवर्ण धारण करते हैं । हे शत्रु-हिंसक इन्द्र, तुम सहस्रप्रद होते हो ।

२० हे इन्द्र, तुम बहुप्रद हो । तुम हम लोगोंको बहुत धन दान करो । अल्प धन मत दो । तुम बहुत धन हम लोगोंके लिये लाओ; क्योंकि तुम हम लोगोंको प्रभूत धन देनेकी इच्छा करते हो ।

२१ हे वृत्रहिंसक विभ्रान्त इन्द्र, तुम बहुप्रद रूपसे बहुतरे यजमानोंके निकट विख्यात हो । तुम हम लोगोंको धनका भागी करो ।

प्र ते वभ्रु विचक्षणं शंसामि गोषणो नपात् ।

माभ्यां गा अनु शिश्नथः ॥२२॥

कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके ।

वभ्रु यामेषु शोभेते ॥२३॥

अरं म उस्त्रयाम्णोऽरमनुस्त्रयाम्णे ।

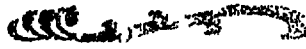
वभ्रु यामेष्वस्त्रिधा ॥२४॥

२२ हे प्राज्ञ इन्द्र, हम तुम्हारे पिङ्गलवर्ण अश्वद्वयकी प्रशंसा करते हैं । हे गोप्रद, तुम स्तोताओंका विनाश नहीं करते हो । तुम इस अश्वद्वय द्वारा हमारी गौओंको विनष्ट नहीं करना ।

२३ हे इन्द्र, दृढ़, नव और क्षद्र द्रुमाख्य स्थानमें स्थित कमनीय शाल-भञ्जिका-द्वय (पुत्तलिका) की तरह तुम्हारे पिङ्गलवर्ण दोनों घोड़े यज्ञमें शोभा पाते हैं ।

२४ हे इन्द्र, हम जब वृषभयुक्त रथ द्वारा गमन करें अथवा जब पद द्वारा गमन करें, तब तुम्हारा अर्हिसक तथा पिङ्गलवर्ण अश्वद्वय हमारा पर्याप्तकारी हो ।

फल अर्घ्याय समाप्त



सप्तम अध्याय

३३ सूक्त

४ अनुवाक । ऋभुगण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तरे श्वैतरीन्धेनुमीले ।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥१॥
यदारमक्रन्तृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद्वेवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥२॥
पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्याँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥३॥
यत् संवत्समृभवो गामरक्षन्त्यत् संवत्समृभवो मा अपिंशन् ।
यत् संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥४॥

१ हम यजमान ऋभुओंके निकट, दूतकी तरह, स्तुतिवाक्य प्रेरित करते हैं। हम उनके निकट सोम-उपस्तरणके लिये पयोयुक्त धेनुकी याचना करते हैं। ऋभुगण वायुके समान गमनवाले हैं। वे जगत्के उपकार-जनक कर्मको करनेवाले हैं। वे वेगसे जानेवाले घोड़ों द्वारा अन्तरिक्षका क्षणमात्रमें परिल्याप्त करते हैं।

२ जब ऋभुओंने माता-पिताको परिचर्या द्वारा युवा किया था एवम् चमस-निर्माणादि अन्य कार्य करके वे अलंकृत हुए थे, तब इन्द्रादि देवोंके साथ उन्होंने उसी समय सख्य लाभ किया था। धीर ऋभुगण प्रकृष्ट मनस्वी हैं। वे यजमानोंके लिये पुष्टि धारण करते हैं।

३ ऋभुओंने यूपकाष्ठकी तरह जीर्ण और शयनशील माता-पिताको नित्य तरुण किया था। वाज, विभु और ऋभु इन्द्रके साथ सोम पान करके हम लोगोंके यज्ञकी रक्षा करें।

४ ऋभुओंने संवत्सर-पर्यन्त मृतक गौका पालन किया था। ऋभुओंने उस गौके मांसको संवत्सर-पर्यन्त अवयवयुक्त किया था एवम् संवत्सर पर्यन्त उसके शरीरके सौन्दर्यकी रक्षा की थी। इन सकल कार्यों द्वारा उन्होंने देवत्व प्राप्त किया था।

ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन् कृणवामेत्याह ।
 कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत् पनयद्वचो वः ॥५॥
 सत्यमूचुर्नर एवाहि चक्रुरुनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
 विभ्राजमानांश्चमसां अहेवावेनत्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥६॥
 द्वादश द्यू न्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नुभवः ससन्तः ।
 सुक्षेत्राकृण्वन्तनयन्त सिधून्धन्वातिष्ठन्नोपधीर्निम्नमापः ॥७॥
 रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
 त आतक्षन्वृभवो रथिं नः स्वपसः सुहस्ताः ॥८॥
 अपोह्येषामजुपन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।
 वाजी देवानामभवत् सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥९॥

५ ज्येष्ठ ऋभुने कहा, "एक चमसको दो करेंगे ।" उसके अवरज विभुने कहा, "तीन करेंगे ।" उसके कनिष्ठ प्राज्ञने कहा, "चार प्रकारसे करेंगे ।" हे ऋभुओ, तुम्हारे गुरु त्वष्टाने इस चतुष्करण-रूप तुम्हारे ध्वजको अङ्गीकार किया था ।

६ मनुष्य-रूप ऋभुओंने सत्य कहा था; क्योंकि उन्होंने जैसा कहा, वैसा किया था । इसके अनन्तर ये ऋभुगण तृतीय सवनगत स्वधाके भागी हुए थे । दिवसकी तरह दीप्तिमान् चार चमसोंको देगकर त्वष्टाने उसकी कामना की थी—उसे अङ्गीकार किया था ।

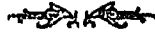
७ अगोपनीय सूर्यके गृहमें जब ऋभुगण आर्द्रासे लेकर वृष्टिकारक चारह नक्षत्रोंतक अतिथिरूपसे [सत्यन होकर] सुगपूर्यक निवास करते हैं, तब वे वृष्टि द्वारा खेतोंको शस्य-सम्पन्न करते और नदियोंको प्रेरित करते हैं । जलविहीन स्थानमें ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं; और, नीचेकी तरफ जल जमा होता है । *

८ हे ऋभुओ, जिन्होंने तुम्हक और चक्रविशिष्ट रथका निर्माण किया था, जिन्होंने विश्वकी प्रेरयित्री और यहुरूपी धेनुको उत्पन्न किया था, वे सुकर्मा, सुन्दर, अन्नयुक्त और सुहस्त ऋभु हम लोगोंके धनका निष्पादन करें ।

९ इन्द्र आदि देवोंने घरप्रदान-रूप कर्म द्वारा पञ्चम प्रसन्न अन्तःकरण द्वारा देदीप्यमान होकर इन ऋभुओंके अश्व, रथ आदि निर्माण रूप कर्मको स्वीकार किया था । शोभन व्यापारवाले कनिष्ठ वाज सब देवोंके सम्यन्धी हुए, ज्येष्ठ ऋभु इन्द्रके सम्यन्धी हुए और मध्यम विभु वरुणके सावन्धी हुए ।

* इन ऋचामें सूर्यरश्मिरूपसे ऋभुओंकी स्तुति की गयी है।—सायण ।

ये हरी मेधयोक्त्रा मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वः ।
 ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥१०॥
 इदाह्नः पीतिमुत वो मदन्धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
 ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्सवने दधात ॥११॥



३४ सूक्त

ऋभुगण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

ऋभुर्विभवा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।
 इदाहि वो धिषणा देव्यहूनामधात् पीतिं सम्मदा अगमता वः ॥१॥
 विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।
 सं वो मदा अगमत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥२॥

१० हे ऋभुओ, जिन्होंने अश्वद्वयको प्रज्ञा तथा स्तुति द्वारा हृष्ट किया था, जिन्होंने उस अश्व-द्वयको इन्द्रके लिये सुयोजमान किया था, वही ऋभुगण हम लोगोंको, मङ्गलाकांक्षी मित्रकी तरह, धन, पुष्टि, गौ आदि धन तथा सुख दान करें।

११ चमस आदि निर्माणके अनन्तर तृतीय सवनमें देवोंने तुम लोगोंको सोमपान तथा तदुत्पन्न हर्ष प्रदान किया था। तपोयुक्त व्यक्तिको छोड़कर दूसरेके सखा देवगण नहीं होते हैं। हे ऋभुओ, इस तृतीय सवनमें तुम निश्चय ही हम लोगोंको धन दान करो।

१ हे ऋभु, विभु, वाज और इन्द्र, रत्न दान करनेके लिये तुम लोग हमारे इस यज्ञमें आओ, क्योंकि अभी दिनमें वाक्देवी तुम लोगोंको सोमाभिपव-सम्बन्धी प्रीति दान करती हैं। इसलिये सोमजनित हर्ष तुम लोगोंके साथ सङ्गत हो।

२ हे अन्न द्वारा शोभमान ऋभुगण, पहले तुम लोगोंका जन्म मनुष्योंमें हुआ था, अब देवत्व-प्राप्तिको जान करके तुम लोग देवोंके साथ हृष्ट होओ। हर्षकर सोम और स्तुति तुम लोगोंके लिये एकत्र हृष्ट है। तुम लोग हमारे लिये पुत्र-पौत्र-विशिष्ट धन प्रेरित करो।

अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत् प्रदिवो दधिध्वे ।

प्र वोच्छा जुजुपाणासो अस्थुरभूत विश्वे अश्रियोत वाजाः ॥३॥

अभूदुं वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुपे मर्त्याय ।

पिवत वाजा ऋभवो ददे वो माह तृतीयं सवनं मदाय ॥४॥

आ वाजा यातोष न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।

आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥५॥

आ नपातः श्वसो यातनोपेमं यज्ञं नमसां हूयमानाः ।

सजोपसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥६॥

सजोपा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।

अग्नेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पतीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥७॥

१ हे ऋभुओं, तुम लोगोंके लिये यह यज्ञ किया गया है। मनुष्यकी तरह दीक्षिणाली होकर तुम लोग इसे धारण करो। संवमान सोम तुम लोगोंके निकट रहता है। हे वाजगण, तुम लोग ही प्रथम उपास्य हो।

४ हे नेतृगण, तुम्हारे अनुग्रहसे अभी दत्त तृतीय सवनमें दानयोग्य रत्न परिचर्याकारी, हव्यदाता यज्ञमानके लिये हो। हे वाजगण, हे ऋभुगण, तुम लोग पान करो। तृतीय सवनमें हर्षके लिये प्रभूत सोम हम तुम लोगोंके लिये दान करते हैं।

५ हे वाजो, हे ऋभुक्षाओ, तुम लोग नेता हो। महान् धनकी स्तुति करते हुए तुम लोग हमारे निकट आगमन करो। दिवसकी समाप्तिमें अर्थात् तृतीय सवनमें जैसे नवप्रसवा गौएँ गृहके प्रति आगमन करती हैं, उसी तरह यह सोम-रसका पान तुम लोगोंके निकट आगमन करता है।

६ हे यत्पुत्रो या वल्लयानो, स्तोत्र द्वारा आहूत होकर तुम लोग इस यज्ञमें आगमन करो। तुम लोग इन्द्रके साथ प्रीत होते हो और मेधावी हो; क्योंकि तुम लोग इन्द्रके सम्बन्धी हो। तुम लोग इन्द्रके साथ रत्न दान करते हुए मधुर सोमरसका पान करो।

७ हे इन्द्र, तुम राज्यभिमानी वरुणदेवके साथ समान-प्रीतियुक्त होकर सोम पान करो। हे मनुनियोग्य इन्द्र, तुम मरुतोंके साथ सहज होकर सोमपान करो। प्रथम पानकारी ऋतुओंके साथ, देवपतियोंके साथ और रत्न देनेवाले ऋतुओंके साथ सोम पान करो।

सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः ।

सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥८॥

ये अश्विना ये पितरा य जती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।

ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥९॥

ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।

ते अग्रेषा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रतिं गृणन्ति ॥१०॥

नापाभूत नः वोऽतीतृषामानिःशस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।

समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः संराजभी रत्नधेयाय देवाः ॥११॥

८ हे ऋभुओ, आदित्योंके साथ सङ्गत होकर तुम दृष्ट होओ, पर्वतों अर्चमान देवविशेषके साथ सङ्गत होकर तुम दृष्ट होओ, देवोंके हितकर सविता देवके साथ सङ्गत होकर दृष्ट होओ और रत्नदाता नद्यमिमानी देवोंके साथ सङ्गत होकर दृष्ट होओ ।

९ हे ऋभुओ, जिन्होंने अश्विद्वयको रथनिर्माणादि कार्य द्वारा प्रीत किया था, जिन्होंने जीर्ण पिता-माताको युवा किया था, जिन्होंने धेनु और अश्वका निर्माण किया था, जिन्होंने देवोंके लिये अंसत्रा कवच निर्माण किया था, जिन्होंने छावापृथिवीको पृथक् किया था, जो व्याप्त एवम् नेता हैं और जिन्होंने सुन्दर अपत्य-प्राप्ति-साधन-रूप कार्य किया था, वे प्रथम पानकारी हैं ।

१० हे ऋभुओ, जो गोविशिष्ट, अन्नविशिष्ट, पुत्रपौत्रादिविशिष्ट निवासयोग्य गृह आदि धनों से युक्त तथा बहुत अन्नवाले धनको धारण करते हैं एवम् जो धनकी प्रशंसा करते हैं, वह प्रथम पानकारी ऋभुगण दृष्ट होकर हम लोगोंको धन दान करें ।

११ हे ऋभुओ, तुम लोग चले नहीं जाना । हम तुमलोगोंको अत्यन्त तृप्त नहीं करेंगे । हे देवो (ऋभुओ), तुम लोग अनिन्दित होकर रमणीय धन दान करनेके लिये इस यज्ञमें इन्द्रके साथ दृष्ट होओ, मरुतोंके साथ दृष्ट होओ और अन्यान्य दीप्तिमान् देवोंके साथ दृष्ट होओ ।

३५ सूक्त

ऋभुगण देवता । वामदेव ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः ।

इहोप यात श्वसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत ।
 अस्मिन् हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनुवो मदासः ॥१॥
 आगन्तृभूणामिह रत्नधेयमभूत् सोमस्य सुपुतस्य पीतिः ।
 सुकृत्यया यत् स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥२॥
 व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिजेत्यब्रवीत ।
 अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥३॥
 किं मयस्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र ।
 अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥४॥
 शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवपानम् ।
 शच्या हरी धनुतरावतप्रेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥५॥

१ हे बलके पुत्र, सुधन्वाके पुत्र, ऋभुओ, तुम सब इस तृतीय सवनमें आओ, अपगत मत होओ । इस सवनमें मदकर सोम, रत्नदाता इन्द्रके अनन्तर, तुम लोगोंके निकट गमन करो ।

२ ऋभुओंका रत्नदान इस तृतीय सवनमें मेरे निकट आवे; क्योंकि तुम लोगोंने शोभन हस्त-ध्यापार द्वारा और कर्मकी इच्छा द्वारा एक चमसको चतुर्धा किया था एवम् अभिपुत सोमपान किया था ।

३ हे ऋभुओ, तुम लोगोंने चमसको चतुर्धा किया था एवम् कहा था कि, "हे सखा अग्नि, अनुग्रह करो ।" अग्निने तुम लोगोंसे कहा—“हे वाजगण, हे ऋभुगण, तुम लोग कुशलहस्त हो । तुम लोग अमरत्वपथमें अर्थात् स्वर्गमार्गमें गमन करो ।”

४ जिस चमसको कौशल-पूर्वक चार किया था, वह चमस किस प्रकारका था ? हे ऋत्विको, तुम लोग हर्षके लिये सोमाभिपव करो । हे ऋभुओ, तुम लोग मधुर सोमरसका पान करो ।

५ हे रमणीय सोमवाले ऋभुओ, तुम लोगोंने कर्म द्वारा माता-पिताको युवा किया था, कर्म द्वारा चमसको देवपानके योग्य चतुर्धा किया था और कर्म द्वारा शीघ्रगामी इन्द्रके वाहक अश्वद्वयको सम्पादित किया था ।

यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
 तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमातक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥६॥
 प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते ।
 समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखीयाँ इन्द्र चक्रुषे सुकृत्या ॥७॥
 ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषद ।
 ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥८॥
 यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
 तदृभवः परिषिक्तं व एतत् सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥९॥

३६ सूक्त

ऋभुगण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप्, जगती छन्द ।

अश्वो जातो अश्वीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।
 महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥१॥

६ हे ऋभुओ, तुम लोग अन्नवान् हो । जो यजमान तुम लोगोंके उद्देशसे, हर्षके लिये, दिवावसानमें तीव्र सोमका अभिषव करता है, हे फलवर्षी ऋभुओ, तुम लोग हृष्ट होकर, उस यजमानके लिये बहु-पुत्रयुक्त धनका सम्पादन करो ।

७ हे हरिविशिष्ट इन्द्र, तुम प्रातः सवनमें अभिषुत सोम पान करो । माध्यन्दिन सवन केवल तुम्हारा ही है । हे इन्द्र, तुमने शोभन कर्म द्वारा जिसके साथ मैत्री की है, उस रत्नदाता ऋभुओं के साथ तुम तृतीय सवनमें पान करो ।

८ हे ऋभुओ, तुम लोग सुकर्म द्वारा देवतां हुए थे । हे बलके पुत्रो, तुम लोग श्येन [गृध्र-विशेष] की तरह धुलोकमें निषण्ण हो । तुम लोग धन दान करो । हे सुधन्वाके पुत्रो, तुम लोग अमर हुए थे ।

९ हे सुहस्त ऋभुओ, चूँकि तुम लोग रमणीय सोमदानयुक्त तृतीय सवनको शोभन कर्मकी इच्छासे प्रयुक्त और प्रसाधित करते हो, इसलिये तुम लोग हृष्ट इन्द्रियोंके साथ अभिषुत सोम पान करो ।

१ हे ऋभुओ, तुम लोगोंका कर्म स्तुतियोग्य है । तुम लोगों द्वारा प्रदत्त अश्विनीकुमारका त्रिचक्र रथ अश्वके बिना और प्रग्रहके बिना अन्तरिक्षमें परिभ्रमण करता है । जिसके द्वारा तुम लोग द्यावा-पृथिवीका पोषण करते हो, वह रथनिर्माण-रूप महान् कर्म तुम लोगोंक देवत्वको प्रख्यात करता है ।

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसो विह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
 ताँजन्व स्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ।२।
 तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्यो अभवन् महित्वनम्
 जिन्वी यत् सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तच्चथ ।३।
 एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
 अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥४॥
 ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः ।
 विभवतष्टो विदयेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥५॥
 सवाज्यर्वा स ऋपिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
 स रायस्पोपं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्याँ ऋभवो यमाविषुः ।६।

२ हे सुन्दरान्तःकरण ऋभुओ, तुम लोगोंने मानसिक ध्यान द्वारा सुवर्तन चक्रवाला अकुटिल रथ निर्माण किया था । हे वाजगण और हे ऋभुगण, हम सोमपानके लिये तुम लोगोंको आवेदित करते हैं ।

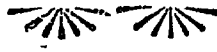
३ हे वाजगण, हे ऋभुगण और हे विभुगण, तुम लोगोंने जो वृद्ध और जीर्ण पिता-माताको नित्य तगण और सर्वदा विचरणक्षम किया था, तुम लोगोंका वही माहात्म्य देवोंके मध्यमें प्रख्यात है ।

४ हे ऋभुओ, तुम लोगोंने एक चमसको चार भागोंमें विभक्त किया था, कर्म द्वारा गौको चमसे परिधृत किया था; अतएव तुम लोगोंने देवोंके बीच अमरत्व पाया है । हे वाजगण, ऋभुगण, तुम लोगोंका यह कर्म प्रशंसाके योग्य है ।

५ वाजोंके साथ विख्यात नेता ऋभुओंने जिस धनको उत्पन्न किया था, प्रधान और प्रभूत वह अन्नविशिष्ट धन ऋभुओंके निकटसे हमारे निकट आवे । यक्षमें ऋभुओं द्वारा सम्पन्न रथ विशेष रूपसे प्रशंसाके योग्य है । हे दीसिविशिष्ट ऋभुओ, तुम लोग जिसकी रक्षा करते हो, वह दर्शन-योग्य होता है ।

६ वाज, विभु और ऋभु जिस पुरुषकी रक्षा करते हैं, वह बलवान् होकर रणकुशल होता है, वह ऋषि होकर स्तुतियुक्त होता है, वह शूर होकर शत्रुओंका प्रक्षेपक होता है, वह युद्धमें उद्धर्ष होता है, वह धनपुष्टि और पुत्र-पौत्रादि धारण करता है ।

श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवरतं जुजुष्यन ।
 धीरासो हि ष्टा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥७॥
 यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यंरपरि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना
 द्युमन्तं वाजं वृषशुष्मसु त्तममा नो रयिमृभवरतक्षता वयः ॥८॥
 इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्क्षता नः ।
 येन वर्यं चितयेमात्यःयान्तं वाजं चित्रमृभवो ददानः ॥९॥



३७ सूक्त

ऋभुगण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

उप नो वाजा अश्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।

यथा यज्ञं मनुषो विद्ध्वा सु दधिध्वे ररावाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥१॥

७ हे वाजगण, हे ऋभुगण, तुम लोग अत्युत्कृष्ट और दशनीय रूप धारण करते हो । हम लोगोंने तुम्हारे लिये यह उचित स्तोत्र किया है । तुम लोग इसका सेवन करो । तुम लोग धीमान्, कवि और ज्ञानवान् हो । स्तोत्र द्वारा हम तुम लोगोंको आवेदित करते हैं ।

८ हे ऋभुओ, हमारी स्तुतिके लिये, मनुष्योंकी हितकारिणी समस्त भोग्य वस्तुओंको जानकर, तुम उनकी समाप्ति करो एवम् हमारे लिये दीप्तिमान्, बलकारक और बलवान् शत्रुओंके शोषक धन और अन्नका सम्पादन करो ।

९ हे ऋभुओ, तुम लोग हमारे इस यज्ञमें प्रीत होकर पुत्र-पौत्रादिका सम्पादन करो, इस यज्ञमें धन सम्पादन करो और इस यज्ञमें भृत्यादि-युक्त यज्ञ सम्पादन करो । हम लोग जिस अन्नके द्वारा दूसरोंका अतिक्रमण कर सकें, उस तरहका रमणीय अन्न हम लोगोंको दो ।

१ हे रमणीय ऋभुओ, तुम लोग जिस तरहसे दिवसोंको सुदिन करनेके लिये मनुष्योंके यज्ञ को धारण करते हो, हे वाजगण, हे ऋभुगण, उसी तरहसे तुम लोग देवमार्ग द्वारा हमारे यज्ञमें आगमन करो ।

ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अथ घृतनिर्णिजो गुः ।
 प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः ऋत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥२॥
 श्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
 जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्विवेषु सोमम् ॥३॥
 पीवो अश्वाः शुचद्रथा हि भूतायःशिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
 इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥४॥
 ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् ।
 इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥५॥
 सेद्वभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
 स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥६॥

२ आज यह सारं यज्ञ तुम्हारे हृदय और मनमें प्रीतिदायक हो, घृतमिश्रित पर्याप्त सोमगन्ध तुम्हारे हृदयमें गमन करे। चमसपूर्ण अभिषुत सोमरस तुम्हारी कामना करता है। वह प्रीति होकर तुम्हें सुकर्मके लिये हृष्ट करे।

३ हे वाजगण, हे ऋभुगण, जो लोग सवनत्रयोपेत, देवोंके हितकर सोमको, तुम लोगोंके उद्देशसे, धारण करते हैं अथवा सोमको तुम लोगोंके उद्देशसे धारण करते हैं, उन समवेत प्रजाओंके मध्यमें हम मनुकी तरह प्रभूत-दीप्तियुक्त होकर तुम्हारे उद्देशसे सोम प्रदान करते हैं।

४ हे ऋभुओ, तुम्हारे अथवा पाँव हैं, तुम्हारे रथ दीप्तिशाली है, तुम्हारा हनुद्वय लोहेके तरह सारवान् है। तुम अन्नवान् और शोभन निष्क (दान) वाले हो। हे इन्द्रके पुत्रो और बलके पुत्रो, तुम लोगोंके हर्षके लिये यह प्रथम सवन अनुष्ठित हुआ है।

५ हे ऋभुओ, हम अत्यन्त प्रासमान धनका आह्वान करते हैं, संग्राममें अत्यन्त बलवान् रक्षकक आह्वान करते हैं और सर्वदा दानशील, अश्ववान् तथा इन्द्रवान् या इन्द्रियवान् आपके गणका आह्वान करते हैं।

६ ऋभुओ, तुम और इन्द्र जिस मनुष्यकी रक्षा करते हो, वही श्रेष्ठ होता है। वह कर्म द्वारा धनभारगी हो। वह यज्ञमें अश्वयुक्त हो।

७ ऋग्वेदके अनेक स्थानोंमें "निष्क" शब्द प्रयुक्त हुआ है। यह उस समयकी स्वर्ण-मुद्रा था।

वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
 अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरिषणि ॥७॥
 तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
 समश्चं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥८॥

|||||

३८ सूक्त

प्रथमके द्यावापृथिवी और अश्विदेवके दधिक्रा देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।
 क्षेत्रासां ददथुर्र्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥१॥
 उत वाजिनं पुरुनिष्विध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम् ।
 ऋजिप्यं श्येनं पृषितप्सुमाशुं चकृत्त्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥२॥
 यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः ।
 पड्भिर्घृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥३॥

७ हे वाजगण, हे ऋभुगण, हम लोगोंको यज्ञमाग प्रज्ञापित करो । हे मेघावियो, तुम लोग स्तुत होनेपर समस्त दिशाओंको उत्तीर्ण करनेकी सामर्थ्यको वितरित करो ।

८ हे वाजगण, हे ऋभुगण, हे इन्द्र, हे अश्विदेव, तुम लोग हम स्तुति करनेवाले मनुष्योंके लिये, धन-दानार्थ, प्रभूत धन और अश्वके दानकी आज्ञा करो ।

१ हे द्यावापृथिवी, दाता त्रसदस्यु राजाने तुम्हारे समीपसे बहुत धन पा करके याचक मनुष्योंको दिया था, तुमने उन्हें अश्व और पुत्र दिया था एवम् दस्युओंको मारनेके लिये अभिभव-समर्थ उग्र अस्त्र दिया था ।

२ गमनशील, अनेक शत्रुओंके निपेक्षक, समस्त मनुष्योंके रक्षक, सुन्दर-गमन, दीप्ति-विशिष्ट, शीघ्रगामी एवम् चलवान् राजाकी तरह शत्रु-विनाशक दधिक्रा (अश्वरूपी अग्नि) देवको तुम दोनों (द्यावापृथिवी) धारण करती हो ।

३ सब मनुष्य हष्ट होकर जिस दधिक्रा देवकी स्तुति करते हैं, वे निम्नगामी जलकी तरह गमनशील संग्रामाभिलाषी शूरकी तरह पद द्वारा दिशाओंके लङ्घनाभिलाषी, रथगामी और वायुकी तरह शीघ्रगामी हैं ।

यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।
 आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यन्तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥४॥
 उत स्मैनं वस्त्रमर्थिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
 नीचायमानं जुसरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥५॥
 उत स्मासु प्रथमः सरिष्यन्ति वेवेति श्रेणिभी रथानाम् ।
 स्रजं कृष्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत् करणं ददश्वान् ॥६॥
 उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रुपमाणस्तन्वा समर्ये ।
 तुरं यतीषु तुरयन्तृजिप्योधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥७॥
 उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
 यदा सहस्रमभिपीमयोधीर्दुर्वतुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥८॥

४ जो संग्राममें एकत्रोभूत पदार्थोंको निरुद्ध करते हुए अत्यन्त-भोगवासनासे समस्त दिशाओंमें गमन करते और वेगसे विचरण करते हैं, जिनकी शक्ति आविर्भूत रहती है, वे ज्ञातव्य कर्मोंको जानते हुए स्तुतिकारी यजमानोंके शत्रुओंको तिरस्कृत करते हैं ।

५ मनुष्य जैसे घखापहारक तस्करको देखकर चीत्कार करता है, वैसे ही संग्राममें शत्रुगण दक्षिणा देवको देखकर चीत्कार करते हैं । पश्चिमगण जिस प्रकार नीचेकी ओर आनेवाले ध्रुवात् श्येन पक्षीको देख कर पलायन करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य अन्न और पशु-यूथके उद्देशसे गमन करनेवाले दक्षिणा देवको देखकर चीत्कार करते हैं ।

६ वे असुर-सेनाओंमें जानेकी अभिलाषा करके रथपङ्क्तियोंसे युक्त होकर गमन करते हैं । वे अलङ्कृत हैं । वे मनुष्योंके हितकर अश्वकी तरह शोभायमान हैं । वे मुखस्थित लौह-दण्ड या लगामफा दंशन करते और अपने पदाघातसे उद्भूत धूलिका लेहन करते हैं ।

७ इस प्रकारका वह अश्व सहजशील, अन्नवान् स्व-शरीर द्वारा समरमें कार्य साधन करता है । वह ऋजुगामी और वेगगामी है । शत्रु-सेनाओंके मध्यमें वह वेगसे गमन करता है । वह धूलिको उत्क्षिप्त करके भ्रूदेशके ऊपर चिक्षिप्त करता है ।

८ युद्धाभिलाषी लोग दीप्तिमान् शब्दकारी वज्रकी तरह हिंसाकारी दक्षिणा देवसे भीत होते हैं । जब वे चारा तरफ हजारोंके ऊपर प्रहार करते हैं, तब वे उत्तेजित होकर भीम और दुर्वार हो जाते हैं ।

उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
 उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत् सहस्रैः ॥६॥
 आदधिक्राः शवसा पञ्चकृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषा पस्ततान ।
 सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि ॥१०॥



३६ सूक्तं

दधिक्रा देवता । वामदेव ऋषिः । त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

आशुं दधिक्रान्तमु नुष्ट्वाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम ।
 उच्छन्तीर्मासुषसः सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥१॥
 महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्रावणः पुरुवारस्य वृष्णः ।
 यं पूरुभ्यो दीदिवांसन्नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥२॥

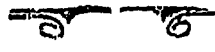
६ मनुष्योंकी अभिलाषाके पूरक एवम् वेगवान् दधिक्रा देवके अभिभवकारक वेगकी स्तुति मनुष्यगण करते और कहते हैं कि, शत्रुगण पराभूत होंगे । दधिक्रा देव सहस्र सेनाके साथ गमन करते हैं ।

१० सूर्य जिस प्रकारसे तेज द्वारा जल दान करते हैं, उसी तरहसे दधिक्रादेव, बल द्वारा, पञ्चकृष्टि (देव, मनुष्य, असुर, राक्षस और पितृगण अथवा चारो वर्ण और निषाद) को विस्तृत करते हैं । शत-सहस्रदाता, वेगवान् [दधिक्रा देव] हमारे स्तुतिवाक्यको मधुर फल द्वारा संयोजित करें ।

१ हम लोग शीघ्रगामी उसी दधिक्रा देवकी शीघ्र स्तुति करेंगे । छावापृथिवीके समीपसे उनके सम्मुख घास विक्षेप करेंगे । तमोनिवारिणी उषा देवी हमारी रक्षा करें एवम् समस्त दुरितोंसे हमें पार कर ।

२ हम यज्ञके सम्राटक हैं । हम बहुतों द्वारा वरणीय, महान् और अभीष्टवर्षी दधिक्रादेवकी स्तुति करेंगे । हे मित्रावरुण, तुम दोनों दीप्तिमान् अग्निकी तरह स्थित, त्राणकर्ता दधिक्रा देवको, मनुष्योंके उपकारके लिये, धारण करते हो ।

यो अश्वस्य दधिक्रावणो अकारीत् समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।
 अनागसन्तमदितिः कृणोतु समित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥३॥
 दधिक्रावण इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
 स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥४॥
 इन्द्रमिवेदुभये वि हवयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
 दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥५॥
 दधिक्रावणो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
 सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूंषि तारिषत् ॥६॥



४० स्तुति

.दधिका देवता । वाग्देव ऋषि । त्रिपुत्र और जगती छन्द ।

दधिक्रावण इदुनु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।
 अपामग्ने रुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥१॥

३ जो यजमान उपाके प्रकाशित होनेपर अर्थात् प्रभात होनेपर और अग्निके समिद्ध होनेपर अश्वरूप दधिक्राकी स्तुति करते हैं, मित्र, वरुण और अदितिके साथ दधिक्रादेव उस यजमानको निष्पाप करें ।

४ हम अन्नसाधक, बलसाधक, महान् और स्तोताओंके कल्याणकारक दधिक्राके नामकी स्तुति करते हैं । कल्याणके लिये हम वरुण, मित्र, अग्नि और वज्रबाहु इन्द्रका आह्वान करते हैं ।

५ जो युद्धके लिये उद्योग करते हैं और जो यज्ञ आरम्भ करते हैं, वे दोनों ही इन्द्रकी तरह दधिक्राका आज्ञान करते हैं । हे मित्रावरुण, तुम मनुष्योंके प्रेरक अश्वरूप दधिक्राको हमारे लिये धारण करो ।

६ हम जयशील, व्यापक और वेगवान् दधिक्रा देवकी स्तुति करते हैं । वे हमारी चक्षु आदि इन्द्रियोंको सुगन्ध-विशिष्ट करें । वे हमारी आयुको वर्द्धित करें ।

१ हम बारम्बार दधिक्रा देवकी स्तुति करेंगे । सम्पूर्ण उपा हमें कर्ममें प्रेरित करें । हम जल, अग्नि, उपा, सूर्य, बृहस्पति और अङ्गिरो-गोत्रोत्पन्न जिष्णुकी स्तुति करेंगे ।

सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्थादिष उपसस्तुरण्यसत् ।
 सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रा वेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥२॥
 उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।
 श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसम्परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥३॥
 उत स्य वाजो क्षिपणिन्तुरण्यति ग्रीवायां वद्धो अपिकक्ष आसनि ।
 कृतुं दधिक्रा अनुसन्तवीत्वत्पथामङ्कां स्यन्वापनीफणत् ॥४॥
 हंसः शुचिषद्रसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
 नृषद्वरसदृतसद्योमसदब्ज गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥५॥



२ गमनशील, भरणकुशल, गौओंके प्रेरक और परिवारकोंके साथ निवास करनेवाले दधिक्रा देव अभिलषणीय उषाकालमें अन्नकी इच्छा करें। शीघ्रगामी, सत्यगमनशील, वेगवान् और उत्प्लवन द्वारा गमनशील दधिक्रा देव अन्न, बल और स्वर्ग उत्पादन करें।

३ पक्षिगण जिस तरहसे पक्षियोंकी गतिका अनुसरण करते हैं, उसी तरहसे सब वेगवान् लोग त्वरायुक्त और आकाङ्क्षावान् दधिक्रा देवकी गतिका अनुसरण करते हैं। श्येन पक्षीकी तरह द्रुतगामी और त्राणकारा दधिक्राके उरुप्रदेशके चारो तरफ एकत्र होकर अन्नके लिये सब गमन करते हैं।

४ वह अश्व-रूप देव कण्ठप्रदेशमें, कक्षप्रदेशमें, मुखप्रदेशमें बद्ध होते हैं एवम् बद्ध होकर पैदल शीघ्र गमन करते हैं। दधिक्रा देव अधिक बलवान् होकर यज्ञाभिमुख कुटिल मार्गोंका अनुसरण करके सर्वत्र गमन करते हैं।

५ हंस [आदित्य] दीप्त आकाशमें अवस्थित रहते हैं। वसु [वायु] अन्तरिक्षमें अवस्थिति करते हैं। होता [वेदिकाग्नि] वेदीस्थलपर गार्हपत्यादि रूपसे अवस्थिति करते हैं एवम् अतिथिवत् पूज्य होकर गृहमें [पाकादिसाधन रूपसे] अवस्थिति करते हैं। ऋत [सत्य, ब्रह्म, यज्ञ] मनुष्योंके मध्यमें अवस्थान करते हैं, वरणीय स्थानमें अवस्थान करते हैं, यज्ञस्थलमें अवस्थान करते हैं एवम् अन्तरिक्ष-स्थलमें अवस्थान करते हैं। वे जलमें उत्पन्न हुए हैं, रश्मियोंमें उत्पन्न हुए हैं, सत्यमें उत्पन्न हुए हैं और पर्वतोंमें उत्पन्न हुए हैं।

४१ सूक्त

इन्द्र और वरुण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्मां अमृतो न होता ।
 यो वां हृदि कृतुमां अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रा वरुणा नमस्वान् ॥१॥
 इन्द्रा ह यो वरणो चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान् ।
 स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रू नवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥२॥
 इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेन्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
 यदी सखाया सख्याय स्तोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥३॥
 इन्द्रा युवं वरुणा दिद्यु मस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्ठं वज्रम् ।
 यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ॥४॥
 इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
 सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥५॥

१ हे इन्द्र, हे वरुण, अमर होता अग्निकी तरह कौन हविर्युक्त स्तोम [स्तोत्र] तुम दोनोंका अनुग्रह लाभ करेगा ? हे इन्द्र, हे वरुण, वह स्तोम [प्रशंसा] हम लोगोंके द्वारा अभिहित होकर एवम् प्रक्षोषित और हविर्युक्त होकर तुम दोनोंके हृदयङ्गम हो ।

२ हे प्रसिद्ध इन्द्र और वरुणदेव, जो मनुष्य हविलक्षण अन्नवान् होकर सख्याके लिये तुम दोनोंसे श्रद्धा करता है, वह मनुष्य पाप नाश करता है, संग्राममें शत्रुका विनाश करता है और महती रक्षा द्वारा प्रख्यात होता है ।

३ हे प्रसिद्ध इन्द्र और वरुण, तुम दोनों देव हम स्तोत्र करनेवाले मनुष्योंके लिये रमणीय धन देनेवाले होओ । यदि तुम दोनों परस्पर [यजमानके] सखा हो और सख्य-कर्मके लिये अभिषुत सोम द्वारा अन्नवान् और हृष्ट हो, तो धन देने वाले होओ ।

४ हे उग्र इन्द्र और वरुण, तुम दोनों इस शत्रुके ऊपर दीप्त और अतिशय तेजोविशिष्ट वज्र प्रक्षेप करो । जो शत्रु हम लोगोंके द्वारा दुर्दमनीय, अत्यन्त अदाता और हिंसक है, उस शत्रुके विरुद्ध तुम दोनों अभिभवकर बलका प्रयोग करो ।

५ हे इन्द्र और वरुण, वृषभ जिस तरहसे धेनुको प्रीत करता है, उसी तरहसे तुम दोनों स्तुतियोंके प्रीणयिता होओ । तृष्णादिका भक्षण करके सहस्रधारा महती गौ जिस तरहसे दुग्ध दोहन करती है, उसी तरहसे स्तुतिरूपा धेनु हम लोगोंकी अभिलाषाका दोहन करे ।

तोके हिते तनय उर्वरासु सूरौ दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
 इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥६॥
 युवामिद्वध्यवसे पूर्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
 वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शम्भू ॥७॥
 ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुयुवयूः सुदानू ।
 श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥८॥
 इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
 उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रधीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥९॥
 अश्वस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टेर्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
 ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिरस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥१०॥

६ हे इन्द्र और वरुण, तुम दोनों रात्रिमें रक्षायुक्त होकर शत्रुओंकी हिंसा करनेके किये लिये अवस्थान करो, जिससे हम लोग पुत्र, पौत्र और उर्वरा भूमि लाभ कर सकें एवम् चिर कालपर्यन्त सूर्यको देख सकें अर्थात् चिरजीवी हों तथा सन्तानोत्पादन शक्ति प्राप्त कर सकें ।

७ हे इन्द्र और वरुण, हम लोग धेनु-लाभकी अभिलाषासे तुम लोगोंके निकट प्राचीन रक्षाकी प्रार्थना करते हैं । तुम दोनों क्षमताशाली, बन्धुस्वरूप, शूर एवम् अतिशय पूज्य हो । हम लोग तुम दोनोंके निकट सुखदायक पिताकी तरह सख्य और स्नेहकी प्रार्थना करते हैं ।

८ हे शोभन फलके देनेवाले द्रव्य, योद्धा जिस तरहसे संग्रामकी कामना करता है, उसी तरहसे हम लोगोंकी रत्नाभिलाषिणी स्तुतियाँ तुम दोनोंकी कामना करती हुई रक्षा-लाभके लिये तुम दोनोंके निकट गमन करती हैं । दध्यादि द्वारा शोधन करनेके लिये जैसे गौएँ सोमके निकट रहती हैं, वैसे ही हमारी आन्तरिक स्तुतियाँ इन्द्र और वरुणके निकट गमन करती हैं ।

९ धन-लाभके लिये जैसे सेवक धनियोंके निकट गमन करते हैं, उसी तरह हमारी स्तुतियाँ सम्पत्त-लाभकी इच्छासे इन्द्र और वरुणके निकट गमन करें । मिथुक्त स्त्रियोंकी तरह अन्नकी भिक्षा माँगते हुए इन्द्रके निकट गमन करें ।

१० हम लोग विना प्रयत्नके अश्वसमूह, रथ-समूह, पुष्टि एवम् अविचल धनके स्वामी होंगे । वे दोनों देव गमन-शील हों एवम् नूतन रक्षाके साथ हम लोगोंके अभिमुख अश्व और धन नियुक्त करें ।

आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।

यद्विद्यवः पृतनासु प्रक्रीलान्तस्य वां स्याम सनितार आजैः ॥११॥



सूक्त ४२

१-६ ऋचाओंके पुरुकुत्स-तनय राजर्षि तसदस्य देवता । अवशिष्टके-इन्द्र और वरुण देवता ।
तसदस्य ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ।

क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥१॥

अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।

क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥२॥

अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गभीरे रजसी सुमेके ।

त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्सम्मैरयं रोदसी धारयञ्च ॥३॥

११. हे महान् इन्द्र और वरुण, तुम दोनों महान्, रक्षाके साथ आगमन करो। जिस अन्नप्रापक युद्धमें शत्रुसेनाके आशुप क्रीड़ा करते हैं, उस युद्धमें हम लोग तुम दोनोंके अनुग्रहसे जयलाभ कर सकें।

१ हम क्षत्रिय-जात्युत्पन्न [अतिशय बलवान्] और सम्पूर्ण मनुष्योंके अधीश हैं। हमारा राज्य दो प्रकारका है। सम्पूर्ण देवगण जैसे हमारे हैं, वैसे ही सारी प्रजा भी हमारी ही है। हम रूपवान् और अन्तिकस्थ वरुण हैं। देवगण हमारे यज्ञकी सेवा करते हैं। हम मनुष्यके भी राजा हैं।

२ हम राजा वरुण हैं। देवगण हमारे लिये ही असुर-विघातक श्रेष्ठ बल धारण करते हैं। हम रूपवान् और अन्तिकस्थ वरुण हैं। देवगण हमारे यज्ञकी सेवा करते हैं हम मनुष्यके भी हैं।

३ हम इन्द्र और वरुण हैं। महत्ताके कारण विस्तीर्ण, दुरवगाहा, सुरूपा, द्याघापृथिवी हम ही हैं। हम विद्वान् हैं। हम सकल भूतजातको, प्रजापतिकी तरह, प्रेरित करते हैं। हम द्यवापृथिवीको धारण करते हैं।

अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।
 ऋतेन पुत्रो अदितेऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्विभूम ॥४॥
 मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते ।
 कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयमिं रेणुमभि भृत्योजाः ॥५॥
 अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।
 यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे ॥६॥
 विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र व्रवीपि वरुणाय वेधः ।
 त्वं वृत्राणि शृण्विष्ये जघन्वान् त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥७॥
 अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सत ऋषयो दौर्गहे वध्यमाने ।
 त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥८॥

४ हमने ही सिञ्चमान जलका सेचन किया है, उदक या आदित्यके स्थानभूत द्युलोकका धारण किया है अथवा आकाशमें आदित्यका धारण किया है। जलके निमित्तसे हम अदित-पुत्र ऋतावा [यज्ञवान्] हुए हैं। हमने व्याप्त आकाशको तीन प्रकारसे प्रथित किया है अर्थात् परमेश्वरने हमारे लिये ही क्षिति आदि तीन लोकोंको बनाया है।

५ सुन्दर अश्ववाले और संग्रामेच्छु नेता हमारा ही अनुगमन करते हैं। वे सब वृत् होकर युद्धके लिये संग्राममें हमारा ही आह्वान करते हैं। हम धनवान् इन्द्र होकर युद्ध करते हैं। हम अभिभव करने वाले बलसे युक्त हैं। हम संग्राममें धूलि उत्थित करते हैं।

६ हमने उन सकल कार्योंको किया है। हम अप्रतिहत-दैवबलसे युक्त हैं। कोई भी हमारा निवारण नहीं कर सकता। जब सोमरस हमें दृष्ट करता है एवम् उक्थ-समूह हमें दृष्ट करता है, तब अपार और उभय छावापृथिवी चलित हो जाती है।

७ हे वरुण, तुम्हारे कर्मको सकल भूतजात जानता है। हे स्तोता, वरुणके लिये बोलो अर्थात् वरुणकी स्तुति करो। हे इन्द्र, तुमने वैरियोंका वध किया है—यह तुम्हारी प्रसिद्धि है। हे इन्द्र, तुमने आच्छन्न नदियोंको उन्मुक्त किया है।

८ दुर्गहके पुत्र पुरुकुत्सके वन्दी होनेपर इस देश या पृथिवीके पालयिता सप्तर्षि हुए थे। उन्होंने इन्द्र और वरुणके अनुग्रहसे पुरुकुत्सको स्त्रीके लिये यज्ञ करके त्रसदस्युको लाभ किया था। त्रसदस्यु इन्द्रकी तरह शत्रु-विनाशक और अर्द्धदेव देवताओंके समीपमें वर्तमान या देवताओंके अर्द्धभूत इन्द्रकी तरह थे ॥

‡ दुर्गह राजाके पुत्र पुरुकुत्स एक बार कारागारमें रूढ़ हो गये। उनकी महिषीने राज्यमें अराजकता देखकर पुत्र-लाभके लिये स्वच्छागत सप्तर्षिकी पूजा की। उन्होंने प्रसन्न होकर इन्द्र और वरुणका विशेष रूपसे यज्ञ किया। अनन्तर राजाके त्रसदस्युको प्राप्त किया। —सायण।

पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्व्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
 अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरधदेवम् ॥६॥
 राया वयं ससर्वासो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
 तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवन्नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥१०॥



४३ सूक्त

अश्विद्वय देवता । सुहोत्रके पुत्र पुरुमीहल और अजमीहल ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

क उ श्रवत् कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते ।
 कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्टां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥१॥
 को मृलाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शम्भविष्ठः ।
 रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ॥२॥

६ हे इन्द्र और वरुण, ऋषि द्वारा प्रेरित होनेपर पुरुकुत्सकी पत्नीने तुम दोनोंको, हव्य और स्तुति द्वारा, प्रसन्न किया था । अनन्तर तुम दोनोंने उसे शत्रुनाशक अर्द्ध देव राजा त्रसदस्युको दान दिया था ।

१० हम लोग तुम दोनोंकी स्तुति करके धन द्वारा परितृप्त होंगे । देवगण हव्य द्वारा तृप्त हों और गौएँ वृणादि द्वारा परितृप्त हों । हे इन्द्र और वरुण, तुम दोनों विश्वके हन्ता हो । तुम दोनों हम लोगोंको सदा अर्हिसित धन दान करो ।

१ यज्ञार्ह देवोंके मध्यमें कौन देव इसे सुनेगे ? कौन देव इस वन्दनशील स्तोत्रका सेवन करेगे ? देवताओंके मध्य किस देवके हृदयमें हम इस प्रियतरा, सौतमाना, हव्ययुक्ता शोभन स्तुतिको सुनाव अर्थात् अश्विद्वयके अतिरिक्त स्तुतिके स्वामी कौन देव होंगे ?

२ कौन देवता हम लोगोंको सुखी करेगे ? कौन देवता हमारे यज्ञमें सबकी अपेक्षा अधिक आगमन करते हैं ? देवोंके मध्यमें कौन देवता हम लोगोंको सबकी अपेक्षा अधिक सुखी करते हैं ? इस तरह उपर्युक्त गुणोंसे विशिष्ट अश्विद्वय ही हैं । कौन रथ वेगवान् अश्वयुक्त और शीघ्रगामी हैं, जिसका सूर्यकी पुत्रीने सम्भजन किया था ?

मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यूनिन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम् ।
 दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥३॥
 का वां भूदुपमातिः कया न अश्विना गमथो हूयमाना ।
 को वां महश्चित्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्ता न ऊती ॥४॥
 उप वां रथः परि नक्षति द्यामा यत् समुद्रादभि वर्तते वाम् ।
 मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्यत्सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥५॥
 सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान् घृणा वयोरुषासः परि ग्मन् ।
 तदूयु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथ सूर्यायाः ॥६॥
 इहेय यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजैरत्ना ।
 उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७॥

~~~~~

३ रत्रिके व्यतीत होनेपर इन्द्र जिस तरहसे अपनी शक्ति प्रदर्शित करते हैं, हे गमनशील अश्विद्वय तुम दोनों भी उसी तरहसे अभिषवण-कालमें गमन करो । तुम दोनों ने द्युलोकसे आगमन किया है । तुम दोनों दिव्य और शोभन गतिसे विशिष्ट हो । तुम दोनोंके कर्मोंके मध्यमें कौन कर्म सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है ?

४ कौन स्तुति तुम दोनोंके समान हो सकती है ? किस स्तुति द्वारा आहूयमान होनेपर तुम दोनों हमारे निकट आगमन करोगे ? कौन तुम दोनोंके महान् क्रोधका सहन कर सकता है ? हे मधुर जलके सृष्टिकर्ता शत्रु-विनाशक अश्विद्वय, तुम दोनों हम लोगोंको, आश्रय-दान द्वारा, रक्षित करो ।

५ हे अश्विद्वय, तुम दोनोंका रथ, द्युलोककी चारो तरफ विस्तृत भावसे गमन करता है । वह समुद्रसे तुम दोनोंके अभिमुख गमन करता है । तुम दोनोंके लिये पके जौके साथ सोमरस संयोजित हुआ है । हे मधुर जलके सृष्टिकर्ता, शत्रु-विनाशक अश्विद्वय, अध्वर्युगण मधुर दुग्धके साथ सोमरसको मिश्रित कर रहे हैं ।

६ मेघ या उदक-रस द्वारा तुम दोनोंके अश्वोंका सेवन हुआ है । पक्षिसदृश अश्वगण दीप्ति द्वारा दीप्यमान होकर गमन करते हैं । जिस रथ द्वारा तुम दोनों सूर्याके पालयिता हुए थे, तुम दोनोंका वह शोभ्रगामी रथ प्रसिद्ध है ।

७ हे अश्विद्वय, इस यज्ञमें तुम दोनों समान मनवाले अर्थात् सदृश हो । हम स्तुति द्वारा तुम दोनोंको संयुक्त करते हैं । वह शोभन स्तुति हम लोगोंके लिये फलवती हो । हे रमणीय अन्नवाले अश्विद्वय, तुम दोनों स्तोताकी रक्षा करो । हे नासत्यद्वय, हमारी अभिलाषा तुम दोनोंके निकट जानेसे पूर्ण होती है ।

## ४४. सूक्त

अश्विद्वय देवता । पुरुमीहल और अजमहल ऋषि । त्रिष्टुप बन्द ।

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुजूयमश्विना सङ्गतिं गोः ।

यः सूर्या वहति बन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१॥

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।

युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥२॥

को वामद्या करते रातहव्य उतये वा सुतपेयाय वाकैः ।

ऋतस्य वा वनुपे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३॥

हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।

पिवाथ इन्मधुनः सोमस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥४॥

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।

मां वामन्ये नि यमन्देवयन्तः सं यद्दे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५॥

१ अश्विनीकुमारो, हम आज तुम्हारे विख्यात वेगवाले और गोसङ्गत या गोप्रद रथका आह्वान करते हैं । वह रथ सूर्याको धारण करता है । उसके निवासाधारभूत ( बैठनेकी जगहका ) फाण्ड बन्धुर हैं । वह रथ स्तुतिवाहक, प्रभूत और धनवान् है ।

२ हे आदित्य या द्यलोकके पुत्रस्थानीय अश्विनोकुमारो, तुम दोनों देवता हो । तुम दोनों कम द्वारा प्रसिद्ध शोभाका सम्मोग करते हो । तुम दोनोंके शरीरको सोमरस प्राप्त करता है । मदान् अश्व ( या स्तुतियाँ ) तुम दोनोंके रथका वहन करते हैं ।

३ कौन सोमदाता यजमान, आज, रक्षाके लिये, सोमपानके लिये यज्ञकी पूर्तिके लिये अथवा सम्मजनके लिये तुम दोनोंकी स्तुति करता है ? हे अश्विद्वय, कौन नमस्कार करनेवाला तुम दोनोंको यज्ञके प्रति आवर्तित करता है ।

४ हे नासत्यद्वय, तुम दोनों बहुविध हो । इस यज्ञमें हिरण्यय रथ द्वारा तुम दोनों आओ । मधुर सोमरसका पान करो पत्रम् परिचर्या करनेवालेको अर्थात् हमें रमणीय धन दान करो ।

५ शोभन आवर्तनवाले हिरण्यय रथ द्वारा तुम दोनों द्यलोक या पृथिवीसे हमारे अभिमुख आगमन करते हो । तुम दोनोंकी इच्छा करनेवाले दूसरे यजमान तुम दोनोंको नहीं रोक रखें; अतएव हमने पूर्वमें ही स्तुति अर्पित की है ।

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दक्षा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।  
 नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीहासो अम्मन् ॥६॥  
 इहेद्वे यद्वां समना पृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।  
 उगुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७॥



### ४५ सूक्त

अश्विद्वय देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

एषस्य भानुरुदियति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि  
 पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो विरफ्शते ॥१॥  
 उद्वां पृक्षासो मधूमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।  
 अपोणु वन्तस्तम आ परीवृतं स्वर्णा शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥२॥

६ हे दक्षद्वय, तुम लोग हम दोनों (पुरुमीहल और अजमीहल) को शीघ्र ही बहुपुत्रयुक्त प्रभूत धन दान करो । हे अश्विद्वय, पुरुमीहलके ऋत्विक्कोने तुम दोनोंको स्तोत्र द्वारा प्राप्त किया है एवम् अजमीहलके ऋत्विक्कोकी स्तुति भी उसीके साथ सङ्गत हुई है ।

७ अश्विद्वय, इस यज्ञमें तुम दोनों समान मनवाले हो अर्थात् सदृश हो । हम जिस स्तुति द्वारा तुम दोनोंको संयुक्त करते हैं, वह शोभन स्तुति हम लोगोंके लिये फलवती हो । हे रमणीय अन्नवाले अश्विद्वय, तुम दोनों स्तोताकी रक्षा करो । हे नासत्यद्वय, हमारी अभिलाषा तुम दोनोंके निकट जानेसे पूर्ण होती है ।

१ यह दीप्तिमान् आदित्य उदित होते हैं । हे अश्विद्वय, तुम दोनोंका रथ चारों तरफ गमन करता है । वह द्युतिमान् आदित्यके साथ समुच्छ्रित प्रदेशमें मिलित होता है । इस रथके ऊपरी भागमें मिथुनीभूत त्रिविध (अशन, पान, खाद) अन्न है एवम् सोमरसपूर्ण चर्ममय पात्र चतुर्थ रूपमें शोभा पाता है ।

२ उषाके आरम्भ—कालमें तुम दोनोंका त्रिविधान्नवान्, सोमरसोपेत, अश्वयुक्त रथ चारो तरफ व्याप्त अन्धकारको दूर करता हुआ और सूर्यकी तरह दीप्त तेजको विस्तारित करता हुआ उन्मुख होकर गमन करता है ।

मध्वः पिवतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं रुधुने युजाथां रथम् ।  
 आवर्तन्निं मधुना जिन्वथस्पथो वृत्तिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥३॥  
 हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्त्रिधो हिरण्यपर्णा उहुवः उषर्बुधः ।  
 उदप्रु तो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मत्तः सत्रनानि गच्छथः ॥४॥  
 स्वध्वरासो मधुमन्तो अन्नयः उस्त्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना ।  
 यन्निक्तहरस्तस्तरणित्रिचक्षणः सोमं सुषात्र मधुमन्तमद्रिभिः ॥५॥  
 आकेनिपासो अहभिर्द्विध्वतः स्वर्णां शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।  
 सूर्वाश्चदश्वान्युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥६॥  
 प्र वामवोचमश्विना धियन्धा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति ।  
 येन सद्यः पत्रि रजांसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ॥७॥



३ सोमपान करते योग्य मुख द्वारा तुम दोनों सोमरसका पान करो । सोमरसके लामके लिये प्रिय रथकी योजना करो एवम् यजमानके गृहमें आगमन करो । गमनमार्गको सोम द्वारा प्रीत करो । तुम दोनों सोमपूर्ण चर्ममय पात्र धारण करो ।

४ तुम दोनोंको शीघ्रगामी, माधुर्ययुक्त, द्रोहरहित, हिरण्यमय (रमणीय) पक्षविशिष्ट, वहन-शील, उपाकालमें जागरणकारी, जलप्रेरक, हर्षयुक्त एवम् सोमस्पर्शी अश्व हैं, जिनके द्वारा तुम लोग हमलोगोंके सत्रनोंमें आगमन करते हो, जैसे मधुमक्षिका मधुके समीप गमन करती है ।

५ जब कर्म करनेवाले अध्वर्युगण अभिमन्त्रित जलसे हस्त शोधन करते हुए, प्रस्तर-खण्ड द्वारा, मधुयुक्त सोम अभिपत्र करते हैं, तब यज्ञके साधनभूत, सोमवान् गार्हपत्यादि अग्नि पक्त्र निवासकारी अश्विद्वयकी, प्रत्यह, स्तुति करते हैं ।

६ समीपमें निपतित होनेवाली रश्मियाँ दिवस द्वारा अन्धकारको ध्वंस करती हुई सूर्यकी तरह दीप्त तेजको विस्तारित करती हैं । सूर्य अश्वयोजना करके गमन करते हैं । हे अश्विद्वय, तुम दोनों सोमरसके साथ, उनका अनुगमन करके, समस्त पथ प्रज्ञापित करो ।

७ हे अश्विनीकुमारो, यज्ञ करनेवाले हम तुम दोनोंकी स्तुति करते हैं । तुम दोनोंका सुन्दर अश्वयुक्त, नित्य तरुण जो रथ है एवम् जिस रथ द्वारा तुम दोनों क्षण मात्रमें लोक-त्रयका पस्त्रिमण करते हो, उसी रथ द्वारा तुम दोनों हव्य-युक्त, शीघ्र अतिवाही एवम् भोगप्रद यज्ञमें आगमन करो ।



## ४६ सूक्त

५ अनुवाक । प्रथम ऋचाके वायु देवता, अश्विष्यके इन्द्र और वायु देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु । त्वं हि पूर्वपा असि ॥१॥  
 शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः । वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥२॥  
 आ वाँ सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभिप्रयः । वहन्तु सोमपीतये ॥३॥  
 रथं हिरण्यन्बधुरमिन्द्रवायू स्वध्वरम् । आहिस्थायो दिविस्पृशम् ॥४॥  
 रथेन पृथुपाजसा दाश्वान्सं समुप गच्छतम् । इन्द्रवायू इहा गतम् ॥५॥  
 इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोपसा । पिवतं दाशुपो गृहे ॥६॥  
 इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम् । इह वाँ सोमपीतये ॥७॥

१ हे वायु, स्वर्ग-प्रापक यज्ञमें तुम सर्वप्रथम अभिषुत सोमरसका पान करो; क्योंकि तुम पूर्वपा हो ।

२ हे वायु, तुम नियुद्धान् हो और इन्द्र तुम्हारे सारथि हैं । तुम अपरिमित कामनाको पूर्ण करनेके लिये आगमन करो । तुम अभिषुत सोमका पान करो ।

३ हे इन्द्र और वायु, तुम दोनोंको, सहस्रसंख्यक अश्व, त्वरायुक्त होकर, सोमपानके लिये ले आवें ।

४ हे इन्द्र और वायु, तुम दोनों हिरण्यमय निवासाधार काष्ठसे युक्त, द्युलोकस्पर्शी और शोभन यज्ञशाली रथपर आरोहण करो ।

५ हे इन्द्र और वायु, तुम दोनों प्रभूत बलसम्पन्न रथ द्वारा हव्यदाता यजमानके निकट आगमन करो एवम् उसी लिये इस यज्ञमें आगमन करो ।

६ हे इन्द्र और वायु, यह सोम अभिषुत हुआ है, तुम दोनों देवोंके साथ समान प्रीतियुक्त होकर हव्यदाता यजमानकी यज्ञशालामें उसका पान करो ।

७ हे इन्द्र और वायु, इस यज्ञमें तुम दोनोंका आगमन हो । इस यज्ञमें तुम लोगोंके सोमपानके लिये अश्व विमुक्त हों

## ४७ सूक्त

इन्द्र और वायु देवता । वामदेव ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।  
 आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१॥  
 इन्द्रश्च वायवेवां सोमानां पीतिमर्हथः ।  
 युवां हि यन्तीन्द्रवो निम्नमापो न सध्यूक् ॥२॥  
 वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं श्वसस्पती ।  
 नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥३॥  
 या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।  
 अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥४॥



१ हे वायु, व्रतचर्यादिके द्वारा दीप्त ( पवित्र ) होकर हम तुलोक जानेकी अभिलाषासे तुम्हारे लिये मधुर सोमरसका प्रथम आनयन करते हैं। हे वायुदेव, तुम स्पृहणीय हो। तुम अपने नियुद्ध ( अग्र ) वाहन द्वारा सोमपानके लिये आगमन करो।

२ हे वायु, तुम और इन्द्र इस गृहीत सोमके पानयोग्य हो, तुम दोनों ही सोमको प्राप्त करते हो; क्योंकि जल जिस तरहसे गर्तकी ओर गमन करता है, उसी तरहसे सकल सोमरस तुम दोनोंके अभिसुख गमन करते हैं।

३ हे वायु, तुम इन्द्र हो। तुम दोनों बलके स्वामी हो। तुम दोनों पराक्रमशाली और नियुद्गराजसे युक्त हो। तुम दोनों एक ही रथपर आरोहण करके, हम लोगोंको आश्रय प्रदान करनेके लिये और सोमपान करनेके लिये यहाँ आओ।

४ हे नेता तथा यज्ञवाहक इन्द्र और वायु, तुम दोनोंको जो बहुतेरे लोगों द्वारा स्पृहणीय नियुद्गराज हैं, उन्हें हमें दे दो। हम तुम दोनोंको हवि देनेवाले यजमान हैं।

## ४६ सूक्त

वायु देवता । वामदेव ऋषि ।

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः ।

वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥१॥

निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।

वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥२॥

अनु कृष्णे वसुधित्ती येमाते विश्वेशसां ।

वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥३॥

वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव ।

वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥४॥

वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम् ।

उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥५॥



१ हे वायु, शत्रुओंके प्रकम्पक राजाकी तरह तुम पूर्वमें ही दूसरेके द्वारा अपीत सोमका पान करो एवम् स्तोताओंके धनका सम्पादन करो। हे वायु, तुम सोमपानके लिये आह्लादकर रथ द्वारा आगमन करो।

२ हे वायु तुम अभिशस्तिका निःशेष नियोग करते हो। तुम नियुद्धणसे युक्त हो और इन्द्र तुम्हारे सारथि हैं। हे वायु, तुम सोमपानके लिये आह्लादकर रथ द्वारा आगमन करो।

३ हे वायु, कृष्णवर्ण, वसुओंकी धात्री, विश्वरूपा धावापृथिवी तुम्हारा अनुगमन करती हैं। हे वायु, तुम सोमपानके लिये आह्लादकर रथ द्वारा आगमन करो।

४ हे वायु, मनकी तरह वेगवान्, परस्पर संयुक्त, नव-नवतिसंख्यक (९९) अश्व तुम्हारे आनयन करते हैं। हे वायु, तुम सोमपानके लिये आह्लादकर रथ द्वारा आगमन करो।

५ हे वायु, तुम शतसंख्यक पोषणीय अश्वोंको रथमें योजित करो अथवा सहस्रसंख्यक अश्वोंको रथमें योजित करो। उनसे युक्त होकर तुम्हारा रथ वेगपूर्वक आवे।

## ४६ सूक्त

इन्द्र और बृहस्पति देवता । वामदेव ऋषि गायत्री छन्द ।

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्रावृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ॥१॥  
 अयं वां परिषिच्यते सोम इन्द्रावृहस्पती । चारुर्मदाय पीतये ॥२॥  
 आ न इन्द्रावृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् । सोमपा सोमपोतये ॥३॥  
 अस्मे इन्द्रावृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् । अश्रवावन्तं सहस्रिणम् ॥४॥  
 इन्द्रावृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥५॥  
 सोममिन्द्रावृहस्पती पिचतं दाशुषो गृहे । मादयेथां तदोकसा ॥६॥

## ५० सूक्त

१-६ ऋचाओंके बृहस्पति देवता, १०-११ के इन्द्र और बृहस्पति देवता । वामदेव ऋषि ।

त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

यस्तस्तम्भ सहसा वि उमो अन्तान्वृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।  
 तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरोविप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥१॥

१ इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनोंके मुँहमें हम इस प्रिय सोमरूप हविका प्रक्षेप करते हैं । हम तुम दोनोंको उक्थ (शस्त्र) और मद्जनक सोमरस प्रदान करते हैं ।

२ हे इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनोंके मुँहमें पानके लिये और हर्षके लिये यह मनोहर सोम भली भाँतिसे दिया जाता है ।

३ हे सोमपा इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनों सोमपानके लिये हमारे यज्ञ-गृहमें आगमन करो ।

४ हे इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनों हमें शतसंख्यक गोरुक्त और सहस्रसंख्यक अश्वयुक्त धन दान करो ।

५ हे इन्द्र और बृहस्पति, सोमके अभिपुत्र होनेपर हम, स्तुति द्वारा, तुम दोनोंका सोमपानके लिये आह्वान करते हैं ।

६ हे इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनों हव्यदाता यजमानके गृहमें सोम पान करो और उसके गृहमें निवास करके हृष्ट होओ ।

१ वेद या यज्ञके पालयिता बृहस्पति देवने बलपूर्वक पृथिवीकी दसो दिशाओ को स्तम्भित किया था । वे शब्द द्वारा तीनों स्थानोंमें वर्तमान हैं । उन आह्लादक जिह्वाविशिष्ट बृहस्पति देवको पुरातन, द्युतिमान्, मेधाविद्योनि पुरोभागमें स्थापित किया है ।

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्त्रे ।  
 पृषन्तं सृष्ट्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥२॥  
 बृहस्पते या परमा परावदत आत ऋतस्पृशो निषेदुः ।  
 तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शाम् ॥३॥  
 बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।  
 सतास्य स्तुविजातो रवेण वि सत्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥४॥  
 स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन बलं स्रोज फलिंगं रवेण ।  
 बृहस्पतिरुस्त्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥५॥  
 एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।  
 बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

२ हे प्रभूत प्रज्ञावान् बृहस्पति, जिनकी गति शत्रुओंको कँपानेवाली है, जो तुम्हें दृष्ट करते हैं और जो तुम्हारी स्तुति करते हैं, उनके लिये तुम फलप्रद, वर्द्धनशील और अहिंसित होते हो एवम् तुम उनके विस्तीर्ण यज्ञकी रक्षा करते हो ।

३ हे बृहस्पति, जो अत्यन्त दूरवर्ती स्वर्गनामक उत्कृष्ट स्थान है, उस स्थानसे तुम्हारे अश्व यज्ञमें आगमन करके निषण्ण होते हैं । खात कूपके चारो तरफसे जैसे जलस्राव होता है, उसी तरहसे तुम्हारे चारो तरफ, स्तुतियोंके साथ, प्रस्तर द्वारा, अभिषुत सोम मधुर रसका सिञ्चन करता है ।

४ मन्त्राभिमानी बृहस्पतिदेव जब महान् आदित्यके निरतिशय आकाशमें प्रथम जायमान हुए थे, तब सप्त छन्दोमय मुख-विशिष्ट होकर और बहुप्रकारसे सम्भूत होकर तथा शब्दयुक्त एवम् गमनशील तेजोविशिष्ट होकर उन्होंने अन्धकारका नाश किया था ।

५ बृहस्पतिने दीप्तियुक्त और स्तुतिशाली अङ्गिरागणके साथ, शब्द द्वारा, बल नामक असुरको विनष्ट किया था । उन्होंने शब्द करके भोगप्रदात्री और हव्यप्रेरिका गौओंको बाहर किया था ।

६ हम लोग इस प्रकारसे पालक, सर्वदेवतास्वरूप और अभीष्टवर्षी बृहस्पतिकी, यज्ञ द्वारा, हव्य द्वारा और स्तुति द्वारा, परिचर्या करेंगे । हे बृहस्पति, हम लोग जिससे सुपुत्रवान्, वीर्यशाली और धनके स्वामी हो सकें ।

स इन्द्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वोर्येण ।  
 बृहस्पतिं यः सुभृतं विभर्ति वल्नूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥७॥  
 स इत् क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इला पिन्वते विश्वदानोम् ।  
 तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन् ब्रह्मा राजनि पूर्वं एति ॥८॥  
 अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या ।  
 अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥९॥  
 इन्द्रञ्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।  
 आ वां त्रिंशन्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१०॥  
 बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिभूर्त्वस्मे ।  
 अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धोर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥११॥

७ जो बृहस्पति ( पुरोहित )को सुन्दर रूपसे पोषण करता है एवम् उन्हें प्रथम हव्यग्राही कहकर उनकी स्तुति करता है और नमस्कार करता है, वह राजा अपने वीर्य द्वारा शत्रुओंके बलको अभिभूत करके अवस्थिति करता है ।

८ जिस राजाके निकट ब्रह्मा ( ब्रह्मणस्पति ) प्रथम गमन करते हैं, वह सुतृप्त होकर अपने गृहमें निवास करता है । पृथिवी उसके लिये सब कालमें फल प्रसव करती है । प्रजागण स्वयम् उसके निकट अवनत रहते हैं ।

९ जो राजा रक्षणकुशल और धनरहित ब्राह्मण या बृहस्पतिको धन दान करता है, वह अप्रतिहत रूपसे शत्रुओं और प्रजाओंका धन जीतता है एवम् महान् होता है । देवगण उसीकी रक्षा करते हैं ।

१० हे बृहस्पति, तुम और इन्द्र इस यज्ञमें हृष्ट होकर यजमानोंको धन दान करो । सर्वव्यापक सोम तुम दोनोंके शरीरमें प्रवेश करे । तुम दोनों हमलोगोंको पुत्र-पौत्रादियुक्त धन दान करो ।

११ हे बृहस्पति और इन्द्र, तुम दोनों हम लोगोंको वर्द्धित करो । हम लोगोंके प्रति तुम दोनोंका अनुग्रह एक समयमें ही प्रयुक्त हो । तुम दोनों हमलोगोंके यज्ञकी रक्षा करो, हमारी स्तुतिसे जागृति होओ और स्तोताओंके शत्रुओंके साथ युद्ध करो ।

सप्तम अध्याय समाप्त

# अष्टम अध्याय

## ५१ सूक्त

उषा देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

इदमुत्पत् पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।  
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गतुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥१॥  
अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।  
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरब्रन्च्छुचयः पावकाः ॥२॥  
उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्नाधोदेयायोषसो मघोनीः ।  
अचित्रो अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥३॥  
कुवित् स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।  
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥४॥

१ हम लोगोंके द्वारा स्तुत, सर्वप्रसिद्ध, अत्यन्त प्रभूत और कान्तिशाली तेज पूर्व दिशासे, अन्धकारके मध्यसे उत्थित होता है। आदित्य-दुहिता और दीप्तिमती उषा यजमानोंके गमन-कार्यमें सचमुच सामर्थ्ययुक्ता हों।

२ यज्ञ-खातके घूपकाष्ठकी तरह शोभमाना होकर विचित्रा उषा पूर्व दिशाको व्याप्त कर अवस्थिति करती हैं। वे बाधाजनक अन्धकारके द्वारका उद्घाटन करके एवम् दीप्त और पवित्र हो करके प्रकाशित होती हैं।

३ आज तमोनिवारिका और धनवती उषा भोज्यदाता यजमानको, सोमादि धन प्रदान करनेके लिये, उत्साहित करती हैं। अत्यन्त गाढ़ अन्धकारके मध्यमें, वनियोंकी तरह अदातृगण अप्रबुद्धभावसे, निद्रित हों।

४ हे द्योतमान उषाओ, जिस रथ द्वारा तुम लोगोंने सप्तछन्दोयुक्त मुखवाले नवग्व और दशग्व अङ्गिराओंको धनशाली रूपसे प्रदीप्त किया था, हे धनवती उषाओ, तुम लोगोंका वही पुरातन अथवा नूतन रथ आज इस यज्ञ-गृहमें बहु बार आगमन करे।

यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरङ्घ्रैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।  
 प्रबोधयन्तीरुपसः ससन्तं द्विपाञ्चतुष्पाञ्चरथाय जीवम् ॥५॥  
 क्व स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।  
 शुभं यच्छुभा उपसञ्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥६॥  
 ता घा ता भद्रा उपसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।  
 यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥७॥  
 ता आ चरन्ति समना पुरस्तात् समानतः समना पप्रथानाः ।  
 ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उपसो जरन्ते ॥८॥  
 ता इन्वेव समना समानीरमीतवर्णा उपसञ्चरन्ति ।  
 गूहन्तीरभ्रमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ॥९॥

५ हे द्युतिमती उपाधो, तुम लोग निद्रित द्विपदों और चतुष्पदोंको अर्थात् मनुष्यों और गौधों आदिको अपने-अपने गमन आदि कार्योंमें प्रबोधित करके, यज्ञमें गमनकारी अश्वोंके द्वारा, भुवनोंका ध्वज माश्रमें परिभ्रमण करो ।

६ जिन उपाधे लिये ऋभुओंने चमस आदिका निर्माण किया था, वह पुरातन उपा कहाँ हैं ? क्षीम, नित्य नूतन, समान रूपविशिष्ट उपाएँ जय दीप्ति प्रकाश करती हैं, तब वे विज्ञात नहीं होता है अर्थात् वे सय दिनोंमें एक-एक-सदृश—रहती हैं; इसलिये यह पुरातन और यह नूतन उपा हैं, इस तरहसे वे पहचानी नहीं जा सकती हैं ।

७ यज्ञकारिण जिन उपाधोंका उक्थों द्वारा स्तुति करके एवम् स्तोत्रों और शस्त्रों द्वारा उच्चारण करके शीघ्र घन लाभ करते हैं, वे ही कल्याणकारिणी उपाएँ पुरातन कालसे ही अग्निगमन करके घन दान करें । वे यज्ञके लिये उत्पन्न हुई हैं और सत्य फल प्रदान करती हैं ।

८ एक-एक-विशिष्ट और समान विख्यात उपाएँ पूर्व दिशामें, एक मात्र अन्तरिक्ष देशसे, सर्वत्र विचरण करती हैं । द्युतिमती उपाएँ यज्ञगृहको प्रबोधित करके जलसृष्टिकारिणी रश्मियोंकी तरह स्तुत होती हैं ।

९ उपाएँ समान, एक-एक-विशिष्ट, अपरिमित वर्णयुक्त, क्षीम, शुद्ध और कान्तिपूर्ण शरीर द्वारा दीप्तियुक्त हैं । वे अत्यन्त महान् अन्धकारका गोपन करके विचरण करती हैं ।



रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।  
 स्योनादावः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१०॥  
 तद्रो दिवो दुहितरो विभातीरुप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः ।  
 वयं स्याम यशसो जनेषु तद्वधौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥११॥



### ५२ सूक्त

उषा देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

प्रतिष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता ॥१॥  
 अश्वेव चित्रारुषी माता गवा मृतावरी । सखाभूदश्विनोरुषाः ॥२॥  
 उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिपे ॥३॥  
 थावयद्दृष्टेऽसन्वा चिकित्वित् सूनृतावरि । प्रतिस्तोमैरभूत्समहि ॥४॥

१० हे द्योतमान आदित्यकी दुहिताओ, तुम हम लोगोंको पुत्र-पौत्रादिसे युक्त धन दान करो । हे देवियो हम लोग सुख लाभके लिये तुम लोगोंको प्रतिबोधित करते हैं, जिससे हम लोग पुत्र-पौत्रादिसे युक्त धनके पति हो सकें ।

११ हे द्योतमान आदित्यकी दुहिताओ, हम लोग यज्ञके प्रज्ञापक हैं । तुम्हारे निकट हम लोग प्रार्थना करते हैं, जिससे लोगोंके मध्यमें हम लोग क्रीति और अन्नके स्वामी हो सकें । छुलोक और द्युतिमती पृथिवी वह यश-धारण कर ।

१ वह आदित्य-दुहिता उषा दृष्ट होती है । वह स्तुत है और प्राणियोंकी नेत्री है एवम् सुन्दर फलोंकी उत्पादयित्री है । वह भगिनीस्वरूपा रात्रिके पयवसानकालमें अन्धकारका विनाश करती है ।

२ अश्वकी तरह मनोहरा, दीप्तिमती, रश्मियोंकी माता और यज्ञवती उषा अश्विद्वयके साथ स्तूयमाना हो अर्थात् अश्विद्वयसे बन्धुत्व करे ।

३ तुम अश्विद्वयकी बन्धु और रश्मियोंकी माता हो । हे उषा, तुम धनकी ईश्वरी हो ।

४ हे सुनृता ( सत्यवचन ) उषा, तुम शत्रुओंको पृथक् कर दो, तुम संज्ञा दान करो । हम स्तुतियों द्वारा तुम्हें प्रबोधित करते हैं ।

प्रति भद्रा अदक्षत गवां सर्गां न रश्मयः । ओषा अप्रा उरु ज्रयः ॥५॥  
 आप्रुपी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः । उपो अनु स्वधामव ॥६॥  
 आ यां तनोपि रश्मभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम् । उषः शुक्लेण शोचिषा ॥७॥



### ५३ सूक्त

सविता देवता । वामदेव ऋषि । जगती और सावित्री छन्द ।

तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महद्भृष्टणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।  
 छर्दियेन दाशुपे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान्देवो अक्तुभिः ॥१॥  
 दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कविः ।  
 विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्यम् ॥१॥

५ स्तुतियोग्य रश्मियाँ दृष्ट होतो हैं । उपाने जगत्को चर्पाको धाराको तरह महान् तेजसे परिपूर्ण किया है ।

६ हे क्रान्तिमती उपा, तुम जगत्को तेज द्वारा परिपूर्ण करो, तेज द्वारा अन्धकारको दूर करो उसके अनन्तर नियमानुसारसे हविलक्षण अन्नकी रक्षा करो ।

७ हे उपा, तुम हीम तेजोयुक्त होकरके रश्मि द्वारा द्युलोकको एवम् विस्तीर्ण और प्रिय अन्तरिक्षको व्याप्त करो ।

१ हम लोग असुर ( बलवान् ) और बुद्धिमान् प्रेरक सविता देवके उस वरणीय एवम् पूज्य धनकी प्रार्थना करते हैं, जिसे वे यजमान हव्यदाताको स्वेच्छापूर्वक देते हैं । महान् सविता हम लोगोंको यह धन सय दिनोंमें दं ।

२ द्युलोक एवम् समस्त लोकके धारक, प्रजाओंको प्रकाश-वृष्टि आदिके द्वारा पालन-करनेवाले, कवि सविता, देव हिरण्मय कवच पारिधान करते हैं । विचक्षण सविता प्रख्यात होकर भी जगत्को तेज द्वारा परिपूर्ण करते हैं और स्तुतियोग्य प्रभूत, सुख उत्पादन करते हैं ।

आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा इलोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ।  
 प्र बाहू अस्त्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥२॥  
 अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकशाद्ब्रतानि देवः सविताभि रक्षते ।  
 प्रास्त्राग्बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अज्मस्य राजति ॥३॥  
 त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना ।  
 तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रिभिर्ब्रतैरभि नो रक्षति त्मना ॥४॥  
 बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभस्य यो वशी ।  
 स नो देवः सविता शर्म यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः ॥५॥  
 आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु दायं दधालु नः सविता सुप्रजामिपम् ।  
 स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ॥६॥



३ सविता देव तेज द्वारा द्युलोक और पृथिवीलोकको परिपूर्ण करते हैं एवम् अपने कार्यकी प्रशंसा करते हैं। वे प्रतिदिन जगत्को अपने-अपने कार्यमें स्थापन करते हैं और प्रेरण करते हैं। वे सृजनकार्यके लिये बाहुको प्रसारित करते हैं।

४ सविता देव अर्हिसित होकर भुवनोंको प्रदीप्त करते हैं और व्रतोंकी रक्षा करते हैं। वे भुवनस्य प्रजाओंके लिये बाहु प्रसारण करते हैं। धृतव्रत सविता देव महान् जगत्के ईश्वर हैं।

५ सविता देव महिमा द्वारा परिभव करते हुए अन्तरिक्षत्रय (वायु, विद्यत् और वरुण नामक लोकत्रय अन्तरिक्षके भेद हैं)को व्याप्त करते हैं। वे लोकत्रयको व्याप्त करते हैं। वे दोसिमान् अग्नि, वायु और आदित्यको व्याप्त करते हैं। वे तीन द्युलोक (इन्द्र, प्रजापति, और सत्य नामक लोकत्रय)को व्याप्त करते हैं। वे तीन पृथिवीको व्याप्त करते हैं। वे तीन व्रतों (श्रोघ्न, वर्षा और हिम) द्वारा हम लोगोंका अनुग्रहपूर्वक पालन करें।

६ जिन्हें प्रभूत धन हैं, जो कर्मोंका प्रसव करते हैं, जो सबके लिये गन्तव्य हैं एवम् जो स्थावर और जङ्गम दोनोंको वशमें रखते हैं, वह सविता देव, हम लोगोंके पापक्षयके लिये, हम लोगोंको लोकत्रयस्थित सुख दान करें।

७ सविता देव ऋतुओंके साथ आगमन करें। हम लोगोंके गृहको वर्द्धित करें। हम लोगोंको पुत्र-पौत्रादि युक्त अन्न दान करें। वे दिन और रात्रि दोनोंमें हम लोगोंके प्रति प्रीत हों। वे हम लोगोंको अपत्ययुक्त धन दान करें।

## ५४ सूक्त

सविता देवता । वाग्देव ऋषि । सावित्री और त्रिष्टुप् छन्द ।

अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह उपवाच्यो नृभिः ।  
 वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥१॥  
 देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् ।  
 आदिहामानं सवितव्यूर्णुपेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥२॥  
 अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनेर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता ।  
 देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥३॥  
 न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।  
 यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वंगुरिर्वर्षान्दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥४॥  
 इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः ।  
 यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ॥५॥

१ सविता देव प्रादुर्भूत हुए हैं । हम शीघ्र ही उनकी वन्दना करेंगे । वे इस समय और तृतीय सघनमें हांताओं द्वारा स्तुत हों । जो मानवोंको रत्न दान करते हैं, वह सविता देव हम लोगोंको इस यज्ञमें श्रेष्ठ धन दान करे ।

२ तुम पहले यज्ञाहं देवोंके लिये अमरत्वके साधनभूत सोमके उत्कृष्टतम भागको उत्पन्न करो । हे सविता, उसके अनन्तर तुम हव्यदाताको प्रकाशित करो एवम् पिता, पुत्र और पौत्रादि क्रमसे मनुष्योंको जीवन दान करो ।

३ हे सविता देव, अदानतायथा अथवा दुर्बल वा बलशाली लोगोंके प्रमादवश अथवा ऐश्वर्यके गर्वसे या परिजनके गर्वसे तुम्हारे प्रति अथवा देव या मनुष्योंके प्रति हमने जो अपराध किया है, इस यज्ञमें तुम हमें उससे निष्पाप करो ।

४ सविता देवका यह कर्म हिसायोग्य नहीं है; क्योंकि वे विश्व भुवन धारण करते हैं । वे सुन्दर अद्भुत लिविशिष्ट होकर पृथ्वीका विस्तीर्ण होनेके लिये प्रेरित करते हैं एवम् दुलोकको भी विस्तीर्ण होनेके लिये प्रेरित करते हैं । सविता देवका यह कर्म सचमुच अवध्य है ।

५ हे सविता, परमेश्वर्यवान् इन्द्र हम लोगोंके मध्यमें पूजनीय हैं । तुम हम लोगोंको महान् पर्यतोंकी अपेक्षा भी उन्नत करो । इन सम्पूर्ण यजमानोंको गृहविशिष्ट निवास (ग्राम, नगर आदि) प्रदान करो । वे सब गमनफालमें जिससे तुम्हारे द्वारा नियत हों और तुम्हारी आज्ञाके अनुसार अवस्थिति करें ।

ये ते त्रिरहन् सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति ।  
इन्द्रो धावापृथिवी सिन्धुरङ्गिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥६॥

### ५५ सूक्त

विश्वदेवगाण देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द ।

को वस्त्राता वसवः को वरुता धावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।  
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात् को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥१॥  
प्र ये धामानि पूर्व्याण्यर्चान्वि यदुच्छान्वियोतारो अमूराः ।  
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुचन्त दस्माः ॥२॥  
प्र पस्या मदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीडे सख्याय देवीम् ।  
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानका करतामदब्धे ॥३॥

६ हे सविता, जो यजमान तुम्हारे उद्देशसे प्रतिदिन तीन बार करके, सौभाग्यजनक सोमका अभिषेक करता है, इन्द्र, धावापृथिवी, जलविशिष्ट सिन्धु, देवता और आदित्योंके साथ अदिति, उस यजमानको और हमें सुख दान करें ।

१ हे वसुओ, तुम लोगोंके मध्यमें कौन त्राणकर्ता है ? कौन दुःखोंका निवारक है ? हे अखण्डनीया धावापृथिवी हम लोगोंकी रक्षा करो । हे वरुण, हे मित्र, तुम दोनों अभिभवकर मनुष्योंसे हम लोगोंकी रक्षा करो । हे देवो, यज्ञमें, तुम लोगोंके मध्यमें कौन देव धन दान करता है ?

२ जो देव स्तोताओंको पुरातन स्थान प्रदान करते हैं, जो दुःखोंके अभिश्रयिता हैं, जो अमूढ हैं और जो अन्धकारका विनाश करते हैं, वही देव विधाता ( सम्पूर्ण फलके कर्ता ) हैं और नित्य अभीष्ट फल प्रदान करते हैं । वे सत्यकर्मविशिष्ट और दर्शनीय होकर शोभा पाते हैं ।

३ सबके द्वारा गन्तव्य देवमाता अदिति, सिन्धु और स्वस्ति ( सुखसे निवास करनेवाली ) देवीकी हम, मन्त्र द्वारा, सखिताके लिये स्तुति करते हैं, जिससे धावापृथिवी हम लोगोंको विशेष रूपसे पालन करें, उसके लिये स्तुति करते हैं । उषा और अहोरात्राभिमानी देव हम लोगोंके अभिमतका सम्पादन करें ।

व्ययमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गालुमग्निः ।  
 इन्द्राविष्णू नृवदुषुस्तवाना शर्म नो यन्तममवद्वरुथम् ॥४॥  
 आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरत्रि भगस्य ।  
 पात् पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥५॥  
 नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः ।  
 समुद्रं न सञ्चरणे सनिष्यवो घर्मास्वरसो नद्यो अपव्रन् ॥६॥  
 देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।  
 नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः ॥७॥  
 अग्निरीशो वसव्यस्याग्निर्महः सौभगस्य । तान्यस्मभ्यं रासते ॥८॥  
 उपो मघोन्या वह सूनृते वाय्या पुरु । अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥९॥

४ अयमा और वरुणदेवने यज्ञमार्ग स्थापित कर दिया है। हविलक्षण अन्नके पति अग्निने सुखकर मार्ग दिया दिया है। इन्द्र और विष्णु सुन्दर रूपसे स्तुत होकर हम लोगोंको पुत्र-पौत्रादियुक्त और बल-युक्त रमणीय सुख दान करें।

५ इन्द्रके सखा पर्वत, मरुद्गण तथा भगदेवसे हम रक्षाकी याचना करते हैं। स्वामी वरुणदेव जन-सम्यन्धियोंके पापसे हमारी रक्षा करें और मित्रदेव मित्रभावसे हम लोगोंकी रक्षा करें।

६ हे शावापृथिवीरूप देवीद्वय, जैसे धनाभिलाषी व्यक्ति समुद्रके मध्यमें जानेके लिये समुद्रकी स्तुति करता है, उसी तरह हम भी अभिलषित फायलाभके लिये अहिबुध्न्य नामक देवताके साथ तुम दोनोंको स्तुति करते हैं। वे देवगण दीप्त ध्वनियुक्त नदियोंको अपावृत करें।

७ देवमाता अदिति देवी अन्य देवोंके साथ हम लोगोंका पालन करें। त्राता इन्द्र अप्रमत्त होकर हम लोगोंका पालन करे। मित्र, वरुण और अग्निके सोमादिरूप समुच्छित अन्नको हम लोग हिंसा नहीं कर सकते हैं, किन्तु अनुष्ठानोंके द्वारा संवर्द्धित कर सकते हैं।

८ अग्नि धनके ईश्वर हैं और महान् सौभाग्यके ईश्वर हैं; अतएव वे हम लोगोंको धन और सौभाग्य प्रदान करें।

९ हे धनवती, हे प्रिय सत्यरूप धनकी अभिमानिनी और हे अन्नवती उपा, हम लोगोंको तुम बहुत रमणीय धन दान करो।

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा । इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥१०॥

### ५६ सूक्त

द्यावापृथिवी देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द ।

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरकैः ।

यत् सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन्नुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरैवैः ॥१॥

देवी देवेभिर्यजते यजत्रैरमिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।

ऋतावरी अद्रुहो देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरकैः ॥२॥

स इत् स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।

उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥३॥

नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः ।

उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥४॥

१० जिस धनके साथ सविता, भग, वरुण, मित्र, अर्यमा और इन्द्र आगमन करते हैं, उस धनको वे सब हमें दें ।

१ महती और श्रेष्ठा द्यावापृथिवी इस यज्ञमें दीप्तिकर मन्त्र और सोमादिसे युक्त होकर दीप्तिविशिष्ट हों । जिस लिये कि, सेचनकारी पर्जन्य विस्तीर्ण और महती द्यावापृथिवीको स्थापित करते हुए, प्रथमान और गमनशील मस्तोंके साथ सर्वत्र शब्द करते हैं ।

२ यजनयोग्य, अहिंसक, अभीष्टवर्षी, सत्यशील, द्रोहरहित, देवोंके उत्पादक और यज्ञोंके निर्वाहक द्यावापृथिवी रूप देवाद्य यष्टव्य देवोंके साथ दीप्तिकर मन्त्रों या हचिर्लक्षण अन्नोंसे युक्त हों ।

३ जिन्होंने इस द्यावापृथिवीको उत्पन्न किया है; जिन धीमान्ने विस्तीर्ण, अविचला सुरुपा और आधारहिता द्यावापृथिवीको, सम्यग्रूपसे कुशल कर्मद्वारा परिचालित किया है, वे ही भुवनोंके मध्यमें शोभनकर्मा हैं ।

४ हे द्यावापृथिवी, तुम दोनों हम लोगोंके लिये अन्न दानकी अभिलाषिणी और परस्पर सङ्गता हो । विस्तीर्णा, व्याप्ता एवम् यागयोग्या होकर तुम दोनों हमें पत्नीयुक्त महान् गृह दो एवम् हम लोगोंकी रक्षा करो । हम लोग कर्मबल द्वारा रथ और दास लाभ करें ।

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ॥५॥  
 पुनाने त्वन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ॥६॥  
 मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् । परि यज्ञं निषेदथुः ॥७॥



### ५७ सूक्त

प्रथम तीन ऋचाओंके क्षेत्रपति देवता, चतुर्थके शुन देवता, पञ्चम और षष्ठमके शुनासीर देवता तथा  
 षष्ठ और सप्तमके सीता देवता । चामदेव ऋषि । उष्णिक्, अनुष्टुप् और तिष्टुप् छन्द ।

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।

गामञ्चं पोपयित्वा स नो मृड्वातीदृशे ॥१॥

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्च ।

मधुञ्चुतं घृतमिव सुपृतमृतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥२॥

५ हे घृतिमती आवापृथिवी, हम लोग तुम दोनोंके उद्देशसे महान् स्तोत्रका सम्पादन करेंगे ।  
 तुम दोनों विशुद्ध हो । हम लोग प्रशंसा करनेके लिये तुम्हारे निकट गमन करते हैं ।

६ हे देवियो, तुम दोनों अपनी मूर्तियों और बल द्वारा परस्पर प्रत्येकको शोधित करके  
 शोभमाना होओ एवम् सर्वदा यज्ञ वहन करो ।

७ हे महती आवापृथिवी, तुम दोनों मित्रभूत स्तोत्राके अभिमतका साधन करो एवम्  
 अन्नको विभक्त और पूर्ण करके यज्ञके चतुर्दिक् उपविष्ट होओ ।

१ हम यजमान बन्धुसदृश क्षेत्रपति देवके साथ क्षेत्र जय करेंगे । वे हम लोगोंकी गौओं  
 और अश्वोंको पुष्टि प्रदान करे । वे देव हम लोगोंको उक्त प्रकारसे दातव्य धन देकर सुखी  
 करें ।

२ हे क्षेत्रपति, धेनु जिस तरहसे दुग्ध दान करती है, उसी तरहसे तुम मधुलावी,  
 सुपवित्र, घृततुल्य और माधुर्ययुक्त प्रभूत जल दान करो । यज्ञके या उदकके स्वामी हम लोगोंको  
 सुखी करें ।



मधुमती रोषधीर्धाव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।

दोत्रस्य पतिर्माध्रुमान्नो अस्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥३॥

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।

शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्टामुदिङ्गय ॥४॥

शुनापीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।

तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥५॥

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।

यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥६॥

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां षषानु यच्छतु ।

सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥७॥

३ ब्रीहि और प्रियङ्गु आदि ओषधियाँ हम लोगोंके लिये मधुयुक्त हों। तीनों घृलोक, जलसमूह और अन्तरिक्ष हम लोगोंके लिये मधुयुक्त हों। क्षेत्रपति हम लोगोंके लिये मधुयुक्त हों। हम लोग शत्रुओं द्वारा अहिंसित होकर उनका अनुसरण करें।

४ बलीवर्दगण सुखका वहन करें। मनुष्यगण सुखपूर्वक कृषि कार्य करें। लाङ्गल सुखपूर्वक कर्षण करें। प्रग्रहसमूह सुखपूर्वक वद्ध हों। प्रतोद सुख प्रेरण करें।\*

५ हे शुन, हे सीर, तुम दोनों हमारी इस स्तुतिका सेवन करो। तुम दोनोंने घृलोकमें जिस जलको सृष्ट किया है, उसीके द्वारा इस पृथिवीको सिक्त करो।†

६ हे सौभाग्यवती सीता, तुम अभिमुखी होओ। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हम लोगोंको सुन्दर धन प्रदान करो और सुन्दर फल करो। इसीसे हम तुम्हारी वन्दना करते हैं।

७ इन्द्रदेव सीता‡धार काण्डको ग्रहण कर। पूषा उस सीताको नियमित करें। वह उदकवती धौ संवत्सरके उत्तर संवत्सरमें शस्य दोहन करें।

\* इस ऋचामें सुख शब्द "शुन" के अर्थमें आया है। इन्द्र या वायुके अन्यतम सुखकर देवताका नाम शुन है। उन्हींके अनुग्रहसे यह समस्त सुख सम्पन्न होता है। —सायण।

† शौनिकके विचारसे "शुन" घृदेवताका नाम है; अतः ये इन्द्र हुए। "सीर" वायुको कहते हैं। यास्कके विचारसे "शुन" वायु और "सीर" आदित्य हैं।—सायण।

‡ सीता लाङ्गलपद्धतिः (शुक्ल यजुर्वेद) —महीधर। हल द्वारा चिह्नित भूमिकी रेखाका नाम सीता है।

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।  
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८॥



### सूक्त ५८

अग्नि, सूर्य, जल, गो अथवा घृत देवता । वामदेव ऋषि । जगती श्रौं त्रिष्टुप् छन्द ।

समुद्राद्भूमिर्मधुमां उदारदुपांशुना सममृतत्वमानत् ।

घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥१॥

वयं नाम प्र व्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः ।

उप ब्रह्मा श्रृणवच्छस्यमानं चतुः शृङ्गोऽवमीदृगौर एतत् ॥२॥

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।

त्रिधा वद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आ विवेश ॥३॥

८ फाल (भूमिविदारक फाण्ट) सुग्न-पृथक भूमिकर्षण करे । रक्षकगण चलीवर्दोंके साथ अभि-  
गमन करें । पर्जन्य मधुर जल द्वारा पृथिवीको सिक्त करें । हे शुन, सीर ( इन्द्र- वायु या वायु-आदित्य),  
हम लोगोंको सुख प्रदान करो ।

१ समुद्र (अग्नि, अन्तरिक्ष, आदित्य अथवा गीओंके ऊधःप्रदेश)से मधुमान् उम  
उद्भूत होती है । मनुष्य फिरण द्वारा अमृतत्व प्राप्त करते हैं । घृतका जो गोपनीय नाम है,  
वह देवोंकी जिह्वा और अमृतकी नाभि है ।

२ हम यजमान घृतके नामकी स्तुति करते हैं । इस यज्ञमें नमस्कार द्वारा उसे धारण  
करते हैं । परिवृद्ध देव इस स्तवका श्रवण करें । वेदचतुष्टय रूप शृङ्गविशिष्ट गौरवर्ण देव  
इस जगत्का निर्वाह करते हैं ।

३ इस यज्ञात्मक अग्निको चार शृङ्ग हैं अर्थात् शृङ्गस्थानीय चार देव हैं । इसे सवनस्वरूप  
तीन पाद हैं । ब्रह्मोद्भूत एवम् प्रवय-स्वरूप दो मस्तक हैं । छन्दःस्वरूप सात हाथ हैं । ये अभीष्टवर्षी  
हैं । ये मन्त्र, कल्प एवम् ब्राह्मण द्वारा तीन प्रकारसे वद्ध हैं । ये अत्यन्त शब्द करते हैं । वह महान् देव  
मर्त्याँके मध्यमें प्रवेश करते हैं । \*

७ सायणने इस श्रुवाका एक आदित्यात्मक अर्थ भी किया है । आदित्य-पक्षमें विक-चतुष्टय शृङ्ग, वेदत्रय पाद,  
अहोरात्र मन्त्रक, सप्त रश्मि हाथ एवम् घोष्य, वर्षा और हेमन्त तीन बन्धन हैं ।

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।  
 इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥४॥  
 एता अषन्ति हृद्यात् समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।  
 घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥५॥  
 सम्यक् स्रवन्ति सरिते न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।  
 एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥६॥  
 सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।  
 घृतस्य धाराः अरुषो न वाजी काष्ठाः भिन्दन्नुर्मिभिः पिन्वमानः ॥७॥  
 अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।  
 घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८॥

४ प्राणियोंने गौओंके मध्यमें तीन प्रकारके दीप्त पदार्थों ( क्षीर, दधि और घृत )को छिपाकर रखा था । देवोंने उन्हें प्राप्त किया था । इन्द्रने एक क्षीरको उत्पन्न किया था । सूर्यने भी एकको उत्पन्न किया था । देवोंने कान्तिमान् अग्नि या गमनशील वायुको निकटसे अन्न द्वारा और एक पदार्थ घृतको निष्पन्न किया था ।

५ अपरिमित गतिविशिष्ट यह जल हृदयङ्गम अन्तरिक्षसे अधोदेशमें निपतित होता है । प्रति-वन्धकारी शत्रु उसे नहीं देख सकता है । उस सकल घृतधाराको हम देख सकते हैं । इसके मध्यमें अग्निको भी देख सकते हैं ।

६ घृतकी धारा प्रीतिप्रद नदीकी तरह क्षरित होती है । यह सकल जल हृदयमध्यगत चित्तके द्वारा पूत होता है । घृतकी ऊर्मि प्रवाहित होती है । जैसे व्याधाके निकटसे मृग पलायित होता है ।

७ नदीका जल जैसे निम्न देशकी तरफ शीघ्र गमन करता है, वैसे ही वायुकी तरह वेगशालिनी होकर महती घृत-धारा द्रुत वेगसे गमन करती है । यह घृत-राशि परिधि भेद करके ऊर्मि द्वारा वर्द्धित होती है, जैसे गर्भवान् अश्व गमन करता है ।

८ कल्याणी और हास्यवदना योषित जैसे एकचित्त होकर पतिके प्रति आसक्त होती है, उसी तरह घृतधारा अग्निके प्रति गमन करती है । वह सम्यग्रूपसे दीप्तिप्रद होकर सर्वत्र व्याप्त होती है । जातवेदा प्रीत होकर इस सकल धाराकी कामना करते हैं ।

कन्याइव वहतुमेतवा ऊ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।  
 यत्र सोमः सूयते यत् यज्ञो घृतस्य धारा अभितत् पवन्ते ॥६॥  
 अभ्यर्पत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।  
 इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ते ॥१०॥  
 धामन्ते विश्वं भुवनमधिश्रितमन्तः समुद्रे हृद्यं तरायुषि ।  
 अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥११॥

६ कन्या ( अनूहा यालिका ) जिस तरहसे पतिके निकट जानेके लिये वेश-विन्यास करती है, हम देखते हैं. यह सकल घृतधारा उसी तरहसे करती है। जिस स्थलमें सोम अभिषुत होता है अथवा जिस स्थलमें यज्ञ विस्तोर्ण होता है, उसीको लक्ष्य कर वह धारा गमन करती है।

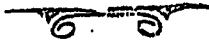
१० हे हमारे ऋत्विको, गौओंके निकट गमन करो, उनकी शोभन स्तुति करो। हम यजमानोंके लिये वह स्तुतियांय धन धारण करें। हमारे इस यज्ञको देवोंके निकट ले जायँ। घृतकी धारा मधुर-भावसे गमन करती है।

११ तुम्हारा तेज समुद्रके मध्यमें बड़वाग्नि रूपसे, अन्तरिक्षके मध्यमें सूर्यमण्डल रूपसे हृदय-मध्यमें वेद्यानर रूपसे, अन्नमें आहार रूपसे, जलसमूहमें वैद्युत्ताग्नि रूपसे और संग्राममें शौर्याग्नि रूपसे अवस्थित है। समस्त भूतजात उसके अधिश्रित है। उसमें जो घृतरूप रस स्थापित हुआ है, उस मधुर रसको हम व्याप्त करते हैं।

## चतुर्थ मण्डल समाप्त

## पञ्चम मण्डल

३ अष्टक । ५ मण्डल । ८ अध्याय । ६ अनुवाक ।



### १ सूक्त

अग्नि देवता । अतिवंशीय वृष और गविष्ठिर ऋषि । तृष्टुप् छन्द ।

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुपासम् ।  
यद्वाइव प्र वयामुज्जिह्वानाः प्र भानवः सिलते नाकमच्छ ॥१॥  
अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।  
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ॥२॥  
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।  
आदक्षिणा युज्यते वाजयन्त्यत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूमिः ॥३॥

१ धेनुकी तरह आगमनकारिणी उषाके उपस्थित होनेपर अग्नि अध्वर्युओंके काष्ठ द्वारा प्रवृद्ध होते हैं। उनका शिखासमूह महान् है एवम् शाखा-विस्तारकारो वृक्षकी तरह वह अन्तरिक्षाभिमुख प्रसृत होता है।

२ होता अग्नि देवोंके यजनके लिये प्रवृद्ध होते हैं। अग्नि प्रातःकालमें प्रसन्न मनसे ऊर्ध्वाभिमुख उत्थित होते हैं। समिद्ध अग्निका दीप्तिमान् बल दृष्ट होता है। इस तरहके महान् देव अन्धकारसे मुक्त होते हैं।

३ जब अग्नि सङ्घातमक जगत्के रज्जुरूप अन्धकारको ग्रहण करते हैं, तब वे प्रदीप्त होकरके दीप्त रश्मि द्वारा जगत्को प्रकाशित करते हैं। इसके अनन्तर वे प्रवृद्धा और अन्नामिलाषिणी घृतधाराके साथ युक्त होते हैं एवम् उन्नत होकर ऊपरी भागमें विस्तृत उस घृतधाराको जुहू द्वारा पीते हैं ।

अग्निमच्छा देवयतां मनार्येसि चक्षुषीव सूर्ये सञ्चरन्ति ।

यदीं सुवाते उपसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्वाम् ॥४॥

जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अहां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।

दमेदमे सप्त रत्ना दधानोग्निर्होता निषसादा यजीयान् ॥ ५ ॥

अग्निर्होता न्यसीदयजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उलोके ।

युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥६॥

प्रणु त्वं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीलते नमोभिः ।

आ यस्ततान रोदसी ऋतेन निरयं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥७॥

मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।

सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्थन्यान् ॥८॥

४ प्राणियोंका चक्षु जिस तरहसे मूयके अभिमुख सञ्चरण करता है, उसी तरहसे यजमानोंका मानस अग्निके अभिमुख सञ्चरण करता है। जब विरुपा द्यावापृथिवी उपाके साथ अग्निको उत्पन्न करती है, तब प्रकृत वर्ण (श्वेत) से युक्त होकर वाजी स्वरूप (वेजनवान्) अग्नि, प्रातःकालमें, उत्पन्न होते हैं।

५ उत्पादनीय अग्नि उदय कालमें प्रादुर्भूत होते हैं और दीप्तियुक्त होकर बन्धुभूत वनसमूहमें स्थापित होते हैं। इसके अनन्तर वे रमणीय सात ज्वाला (शिखा) धारण करके होता और यागयोग्य होकर प्रत्येक गृहमें उपवेशन करते हैं।

६ होता और यष्टव्य होकरके अग्नि माता पृथिवीकी गोदमें, आज्य आदिसे सुगन्ध युक्त वेदीरूप स्थानपर, उपविष्ट होते हैं। वे पुत्र, कवि, बहुस्थान-विशिष्ट यज्ञवान् और सबके धारक हैं। यजमानोंके मध्यमें समिद्ध होकरके रहते हैं।

७ जो द्यावापृथिवीको उदक द्वारा विस्तारित करते हैं, उन मेधावी, यज्ञफलसाधक और होता अग्निको स्तुति द्वारा, यजमानगण शीघ्र स्तुति करते हैं। यजमानगण अन्नवान् अग्निकी, घृत द्वारा, नित्य परिचर्या करते हैं।

८ संमार्जनीय अग्नि अपने स्थानमें पूजित होते हैं। वे दान्त (प्रशान्त) मना हैं। कविगण उनकी स्तुति करते हैं। वे हम लोगोंके लिये अतिथिकी तरह पूज्य और सुखकर हैं। उन्हें अपरिमित शिखाएँ हैं। वे अभीष्टवर्षों और प्रसिद्ध बलशाली हैं। वे अग्नि, जुम अपनेसे अतिरिक्त अन्य सब लोगोंको बल द्वारा परिभूत करते हैं।

प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यरमै चारुतमो बभूथ ।

ईलेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥६॥

तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ट बलिमग्ने अन्तित ओतदूरात् ।

आ भन्दिष्टस्य सुमतिं चिकिद्धिवृहत्ते अग्ने महिशर्म भद्रम् ॥१०॥

आद्य रथं भानुसो भनुमन्तमग्नेतिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।

विद्वान् पथीनामुर्वन्तरिक्षमेह देवान् हविरधाय वक्षि ॥११॥

अत्रोचाम क्वये मेधाय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णो ।

गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥१२॥



६ हे अग्नि, तुम यज्ञको प्राप्त कर जिसके निकट चारुतम रूपसे आविर्भूत होते हो, उसके निकटसे तुम, शीघ्र हो, दूसरोंको अतिक्रान्त करके गमन करते हो। तुम स्तुतियोग्य, दीप्तिकर पवम् विशिष्ट दीप्तिमान् हो। तुम प्राणियोंके प्रिय और मनुष्योंके अतिथि ( पूज्य ) हो ।

१० हे युवतम अग्नि, मनुष्यगण निकटसे और दूसरे तुम्हारी पूजा करते हैं। जो तुम्हारी अधिक स्तुति करता है, तुम उसीकी स्तुति ग्रहण करते हो। हे अग्नि, तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख बृहत्, महान् और स्तुतियोग्य है ।

११ हे दीप्तिमान् अग्नि, तुम आज दीप्तिमान् और समीचीन प्रान्तयुक्त रथपर देवोंके साथ आरोहण करो । तुम्हें पथ अवगत है। प्रभूत अन्तरिक्ष प्रदेश होकर तुम देवोंको हव्य भक्षणके लिये इस स्थानमें ले आते हो ।

१२ हम अत्रिवांशी लोग मेधावी, पवित्र, अभिष्टवर्षी और युवा अग्निके उद्देश्यसे वन्दनायोग्य स्तोत्रका उच्चारण करते हैं। गविष्ठिर ऋषि आकाशमें दीप्यमान, विस्तीर्ण गतिविशिष्ट, आदित्यके सदृश अग्निके उद्देशसे नमस्कारयुक्त स्तोत्रका उच्चारण करते हैं ।

## २ सूक्त

अग्नि देवता । अग्निपुत्र कुमार ऋषि यथवा जरपुत्र वृश ऋषि अथवा इस सूक्ते ये दोनों हो ऋषे हैं ।

शकरी और त्रिष्टुप छन्द ।

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा विभर्ति न ददाति पित्रो

अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ॥१॥

कमेतं त्वं युवते कुमारं पेयी विभर्षि महिषी जजान ।

पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यञ्जातं यदसूत माता ॥२॥

१ कुमारको उत्पन्न करनेवाली यौवनवती माताने मार्गमें सञ्चरण करनेवाले कुमारको, रथचक्र द्वारा निरुद्ध देखकर, गुहामध्यमें धारण किया, उसके जनकको नहीं दिया । लोग उसे हिंसित रूपमें नहीं देख सके; किन्तु अरणिस्थानमें स्थापित होनेपर उसे फिर देख सके । +

२ ( उन्पाद्यमान होनेके कारण यहाँ कुमार शब्दसे अग्निका व्यवहार है ) हे युवती, तुम पिशाची होकर किस कुमारको धारण करती हो ? पूजनीय अरणिने इसे उत्पन्न किया है । अनेक सवत्सर पर्यन्त अरणि-सम्बन्धी गर्भ वर्धित हुआ था । इसके अनन्तर माता अरणिने जिस पुत्रको उत्पन्न किया था, उसे हमने देखा था ।

+ शाट्टवायन-ब्राह्मणमें इस ऋचाके सम्बन्धमें इस तरहका इतिहास वर्णित हुआ है—इक्ष्वाकुवंशीय राजा च्यवन पुरोहित वृशके साथ एक रथपर गमन कर रहे थे । रथका सञ्चालन वृश ही करते थे । रथचक्रके सङ्घर्षसे मार्गमें खेलते हुए एक कुमारकी सृष्टि हो गयी । पुरोहित और राजामें यह विवाद होने लगा कि, कौन इस हत्याका अपराधी है; रथस्वामी राजा दोषी है या रथचालक पुरोहित । इस तरह लड़ते-भागड़ते वे दोनों वृद्ध इक्ष्वाकुओंके पास पूछने आये । उन दोनोंके पूछनेपर वृद्ध इक्ष्वाकुओंने कहा कि, रथचालक वृश ही इसके हन्ता हैं । पुरोहित वृशने वार्षासाम्नातके द्वारा उस कुमारको फिर जिला दिया; किन्तु उन्होंने इक्ष्वाकुवंशीयोंको पक्षपाती कहकर यह शाप भी दिया कि, तुम लोगोंके घरसे अग्निका तेज निर्गत हो जायगा । अग्निके विनष्ट हो जानेपर, पाकादिके अभावसे, इक्ष्वाकुवंशीयोंको जय बहुत फट्ट हानि लगा, तब वे लोग पुरोहितको प्रसन्न करके अपने पापके अपनोदनकी चेष्टा करने लगे । वृशने आकर देखा कि, वृषाहत्याका पाप ब्रसदस्यु राजाकी भार्या होकर, पिशाच वेशसे, अग्निके दरको अपहृत करके वस्त्र मध्यमें छिपाये हुआ है । ऋषिने नाना प्रकारसे प्रसन्न करके उसे फिर अग्निके मध्यमें स्थापित किया । पाकादि कार्य पूर्ववत् होने लगा । इसी तरहकी कथा ताण्ड-ब्राह्मणमें भी है ।—सायण ।



हिरण्यदन्तं शुचिवर्णामारात् क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।

ददानो अस्मा अमृतं विष्टकत् किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुकथाः ॥३॥

क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम् ।

न ता अष्टन्नजनिष्ठ हि षः पत्निकीरिद्युवतयो भवन्ति ॥४॥

के से मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।

ये ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उपनश्चिकित्वान् ॥५॥

वसां राजानं वसति जनानामरातयो निदधुर्मर्त्येषु ।

ब्रह्माण्यत्रैव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥६॥

शुनश्चिच्छेपं नि दितं सहस्राद्यूपादस्मुञ्चो अशमिष्ट हिषः ।

एवास्मदज्ञे वि मुमुग्धि पाशान् होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥७॥

३ हमने समीपवर्ती प्रदेशसे हिरण्यदन्त ( हिरण्य सद्गुण ज्वालायुक्त ), प्रदीप्त वर्ण और आयु-धस्थानीय ज्वाला निर्माण करनेवाले अग्नि को देखा था । हम ( वृश ) ने उन्हें सर्वतोव्याप्त और अविनाशी स्तोत्र प्रदान किया है । जो इन्द्र ( परमेश्वर्ययुक्त अग्नि ) को नहीं मानते हैं और जो उनकी स्तुति नहीं करते हैं, वे हमारा क्या कर लेंगे ?

४ हम ( वृश ) ने गोसमूहकी तरह क्षेत्रमें निगूढ़भावसे सञ्चरण करनेवाले एवम् अनेक प्रकारसे स्वयम् शोभमान अग्निको देखा है । पिशाचीके आक्रमण-कालवाली निर्वीर्य ज्वालाको वे ग्रहण नहीं करते हैं । अग्नि पुनर्वार प्रादुर्भूत होते हैं एवम् उनकी वृद्धा ज्वाला युवती होती है ।

५ कौन हमारे राष्ट्रको गौओंके साथ नियुक्त करता है ? उन्हें क्या रक्षक नहीं था ? जो हमारे राष्ट्रसमूहपर आक्रमण करता है, वह विनष्ट हो । अग्नि हम लोगोंकी अभिलाषाको जानते हैं, वे हम लोगोंके पशुओंके निकट गमन करते हैं ।

६ प्राणियोंके स्वामी और लोगोंके आवासभूत अग्नि को शत्रुगण मर्त्योंके मध्यमें छिपाकर रखते हैं । अत्रिगोत्रोत्पन्न वृशका स्तोत्र उन्हें मुक्त करे । निन्दक लोग निन्दनीय हों ।

७ हे अग्नि, तुमने अत्यन्त बद्ध शुनःशेष ऋषिको सहस्र यूपसे मुक्त किया था; क्या कि उन्होंने तुम्हारा स्तव किया था । हे होता और विद्वान् अग्नि, तुम इस वेदोपर उपवेशने करो । इस तरह हम लोगोंको सकल पाशसे मुक्त करो ।

हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।  
 इन्द्रो विद्वां अ नु हि त्वा चक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥८॥  
 वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निरविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।  
 प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशोते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥९॥  
 उत स्वानासो दिविपन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।  
 मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिवाधो अदेवी ॥१०॥  
 एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।  
 यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥११॥  
 तुविप्रीवो वृषभो वावृधानोशस्त्रं यः समजाति वेदः ।  
 इतीममग्निममृता अवोचन् बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते  
 मनवे शर्म यंसत् ॥१२॥



८ हे अग्नि, तुम जब क्रुद्ध होते हो, तब हमारे निकटसे अपगत होते हो । देवोंके व्रतपालक इन्द्रने हमसे यह कहा था । वे विद्वान् हैं उन्होंने तुम्हें देखा है । हे अग्नि, उनके द्वारा अनुशिष्ट होकर हम तुम्हारे निकट आगमन करते हैं ।

९ अग्नि महान् तेज द्वारा विशेप रीतिसे दीप्त होते हैं । वे अपनी महिमाके बलसे सकल पदार्थोंको प्रकट ( प्रकाशित ) करते हैं । अग्निदेव प्रबुद्ध होकरके दुःखजनक आसुरी मायाको परामृत करते हैं । राक्षसोंको विनष्ट करनेके लिये वे शृङ्ग ( ज्वाला ) को तीक्ष्ण करते हैं ।

१० अग्निकी शब्द करनेवाली ज्वाला, तीक्ष्ण आयुधकी तरह, राक्षसोंको विनष्ट करनेके लिये, धूलोकमें प्रादुर्भूत होती है । हर्षके उत्पन्न होनेपर अग्निका क्रोध या दीप्तिसमूह राक्षसोंको पीड़ा देता है । वाधा देनेवाली आसुरी सेना उन्हें वाधा नहीं दे सकती ।

११ हे बहुभाव-प्राप्त अग्नि, हम तुम्हारे स्तोता हैं । धीर और कर्मकुशल व्यक्ति जिस तरहसे रथ निर्माण करता है, उसी तरहसे हम तुम्हारे लिये इस स्तोत्रका निर्माण करते हैं । हे अग्निदेव, यदि तुम इस स्तोमको ग्रहण करो, तो हम बहु व्याप्त जय लाभ करें ।

१२ बहु ज्वाला विशिष्ट, अभीष्टवर्षी, वर्द्धमान अग्नि निष्कण्टक भावसे शत्रुओंके धनका संग्रह करते हैं । इस वातको देवोंने अग्निसे कहा था कि, वे यज्ञ करनेवाले मनुष्योंको सुख दान करें पवम् हव्य देनेवाले मनुष्यों ( यजमानों ) को भी सुख दान करें ?

## ३ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिंशतीय वसुश्रुत ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत् समिद्धः ।

ते विद्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥१॥

त्वमर्यमा भवसि यत् कनीनां नाम स्वधावन् गुह्यं विभर्षि ।

अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यदम्पती समनसा कृणोषि ॥२॥

तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्तो जानम चारु चित्रम् ।

पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नामगोनाम् ॥३॥

तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरु दधाना अमृतं सपन्त ।

होतारमग्निं मनुषो निषेदुर्दृशस्यन्त उशिजैः शंसमायोः ॥ ४ ॥

न त्वद्धोता पूर्वो अग्नौ यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।

विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान् ॥ ५ ॥

१ हे अग्नि, तुम उत्पन्न होते हो वरुण (अन्धकारके निवारक राज्यभिमानो देव) होते हो । समिद्ध होकर तुम मित्र (हितकारी) होते हो । समस्त देवगण तव तुम्हारा अनुवर्तन करते हैं । हे बलपुत्र, तुम हव्य दाता यजमानके इन्द्र हो ।

२ हे अग्नि, तुम कन्याओंके सम्बन्धमें अर्यमा (सबके नियामक) होते हो । हे हव्यवान् अग्नि, तुम गोपनीय नाम (वैश्वानर) धारण करते हो । जब तुम दम्पतीको एक मनवाले बना देते हो, तब वे तुम्हें बन्धुकी तरह, गव्य द्वारा, सिक्त करते हैं ।

३ हे अग्नि, तुम्हारे आश्रयके लिये मरुद्गण अन्तरिक्षका साजन करते हैं । हे रुद्र, तुम्हारे लिये वेद्युत लक्षण, अति विचित्र और मनोहर जो विष्णु (व्यापन शील देव) का अगम्य पद (अन्तरिक्ष) है, वह स्थापित हुआ है । उसके द्वारा तुम उदकके गुह्य नामका पालन करो ।

४ हे अग्निदेव, तुम्हारी समृद्धिके द्वारा इन्द्रादि देवगण दर्शनीय होते हैं । वे देवगण तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रीति धारण करके अमृतका स्पर्श करते हैं । ऋत्विगण फलामिलायी, यजमानके लिये हव्य वितरण करते हुए, होता अग्निकी परिचर्या करते हैं ।

५ हे अग्नि, तुमसे भिन्न कोई अन्य होता नहीं है, यज्ञकारी नहीं है और कोई पुरातन भी नहीं है । हे अन्नवान्, भविष्यत्कालमें सो तुम्हारी अपेक्षा कोई स्तुतियोग्य नहीं होगा । हे देव, तुम जिस ऋत्विक्के अतिथि होते हो, वह यज्ञ द्वारा शत्रु मनुष्योंको विनष्ट करता है ।

वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।  
 वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥ ६ ॥  
 यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात ।  
 जहीचिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥ ७ ॥  
 त्वामस्या व्युपि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।  
 संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मत्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥ ८ ॥  
 अत्र स्पृधि पितरं योधि विद्वान् पुत्रो यस्ते सहसः सूनऊहे ।  
 कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नाऽग्ने कदां ऋतचिद्यातयासे ॥ ९ ॥  
 भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे ।  
 कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृथानः ॥ १० ॥

६ हे अग्नि, हम तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर शत्रुओंको पीड़ा दान करेंगे । हम धनाभिलाषी हैं । हम लोग तुम्हें हव्य द्वारा प्रवृद्ध करते हैं । हम लोग युद्धमें जय लाभ करें और प्रतिदिन यज्ञमें बल प्राप्त करें । हे बलपुत्र, हम लोग धनके साथ पुत्र लाभ करें ।

७ जो मनुष्य हम लोगोंके प्रति अपराध या पाप करता है, उस पापकारी व्यक्तिके प्रति अग्नि पापान्तरण कर—उसे पापी बनावे । हे विद्वान् अग्नि, जो हम लोगोंको अपराध और पाप द्वारा बाधा देता है, उस पापकारीको विनष्ट करो ।

८ हे देव, पुरातन यजमान तुम्हें देवोंका दूत बना करके, उपाकालमें यज्ञ करते हैं । हे अग्नि, हव्य संग्रह होनेके अनन्तर तुम द्युतिमान् होकर भी निवासप्रद मनुष्यों द्वारा समिद्ध होकर गमन करते हो ।

९ हे बलपुत्र, तुम पिता हो । जो विद्वान् पुत्र तुम्हारे लिये हव्य वहन करता है, तुम उसे पार कर देते हो और उसे पापसे पृथक् करते हो । हे विद्वान् अग्नि, कब तुम हम लोगोंको देखोगे ? हे यज्ञके प्रेरक कब तुम हम लोगोंको सन्मार्गमें प्रेरित करोगे ?

१० हे निवासप्रद अग्नि, तुम पालक हो । यदि तुम उस हविका सेवन करते हो, तो तुम्हारे नामकी वन्दना करके, देनेके लिये, (पुत्र) प्रभूत हव्य धारण करता है । यजमानके बहुत हव्यकी अभिलाषा करनेवाले और वर्द्धमान अग्नि बलयुक्त होकर सुख दान करते हैं ।

त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यश्ने दुरिताति पर्षि ।

स्तेना अहश्रन्निपवो जनासो ज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ॥ ११ ॥

इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि ।

नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रोषते वावृधानः परादात् ॥ १२ ॥

—\*—\*—

### ४ सूक्त

अग्नि देवता । वसुश्रुत ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।

त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभिष्याम पृत्सुतोर्मर्त्यानाम् ॥ १ ॥

हव्यवाङ्ग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुहृशीको अस्मे ।

सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्रथक्सं मिमीहि श्रवांसि ॥ २ ॥

११ हे स्वामी, हे युवतम अग्नि, तुम स्तोताको अनुगृहीत करनेके लिये समस्त दुरितों (विघ्न) से पार-कर देते हो । तस्करगण दूष्टि होते हैं । अपरिज्ञात-चिह्नवाले शत्रुभूत मनुष्य हमारे द्वारा वर्जित होते हैं ।

१२ ये स्तोम तुम्हारे अभिमुख गमन करते हैं अथवा हम निवासप्रद अग्निके निकट उस याचमान अपराधका उच्चारण करते हैं । अग्नि हमारी स्तुति द्वारा वर्द्धित होकर हमें निन्दकों अथवा हिंसकोंके हाथमें नहीं सौंपें ।

१ हे धनसमूहके स्वामी अग्नि, हम तुम्हारे उद्देशसे यज्ञमें स्तुति करते हैं । हे राजा, हम अन्ना-भिलाषी हैं । तुम्हारी अनुकूलतासे हम अन्न लाभ करें और मनुष्य सेनाको अभिभूत करें ।

२ हव्यवाहक अग्नि जागरहित होकर हम लोगोंके पालक हों । हम लोगोंके निकट वे सर्वव्याप्त दीप्तिमान और दर्शनीय हों । हे अग्नि, तुम शोभन गार्हपत्ययुक्त अन्नको भली भाँतिसे प्रकाशित करो अथवा प्रदान करो । तुम हम लोगोंको प्रचुर परिमाणमें अन्न प्रदान करो ।

विशां कविं विश्वपतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।

नि होतारं विश्वविटं दधिध्वे सदेवेषु वनते वार्याणि ॥ ३ ॥

जुपस्वाग्र इलया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।

जुपस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान् हविरद्याय वक्षि ॥ ४ ॥

जुष्टो दमूना अतिथिदुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।

विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रू यतामाभरा भोजनानि ॥ ५ ॥

वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे स्वायै ।

पिपरि यत् सहसस्पुत्र देवानत्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ॥ ६ ॥

वयं ते अग्र उग्रथैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।

अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥ ७ ॥

३ हे ऋत्विक्को, तुम लोग मनुष्योंके स्वामी, मेधावी, विशुद्ध, दूसरोंको शुद्ध करनेवाले, घृतपृष्ठ, द्यौमनिष्पादक और सर्वविद् अग्निको धारण करो । अग्निदेव देवोंके मध्यमें संग्रहणीय धनको, हम लोगोंके लिये सम्भक्त करते हैं ।

४ हे अग्नि, इला ( वेदीभूमि ) के साथ समान प्रोत्तियुक्त होकर और सूर्यकी रश्मियों द्वारा यतमान होकर तुम ( स्तुतिकी ) सेवा करो । हे जातवेदा, हम लोगोंके काष्ठ ( समिध् ) की सेवा करो । हव्य भोजन करनेके लिये देवोंका आह्वान करो और हव्य चहन करो ।

५ तुम पर्याप्त, दान्तमना और गृहागत अतिथिकी तरह पूज्य होकर हम लोगोंके इस यज्ञमें आग मन करो । हैं विद्वान् अग्नि, तुम समस्त शत्रुओंको विनष्ट करो और शत्रुताचरण करनेवालोंका धन अपहरण करो ।

६ हे अग्नि, तुम अपने यजमानादिरूप पुत्रको अन्न दान करते हो और आयुध द्वारा दस्युओंको विनष्ट करते हो । हे वलपुत्र, जिस कारण तुम देवोंको तृप्त करते हो, उसी कारणसे हे नेतृश्रेष्ठ अग्नि, तुम हम लोगोंकी, संग्राममें, रक्षा करो ।

७ हे अग्नि, हम लोग शस्त्र द्वारा तुम्हारी परिचर्या करेंगे । हम लोग हव्य द्वारा तुम्हारी परिचर्या करेंगे । हे शोधक, तथा हे कल्याणकर-शीतिविशिष्ट अग्नि, तुम हम लोगोंको सबके द्वारा वरणीय धन दो । हम लोगोंको समस्त धन प्रदान करो ।

अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।  
 वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरुथेन पाहि ॥ ८ ॥  
 विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरिताति पर्धि ।  
 अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानो स्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥ ९ ॥  
 यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यमर्त्यो जोहवीमि ।  
 जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥ १० ॥  
 यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।  
 अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥ ११ ॥

### ५ सूक्त

यात्री देवता । वसुश्रुत ऋषि । गायत्री छन्द ।

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्रये जातवेदसे ॥ १ ॥

८ हे अग्नि, हम लोगोंके यज्ञकी सेवा करो । हे बलपुत्र, हे क्षिति आदि तीनों स्थानोंमें रहनेवाले अग्नि, तुम हव्यकी सेवा करो । हम लोग देवोंके मध्यमें सुकर्मकारी होंगे । तुम हम लोगोंकी, यात्रिकादि भेदसे तीन प्रकारके सर्ववरणीय सुख द्वारा अथवा त्रितलविशिष्ट गृह द्वारा, रक्षा करो ।

९ हे जातवेदा, नाविक नौका द्वारा जिस तरहसे नदी पार करता है, उसी तरहसे तुम हम लोगोंको समस्त दुःसह दुरितोंसे पार करो । हे अग्नि, अत्रिकी तरह हम लोगोंके स्तोत्रों द्वारा स्तुति होकर तुम हम लोगोंके शरीररक्षक रूपसे अवगत होओ ।

१० हे अग्नि, हम मरणशील हैं और तुम अमर हो । हम स्तुतियुक्त हृदयसे स्तव करके तुम्हारा पुनः पुनः आह्वान करते हैं । हे जातवेदा, हम लोगोंको सन्तानदान करो । हम जिससे सन्ततियोंके अविच्छेदसे अमरत्व लाभ कर सकें ।

११ हे जातवेदा अग्नि, तुम जिस सुकर्मकृत यजमानके प्रति सुखकर अनुग्रह करते हो, वह यजमान अश्वयुक्त, पुत्रयुक्त, वीर्ययुक्त और गोयुक्त होकर अक्षय धन लाभ करता है ।

१ हे ऋत्विक्को, जातवेदा, दीप्तिमान् और सुसमिद्ध नामक अग्निके लिये तुम प्रभूत घृतसे हवन करो ।

नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः । कश्चिर्हि मधुहस्त्यः ॥ २ ॥  
 ईलितो अग्र आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखै रथेभिरुतये ॥ ३ ॥  
 ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्यर्का अनूषत । भवानः शुभ्र सातये ॥ ४ ॥  
 देवीद्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्र प्र यज्ञं पृणीतन ॥ ५ ॥  
 सुप्रतीके वयोवृधा यहूवी ऋतस्य मातरा । दोषामुषासमीमहे ॥ ६ ॥  
 वातस्य पत्मन्नीलिता दैव्या होतारा मनुषः । इमं नो यज्ञमा गतम् ॥७॥  
 इला सरस्वती मही तिस्रो देवार्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्त्रिधः ॥८॥  
 शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना । यज्ञे यज्ञे न उद्व ॥ ९ ॥  
 यत्र वेथ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय ॥१०॥

२ नराशंस ( मनुष्योंके द्वारा शंसनीय ) नामक अग्नि इस यज्ञको प्रदीप्त करें। वे अहिंसनीय, मेधावी एवम् हस्त-विशिष्ट हैं।

३ हे अग्नि, तुम स्तुत हो। हम लोगोंकी रक्षाके लिये विचित्र एवम् प्रिय इन्द्रको सुखकर रथ द्वारा इस यज्ञमें लाओ।

४ हे बर्हि, तुम कम्बलकी तरह मृदुभावसे विस्तृत होओ। स्तोता लोग स्तुति करते हैं। हे दीप्त, तुम हम लोगोंके लिये धनप्रद होओ।

५ हे सुगमन-साधिका यज्ञद्वारकी अभिमानीनी देवियो, तुम सब विमुक्त होओ और हम लोगोंकी रक्षाके लिये यज्ञको सम्पूर्ण करो।

६ सुरूपा, अन्नवर्द्धयित्री, महती और यज्ञ या उदककी निर्मात्री रात्रि तथा उषा देवीकी हम लोग स्तुति करते हैं।

७ हे अग्नि-आदित्यसे समुद्भूत होतृद्वय, तुम दोनों स्तुत होकर वायुपथसे गमन करते हो। हम यज्ञमानोंके इस यज्ञमें आगमन करो।

८ इला, सरस्वती और मही नामक तीनो देवियाँ सुख उत्पन्न कर। वे हिंसाशून्य होकरके हम यज्ञमानोंके इस यज्ञमें आगमन करें।

९ हे त्वष्ट्रदेव, तुम सुखकर होकरके इस यज्ञमें आगमन करो। तुम पोषक रूपमें व्याप्त हो। सब यज्ञोंमें तुम हम लोगोंकी, उत्कृष्ट रूपसे, रक्षा करो।

१० हे धनस्पति ( यूपामिमानी देव ), तुम जिस स्थानमें देवोंके गुप्त नामको जानते हो, उस स्थानमें हव्य प्रेरित करो।



स्वाहाग्रये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः । स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥११॥

ई सूक्त

अग्नि देवता । वसुश्रुत ऋषि । पङ्क्ति वन्द ।

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।

अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

सो अग्नियो वसु रृणे सं यमायन्ति धेनवः ।

समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥

अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।

अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥

आ ते अग्न इधीमहि धुमन्तं देवाजरम् ।

यद्भ स्या ते पनीयसी समिदीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

११ यह हव्य अग्नि और वरुणको स्वाहा ( आहुत ) रूपसे प्रदत्त है, इन्द्र और मरुतोंको स्वाहा रूपसे प्रदत्त है तथा देवोंको स्वाहा रूपसे प्रदत्त है ।

१ जो निवासप्रद हैं, जो सबके लिये गृहकी तरह आश्रयभूत हैं और जिन्हें गौएँ, शीघ्रगामी घोड़े तथा नित्य प्रवृत्त हव्य देनेवाले यजमान प्रसन्न करते हैं, हम उन अग्निकी स्तुति करते हैं । हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो ।

२ जो अग्नि निवासप्रद रूपसे स्तुत होते हैं, जिनके निकट गौएँ होमार्थ समागत होती हैं, द्रुतागमो घाड़ समागत होते हैं और सत्कुलोत्पन्न मेधावी समागत होते हैं, वही अग्नि हैं । हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो ।

३ सबके कर्मोंके दर्शक अग्नि यजमानोंको अन्नयुक्त पुत्र प्रदान करते हैं । अग्नि प्रीत होकर सर्वत्र व्याप्त और सबके द्वारा वरणीय धन देनेके लिये गमन करते हैं । हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो ।

४ हे अग्निदेव, तुम दीप्तिमान् और जरारहित हो । तुम्हें हम सर्वतोभावसे प्रदीप्त करते हैं तुम्हारी वह स्तुतियोग्य दीप्ति ध्रु लोकमें दीप्त होती है । हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो ।

आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिपस्पते ।

सुश्चन्द्र दस्म विस्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ।

प्रो त्ये अग्नयोऽग्निपु विस्त्रं पुष्यन्ति वार्यम् ।

ते हिन्विरे त इन्विरे त इपण्यंत्यानुपगिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥६॥

तव त्ये अग्ने अर्चयो महि ब्राधन्त वाजिनः ।

ये पत्वभिः शफानां ब्रजा भूरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥

नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।

ते स्याम य आनृचुस्त्वाद्रूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८॥

उभे सुश्चन्द्र सपिपो दर्वी श्रीणीप आसनि ।

उतो न उन्तु पुपूर्वा उक्थेषुः शवस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥९॥

१ हे अग्नि-समूहके स्वामी, आह्लादक, शत्रुओंके विनाशक, प्रजापालक और हव्यवाहक अग्नि, तुम दान दो। तुम्हारे उद्देशके मन्त्रोंके साथ हव्य हुत होता है। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

२ ये नौयिकाग्नि गार्हपत्यादि अग्निमें समस्त वरणीय या अपेक्षित धनका पोषण करते हैं। ये प्रातिज्ञान करने हैं, ये चारों तरफ व्याप्त होते हैं और ये धनवरत अन्नकी इच्छा करते हैं। हे अग्नि स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

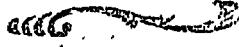
३ हे अग्नि, तुम्हारा ये रश्मियाँ अत्यन्त अधिक अन्नयुक्त होकर वर्द्धित हो। वे रश्मियाँ, पतनके द्वारा, सुगुप्त गांत्वृक्षकी इच्छा करें अर्थात् होमकी आकाङ्क्षा करें। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

४ हे अग्नि, हम सब तुम्हारे स्तोता हैं। तुम हम लोगोंको नूतन गृहयुक्त अन्न दान करो। हम लोग जिससे तुम्हारे, प्रत्येक यज्ञ-गृहमें, अर्चना करके तुम्हें दूत रूपसे लाभ कर सकें। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

५ हे आह्लादक अग्नि, तुम घृतपूर्ण दर्वीद्वयकी मुखमें ग्रहण करत हो। हे बलके पालयिता, तुम यज्ञमें हम लोगोंका फल द्वारा पूर्ण करो। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञे भिरानुषक् ।

दधदस्मे सुवीर्य्यामुत्स्य यदाश्वश्व्यमिणं स्तोतृभ्य आ भर ॥१०॥



### ७ सूक्त

अग्नि देवता । इष ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

सखायः सं वः सम्यञ्चमिणं स्तोमं चाज्ञये ।  
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥१॥  
कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।  
अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥२॥  
सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् ।  
उत द्युम्नस्य शवसा ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥३॥  
सः स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिददूर आ सते ।  
पावको यद्वनस्पतीन् प्र स्मा मिनात्यजरः ॥४॥  
आव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति ।  
अभोमह स्वजन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ॥५॥

१० इस प्रकारसे लोग अनुषक्त अग्नि के निकट स्तुति और यज्ञके साथ गमन करते हैं और उन्हें स्थापित करते हैं । वे हम लोगोंको शोभन पुत्र-पौत्रादि और वेगवान् अश्व दान करें । हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो ।

१ हे सखिभूत ऋत्विगको, तुम यजमानोंके लिये अत्यन्त प्रवृद्ध, बलके पुत्र और बलशाली अग्निके उद्देशसे अर्चना योग्य अन्न और स्तुति प्रदान करो ।

२ जिन्हें प्राप्त करके ऋत्विग्गण प्रीत होते हैं, यज्ञगृहमें पूजा करके जिन्हें प्रदीप्त करते हैं एवम् जिनके लिये जन्तुओंका उत्पादन करते हैं, वह अग्नि कहाँ हैं ?

३ जब हम अग्निको अन्न प्रदान करते हैं और जब वे हम मनुष्योंके हव्यकी सेवा करते हैं, तब वे द्योतमान अन्नकी सामर्थ्यसे उदक-ग्राहक रश्मिको ग्रहण करते हैं ।

४ जब पावक और जरारहित अग्नि वनस्पतियोंको दग्ध करते हैं, तब वे रात्रि कालमें भी दूरस्थित व्यक्तिको प्रज्ञापित करते हैं ।

५ अग्निको परिचर्याके कार्योंमें क्षरित घृतोंको अध्वयुं आदि ज्वालानोंके मध्यमें प्रक्षिप्त करते हैं । पुत्र जिस तरहसे पिताके अङ्गुमें आरोहण करता है, उसी तरहसे घृतधारा इन अग्निके ऊपर आरोहण करती है ।

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे ।  
 प्र स्वादनं पितृनामस्ततातिं चिदायवे ॥६॥ 14548  
 स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।  
 हिरिश्मश्रुः शुचिदन्तृभुरनिभृष्टतविपिः ॥७॥  
 शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत् प्र स्वधितीत्र रीयते ।  
 सुप्रसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥८॥  
 आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे ।  
 ऐषु द्युम्नसुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ॥९॥  
 इति त्रिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे ।  
 आदग्ने अपृणतोऽग्निः सासह्यादस्यूनिषः साह्यान्तृन् ॥१०॥



६ यजमान अशिकां जानते हैं। अग्नि अनेकों द्वारा स्पृहणाय, सबके धारक अन्नोंके आस्वादक और यजमानोंके निवासप्रद है ।

७ अग्नि नृगस्तदक पशुओंकी तरह निर्जल पच्य तृणकाष्ठपूर्ण प्रदेशको छिन्न करते हैं। वे सुवर्ण-रामधूमिजिष्ट, उज्ज्वलदन्त, महान् और अप्रतिहत बल-सम्पन्न हैं ।

८ जिनके नियत लोग अशिकां तथा गमन करता है, जो कुठारकी तरह वृक्षादिका विनाश करते हैं, यह अशिकां दान है। जो अन्न ग्रहण करते हैं और जो जगतके उपकारक हैं, माता भरणिने उन्हीं अशिकां प्रथम दिया था ।

९ देहव्यजोऽं अग्नि, तुम सबके धारक हो । हम लोगोंकी स्तुतियोंसे तुम्हें सुख हो । तुम अन्नोंवालोंके अन्न दान करो, अन्न दान करो और अन्तःकरण दान करो ।

१० है अग्नि, हमों प्रकारसे दूसरोंके द्वारा अकृत्य स्तोत्रोंके उच्चारणकारी ऋषि तुमसे पशु ग्रहण करते हैं। जो अशिकां दान नहीं करता है, उस दस्युको अग्नि पुनः पुनः अभिभूत करें और विरोधियोंको पुनः पुनः अभिभूत करें ।

## ८ सूक्त

अग्नि देवता । इष ऋषि । जगती छन्द ।

त्वामग्ने ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास जलये सहस्रकृत ।  
 पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥१॥  
 त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं निषेदिरे ।  
 बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरं द्विषम् ॥२॥  
 त्वामग्ने मानुषीरीडते विशो होत्राविदं विविचं रत्नधातमम् ।  
 गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ॥३॥  
 त्वामग्ने धर्षासिं विश्वधा वयं गीभिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।  
 स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो भर्त्सस्य यशसा सुदोतिभिः ॥४॥  
 त्वामग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत ।  
 पुरुणयन्ता सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तिविषाणस्य नाधृषे ॥५॥

१ हे बलकर्ता अग्नि, तुम पुरातन हो । पुरातन यज्ञकारी आश्रय लाभके लिये तुम्हें भली भाँतिसे प्रदीप्त करते हैं । तुम अत्यन्त प्रीतिदायक, यागयोग्य, बहु अन्न-विशिष्ट, गृहपति और वरेण्य हो ।

२ हे अग्नि, यजमानोंने तुम्हें गृहस्वामीके रूपसे स्थापित किया है । तुम अतिथिकी तरह पूज्य हो । तुम पुरातन, दीप्तशिखाविशिष्ट, प्रभूत केतुविशिष्ट, बहुरूप, धनदाता, सुखप्रद, सुरक्षक और जीर्ण वृक्षोंके ध्वंसकारी हो ।

३ हे सुन्दर धनविशिष्ट अग्नि मनुष्यगण तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम होमविद, विवेचक, रत्न-दाताओंके मध्यमें श्रेष्ठ, गुहास्थित, सबके दर्शनयोग्य, प्रभूत ध्वनियुक्त यज्ञकारी और घृतग्राहक हो ।

४ हे अग्नि, तुम सबके धारक हो । हम लोग बहुत प्रकारके स्तोत्र और नमस्कार द्वारा स्तुति करके तुम्हारे निकट उपस्थित होते हैं । तुम हम लोगोंको धन प्रदान करके प्रीत करो । हे अङ्गिराके पुत्र अग्नि देव, तुम भली भाँतिसे प्रदीप्त होकरके शिखाओंके साथ, यजमानोंके अन्न द्वारा प्रीत होओ ।

५ हे अग्नि, तुम बहुरूपयुक्त होकरके समस्त यजमानोंको पुराकालकी तरह अन्न दान करते हो । हे बहुस्तुत, तुम अपने बलसे ही बहुत अन्नोंके स्वामी होते हो । तुम दीप्तिमान् हो । तुम्हारी दीप्ति दसगोंके द्वारा अधृष्य है ।

त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।

उरुजयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेण चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ॥६॥

त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुस्रयवः सुषमिधा समीधिरे ।

स वावृधान श्रोपधीभिरुद्धितोभि जयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ॥६॥

६ हे सुवतम अग्नि, तुम सम्यग्रूपसे प्रदीत हो । देवोंने तुम्हें हव्यवाहक किया था । देवों और मनुष्योंने प्रमत्त वेगशाली, घृतयानि और आहुत अग्निको बुद्धिप्रेरक, दीत और चक्षुः स्थानीय बनाकर भाषण किया था ।

७ हे अग्नि, घृत दान आहुत करके पुरातन, सुखामिलापी यजमान तुम्हें सुन्दर काष्ठों द्वारा प्रदीत करने हैं । तुम चक्षुः प्रेरक, आपधियों द्वारा सिक्त होकरके और पार्थिव अन्तोंको व्यक्त करके अवस्थिति करने हो ।

अष्टम अध्याय समाप्त

तृतीय अष्टक समाप्त



हिन्दीमें ऋग्वेद-संहिता पढ़िये  
चतुर्थ अष्टक छप रहा है—

—तीन अष्टक छप गये !

प्रत्येक अष्टकका मूल्य २) रु०

ऐसा ग्रन्थ आपने नहीं देखा होगा

अत्यन्त सरल हिन्दीमें सम्पूर्ण ऋग्वेदका सरल-सुन्दर अनुवाद ।  
इस कार्यके लिये संसार भरकी भाषाओंमें ऋग्वेदके सम्बन्धमें जितनी  
पुस्तकें, निबन्ध-प्रबन्ध और आलोचना-ग्रन्थ छपे हैं, उन सबका  
संग्रह कर लिया गया है । आज ही मनी आर्डरसे ६) रु० भेजकर  
तीनों अष्टक मँगा लीजिये । शेष अष्टक आपको घर-बैठे  
मिल जायँगे । प्रत्येक अष्टकमें विस्तृत-गवेषणा-पूर्ण टिप्पनियाँ और  
कितनी ही ज्ञातव्य वैदिक बातें भी दी जाती हैं । ॥) भेजकर स्थायी  
ग्राहक बननेवालोंसे और ५) रु० वार्षिक मूल्य भेजकर "गंगा"के  
ग्राहक बननेवालोंसे डाकखर्च नहीं लिया जाता ।

आर्यजातिकी मर्यादा और सभ्यताका अध्ययन कीजिये ।

भेजेजर, वैदिकपुस्तकमाला, सुकृतान्तर्गमज (६० आइ० आर०)

६६६६६६६ ११११११११ ११६६११६६६६ ११६६६६६६ ११६६६६६६ ११६६६६६६ ११६६६६६६ ११६६६६६६ ११६६६६६६ ११६६६६६६

वार्षिक मूल्य २) साप्ताहिक "हलधर" [ एक अंकका ॥ ]

यह प्रति मंगलवारको भागलपुरसे प्रकाशित होता है ।

'हलधर' किसानोंको बतावेगा कि, उनके अधिकार क्या हैं ? 'हलधर' सल्लाहवेगा कि, किसान अपने  
संगठन कर देनामें हलधर नवा सकते हैं । 'हलधर' किसानोंको उन्नतिका उपाय बतावेगा 'हलधर' नवामिनव  
श्रमि-यन्त्रों और खादोंकी उपतोषिताके वर्णन कराकर छापेगा । 'हलधर' प्रजा या किसानोंसे प्रेम करेगा;  
परन्तु राजा या जमींदारोंसे द्वेष नहीं । 'हलधर' सबको विषमताओंको दूर कर सबमें समता स्थापित करनेकी  
केन्द्र करेगा । प्रत्येक राजा, जमींदार, साहित्यिक, किसान और पटवारी आदिको इसका ग्राहक बनाना  
चाहिये । नमूना मुद्रत मँगा देलिये ।

—व्यवस्थापक, हलधर, खलीफाबाग, भागलपुर



युगान्तर पैदा करनेकाला विशेषांक

## “गंगा” का “पुरातत्त्वांक”

ब्रिटिश न्युजियम ( लंदन ), भारत-मन्त्री और भारत सरकारके अनमोल चित्रों तथा अरब, तिब्बत, सीरिया, लंका आदिके अप्राप्य चित्रों एवम् शिला-लेखों, चौरासी सिद्धोंके चित्रों, ताम्रपत्रों, मूर्तियों, मुद्राओं, ईंटों और लिपियोंके चित्रोंसे सुसजित “पुरातत्त्वांक”की छटा छहर रही है।

आप “पुरातत्त्वांक” हाथमें लेते ही फड़क उठेंगे!

क्या आप जानते हैं कि, मनुष्य कैसे और कब उत्पन्न हुआ? क्या आपको मालूम है कि, किस स्थितिमें मनुष्यने भाषा बनायी? क्या आप सारे ब्रह्माण्डका मूल इतिहास जानते हैं? क्या आप आर्य-सभ्यताका, सृष्टिसे लेकर आज तकका, इतिहास जानना चाहते हैं? क्या आप संसारभरकी भाषाओं, लिपियों, बोलियों, अजायबघरों, संवतों और सामाजिक आचार-विचारोंका राई-रत्ती हाल जानना चाहते हैं? क्या आपको पता है कि, इतिहासका प्राण “पुरातत्त्व” है? क्या आपको मालूम है कि, भारत-भरकी खोदाइयोंमें कैसे-कैसे अमूल्य रत्न मिले हैं और कितने लाख खर्च हुए हैं? क्या आप हिन्दीकी प्राचीनतम कविताओंका रहस्य समझना चाहते हैं? क्या आप लाखों वर्षोंके वृक्ष और पचास हजार वर्षोंके मनुष्यको जानना चाहते हैं? इन सब प्रश्नोंके उत्तर देनेके लिये—

३) रु० भंजकर “गंगा”का पुरातत्त्वांक खरीद लीजिये

५) रु० वार्षिक मूल्य भंजकर १९३३ की “गङ्गा”की फाइल खरीदनेवालोंको “पुरातत्त्वांक” मुफ्त मिलेगा।

“गंगा” का कार्यालय, कृष्णगढ़, सुलतानगंज (रु० नार्द० आर०)

